राजस्थानी साहित्य

का

इतिहास

डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया
एम० ए० [पी-एच० डी०], साहित्य-रत्न

मंगल प्रकाशन
गोविन्द राजियों का रास्ता
जयपुर

प्रकाशक
उमरावसिंह मंगल
संचालक
मंगल प्रकाशन
गोविन्द र :यों का रास्ता, जयपुर

प्रथम संस्करण
राजस्थान दिवस, ३० मार्च, १९६८

मूल्य
रु० १५-०० [पन्द्रह रुपए मात्र]

मुद्रक
मंगल प्रेस, जयपुर

समर्पण

जिनको राजस्थानी भाषा-साहित्य से

परम अनुराग है

और

जिनका राजस्थानी भाषा-साहित्य के

विकास में सतत सहयोग है

उनको

ढाई करोड़ राजस्थानी भाषा-भाषी भारतवासियों की

साहित्यिक परम्पराओं का यह इतिहास

राजस्थान-दिवस ३० मार्च, १९६८ को

सादर समर्पित है

— पुरुषोत्तमलाल मेनारिया

डॉक्टर पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, राजस्थान प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान के प्रायः प्रारम्भ से ही शोध-सहायक के रूप में अपनी सेवा दे रहे हैं। प्रतिष्ठान के प्रकाशन और संशोधन-विभाग में इनका काफी योग रहा है। ये प्रतिष्ठान की सेवा के साथ अपना अध्ययन कार्य भी बड़ी लगन के साथ करते रहे, जिसके परिणाम-स्वरूप इन्होंने बी० ए०, एम० ए० का अभ्यास-कार्य पूरा किया और एक विशिष्ट निबन्ध उपस्थित कर इन्होंने जोधपुर विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि भी प्राप्त करली है। राजस्थान पुरातन-ग्रन्थ माला के लिये इन्होंने रुक्मिणी-हरण, राजस्थानी साहित्य-संग्रह, भाग २ और राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची, भाग २ नामक राजस्थानी भाषा के उपयोगी ग्रन्थों का सम्पादन भी किया है।

अब इन्होंने अपने अध्ययन और अनुसंधान के फलस्वरूप प्रस्तुत पुस्तक का लेखन किया है जो इस विषय के अध्ययनार्थी-वर्ग की ज्ञानवृद्धि करने में बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। पुस्तक बहुत परिश्रम पूर्वक और प्रमाणभूत उल्लेखों के साथ तैयार की गई है।

—मुनि जिनविजय

राजस्थान सरकार के साहित्य-पुरस्कार-विजेता और अनेक ग्रन्थों के रचयिता डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया का " राजस्थानी साहित्य का इतिहास " अपने ढंग की पहली कृति है। अन्य कृतियां प्रायः एकाङ्गी रही हैं; श्री मेनारिया की कृति सर्वाङ्गीण है। कृति पांच अध्यायों में विभक्त है। प्रथम में राजस्थानी साहित्य की भूमिका है। द्वितीय में काल की दृष्टि से उसके विभाग, तृतीय में लोक साहित्य और चतुर्थ में उसके विविध काव्य रूपों पर विचार किया गया है। पांचवां अध्याय उपसंहारात्मक है।

कृति में अनेक मतमतान्तरों का उल्लेख हुआ है और साथ ही शिष्ट भाषा में समालोचना भी। लोक साहित्य पर आपने पर्याप्त नवीन सामग्री दी है। यह मेनारिया जी का निजी क्षेत्र है। राजस्थानी साहित्य के विविध रूपों का भी इतना व्यापक और प्रामाणिक विवेचन शायद ही अन्यत्र अब तक हुआ हो। उपसंहार उपयोगी है। इसमें वर्णित साहित्य का अध्ययन कर शोध-प्रिय छात्र अनेक शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत कर सकेंगे।

इस सर्वोपयोगी ग्रन्थ के लेखन और प्रकाशन के लिये लेखक और प्रकाशक अभिनन्द्य हैं।

— दशरथ शर्मा

मैंने डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया प्रणीत "राजस्थानी साहित्य का इतिहास" देखा। यह ग्रन्थ बड़े अध्यवसाय के साथ लिखा गया है। राजस्थानी साहित्य के उद्भव और विकास की सभी अवस्थाओं का इसमें संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। साथ ही साथ इसमें राजस्थानी साहित्य-विधाओं एवं प्रवृत्तियों का भी अधिक से अधिक प्रामाणिक विवरण देने का प्रयत्न किया गया है। यह ग्रन्थ राजस्थानी साहित्य के शोधार्थियों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। मैं डॉ० मेनारिया को यह ग्रन्थ प्रस्तुत करने के लिये हार्दिक साधुवाद अर्पित करता हूं।

—चन्द्रप्रकाश सिंह

" राजस्थानी साहित्य का इतिहास " ग्रन्थ के मुद्रित फरमे देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। यह ग्रन्थ लिखकर आपने अेक बहुत बड़ी कमी की पूर्ति की है। राजस्थानी साहित्य का सम्पूर्ण रूप में परिचय देने वाला कोई ग्रन्थ अभी तक नहीं था और यह कमी बहुत समय से खटक रही थी। इस ग्रन्थ से जिज्ञासु पाठकों को निस्संदेह किसी अंश में संतोष होगा। राजस्थानी साहित्य का बड़ा इतिहास भी आप शीघ्र प्रस्तुत करेंगे, इस विश्वास के साथ आपका अभिनन्दन करता हूं।

— नरोत्तमदास स्वामी

डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया जी के "राजस्थानी साहित्य का इतिहास" का मैं सहर्ष स्वगत करता हूं। इस विषय की जानकारी के लिये जो साधनों का अभाव सा है, उसकी क्षति दूर करते का यह प्रथम प्रयास है। मेनारियाजी इस विषय के अत्यन्त अधिकारी विद्वान हैं। उन्होंने परिश्रम करके अपने पास जो सामग्री अेकत्र की है, इससे हमें पूरा विश्वास होता है कि निकट भविष्य में वे हमें राजस्थानी साहित्य का बृहत् इतिहास भी भेंट करेंगे।

— ह० चु० भायाणी

राजस्थानी भाषा प्राचीन साहित्य से बहुत समृद्ध है। यों तो अपभ्रंश, हिन्दी आदि भाषाओं के इतिहास-लेखकों ने प्रसगवश इस भाषा के साहित्य के इतिहास पर भी समय-समय पर प्रकाश डाला है परन्तु, स्वतन्त्र रूप से राजस्थानी साहित्य के इतिहास-लेखन की दिशा में बहुत कम या नहीं के बराबर प्रयत्न हुए हैं। .... ऐसे समृद्ध साहित्य का वैज्ञानिक रीति से इतिहास लिखा जाना अपने आप में एक आवश्यकता है। यदि इस ओर ध्यान नहीं दिया जाता है या कम दिया जाता है तो वह अध्ययन की अपूर्णता का ही लक्षण माना जायेगा।

.... इस पुस्तक के लिखने में इन्होंने यथाशक्य विषय का वैज्ञानिक विवेचन करने का प्रयास किया है।

आशा है राजस्थानी साहित्य-क्षेत्र में, जहां पहले से ही श्री मेनारिया जी जाने माने विद्वान समझे जाते हैं, इस पुस्तक को लेकर इनका और भी समादर होगा।

— गोपालनारायण बहुरा

.... आपका प्रयास सराहनीय है। ग्रन्थ एक अभाव की पूर्ति करेगा।

— अगरचन्द नाहटा

संकेत-तालिका

अं०	अङ्क
अ०	अध्याय
अनु० सं०	अनुच्छेद संख्या
अ० जै० ग्रं० बी०	अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर
अ० भं० नाहटा	अगरचन्द भंवरलाल नाहटा
ई० स०, ई०	ईस्वी सन्
का० ना० प्र० स०, ना० प्र० स०	काशी नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
खं०	खण्ड
गा०	गाथा
गी० सं०	गीत संग्रह
छं० सं०	छन्द संख्या
ज० का०	जन्म काल
डा०	डाक्टर
डा० ओ० रा० इ०	डाक्टर ओझा का राजस्थान का इतिहास
डा० मा० प्र० गु०	डाक्टर माताप्रसाद गुप्त
दो० सं०	दोहा संग्रह
न०	नम्बर
पं०	पण्डित
पु० प्र० सं०	पुरातन प्रबन्ध संग्रह
पृ०	पृष्ठ
पृ० रा०	पृथ्वीराज रासो
प्रका०	प्रकाशक
प्रा० गु० का० सं०	प्राचीन गुजराती काव्य-संग्रह
भा०	भाग
भू०	भूमिका
मृ० सं०	मृत्यु संवत्
मो० द० देसाई	मोहनलाल दलीचन्द देसाई
र० का०	रचना काल
रा० ना० ला०	रामनारायण लाल, इलाहबाद

राजस्थानी भाषा प्राचीन साहित्य से बहुत समृद्ध है। यों तो अपभ्रंश, । आदि भाषाओं के इतिहास-लेखकों ने प्रसगवश इस भाषा के साहित्य के ·ह ः पर भी समय-समय पर प्रकाश डाला है परन्तु, स्वतन्त्र रूप से राजस्थानी ।हित्य के इतिहास-लेखन की दिशा में बहुत कम या नहीं के बराबर प्रयत्न हुए ह। ········ ऐसे समृद्ध साहित्य का वैज्ञानिक रीति से इतिहास लिखा जाना अपने आप में एक आवश्यकता है। यदि इस ओर ध्यान नहीं दिया जाता है या कम दिया जाता है तो वह अध्ययन की अपूर्णता का ही लक्षण माना जायेगा।

········ इस पुस्तक के लिखने में इन्होंने यथाशक्य विषय का वैज्ञानिक विवेचन करने का प्रयास किया है।

आशा है राजस्थानी साहित्य-क्षेत्र में, जहां पहले से ही श्री मेनारिया जो जाने माने विद्वान समझे जाते हैं, इस पुस्तक को लेकर इनका और भी समादर होगा।

— ोपालनारायण बहुरा

······· आपका प्रयास सराहनीय है। ग्रन्थ एक अभाव की पूर्ति करेगा।

— अगरचन्द नाहटा

संकेत-तालिका

अं०	अङ्क
अ०	अध्याय
अनु० सं०	अनुच्छेद संख्या
अ० जै० ग्रं० बी०	अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर
अ० भं० नाहटा	अगरचन्द भंवरलाल नाहटा
ई० स०, ई०	ईस्वी सन्
का० ना० प्र० स०, ना० प्र० स०	काशी नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
खं०	खण्ड
गा०	गाथा
गी० सं०	गीत संग्रह
छं० सं०	छन्द संख्या
ज० का०	जन्म काल
डा०	डाक्टर
डा० ओ० रा० इ०	डाक्टर ओझा का राजस्थान का इतिहास
डा० मा० प्र० गु०	डाक्टर माताप्रसाद गुप्त
दो० सं०	दोहा संग्रह
न०	नम्बर
पं०	पण्डित
पु० प्र० सं०	पुरातन प्रबन्ध संग्रह
पृ०	पृष्ठ
पृ० रा०	पृथ्वीराज रासो
प्रका०	प्रकाशक
प्रा० गु० का० सं०	प्राचीन गुजराती काव्य-संग्रह
भा०	भाग
भू०	भूमिका
मृ० सं०	मृत्यु सवत्
मो० द० देसाई	मोहनलाल दलीचन्द देसाई
र० का०	रचना काल
रा० ना० ला०	रामनारायण लाल, इलाहबाद

प्रस्तावना

इस प्रकाशन में विस्तृत राजस्थानी साहित्य का इतिहास संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। राजस्थानी साहित्य का काल-विभाजन प्राचीन, मध्य तथा आधुनिक कालों की रूढ़ और शिथिल पद्धति से नहीं करते हुए प्रथम बार ठोस ऐतिहासिक आधारों पर किया गया है। आधुनिक काल में इतिहास लेखन की परिपाटी संवतों, घटनाओं और तथ्य-चित्रण तक ही सीमित नहीं है, वरन् उसका उद्देश्य तत्वचित्रण के साथ ही पाठकों के समक्ष सम्बद्ध काल का सम्पूर्ण चित्र उपस्थित करना है। तदनुसार प्राप्त तथ्यों को यथावत् रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

हमारे साहित्यिक ग्रन्थों में अब तक मौखिक परम्परा में प्रचलित लोक-साहित्य की उपेक्षा रही है। यथार्थ में लोक-साहित्य जनता की वास्तविक भावनाओं का प्रतीक होता है और इसी आधार पर हमारे साहित्यकार अपनी रचनाएं करते रहते हैं। इसी दृष्टिकोण से राजस्थानी लोक-साहित्य का परिचय भी यहां दिया गया है।

इतिहास के विषय और शीर्षक के साथ न्याय करते हुए यहां राजस्थानी भाषा में रचित साहित्य का ही परिचय दिया गया है। राजस्थान में रचित संस्कृत और हिन्दी रचनाएं भी महत्वपूर्ण हैं तथा किसी सीमा तक सम्पूर्ण भारतीय साहित्य को प्रभावित करने वाली हैं। ऐसी रचनाओं का परिचय अलग से देने का प्रयास किया जावेगा।

इस संक्षिप्त इतिहास में अनेक समर्थ साहित्यकारों और उनकी रचनाओं के नाम मात्र ही दिए जा सके हैं। आगामी संस्करण में इनका विस्तृत परिचय देने का यत्न किया जा रहा है, तदर्थ सम्बन्धित समस्त व्यक्तियों के सहयोग की अपेक्षा है।

मध्यभारत-मालवा और गुजरात में भी प्रचुर परिमाण में राजस्थानी साहित्य का सृजन होता रहा है जिसका समादर आवश्यक है। पुस्तक के आगामी संस्करण में इस दिशा की ओर भी कार्य करने का विचार है।

हो चुका है तथा घोर दुख है कि आज भी यह क्रम चालू है। राजस्थान में ब्रिटिश पराधीनता के कारण प्रेस और प्रकाशन-कार्यों का विकास नहीं हो सका जिससे अनेक रचनाएं अप्रकाशित अवस्था में ही लुप्तप्रायः हो रही हैं। देश के साहित्यानुरागियों को अब इस दिशा में सचेष्ट हो जाने की आवश्यकता है।

स्वाधीनता के उपरान्त, राजस्थानी साहित्य में क्रान्तिकारी नवीन परिवर्तनों का प्रारम्भ हुआ है और अनेक दिशाओं में सन्तोषजनक प्रगति हुई है। राजस्थानी साहित्य से स्वाधीनता की सुरक्षा के साथ ही कर्तव्य क्षेत्र में सदैव तत्पर रहने की प्रेरणा मिलती है। अतएव इस क्षेत्र में सर्वांगीण रूप में यथोचित विकास की आवश्यकता है।

इस कार्य में अनेक कृपालुओं, गुरुजनों, साहित्य-संग्राहकों और स्नेहीजनों से सहयोग प्राप्त हुआ है। अनेक प्रकाशित और हस्तलिखित ग्रन्थों से भी सहायता प्राप्त हुई है। राजस्थान के सुप्रतिष्ठित मनीषी और इतिहासकार श्रद्धेय डॉ० दशरथजी शर्मा, प्रोफेसर और अध्यक्ष, इतिहास विभाग, जोधपुर-विश्वविद्यालय तथा राजस्थान में शैक्षणिक और साहित्य-सम्बन्धी प्रवृतियों के परम प्रेरक तथा उन्नायक परम श्रद्धेय पं० लक्ष्मीलालजी जोशी का कृपापूर्ण मार्ग दर्शन प्राप्त होता रहा है।

श्रद्धेय मुनि जिनविजयजी और गोपालनारायणजी बहुरा का भी कृपापूर्ण सहयोग मुझे इस कार्य में प्राप्त रहा है। सुप्रसिद्ध साहित्यान्वेषक अगरचन्दजी नाहटा का सतत् सहयोग साहित्यिक कार्यों में लेखक को पिछले २५ वर्षों से प्राप्त है। इस पुस्तक के लिये सामग्री जुटाने में भी आपका सहयोग रहा है। पुस्तक को पढ़ कर आपने अनेक संशोधन और सुझाव दिये हैं, जिनका यथास्थान उपयोग किया गया है। मेरे मान्य मित्र डॉ० नारायणसिंहजी भाटी और कुंवर सौभाग्यसिंहजी शेखावत ने पुस्तक की पाण्डुलिपि पढ़ कर अनेक सुझाव दिये हैं। श्री गोविन्द जी वर्मा ने इस कार्य में सहयोग दिया और मंगल प्रकाशन, जयपुर के सचालक श्री उमरावसिंह मंगल ने अपने सीमित साधन होते हुए भी तत्परता पूर्वक स्वयं प्रूफ-शोधन करते हुए पुस्तक को प्रकाशित किया है। तदर्थ उक्त सभी महानुभावों के प्रति लेखक आभारी है।

प्रिय पाठकों से निवेदन है कि इस पुस्तक में प्रकाशित सामग्री के विषय में अपने कृपापूर्ण सुझाव मुझे भेजते रहें; जिनके अनुसार आगामी संस्करण में यथोचित परिवर्तन और परिवर्द्धन किया जाता रहे।

— पुरुषोत्तमलाल मेनारिया

राजस्थान प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान
रेजिडेन्सी रोड, जोधपुर
राजस्थान दिवस, ३० मार्च, १९६८

विषय-तालिका

प्रथम अध्याय

राजस्थानी साहित्य की भूमिका

१. 'राजस्थान' का नामकरण : प्राचीन उल्लेख

२. जन-जीवन और राजस्थानी साहित्य

३. राजस्थानी भाषा

क. विस्तार क्षेत्र

ख. सीमाएँ

ग. वर्गीकरण

घ. नामकरण

ङ. राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति

च. राजस्थानी भाषा का विकास

[अ] राजस्थानी भाषा का प्रस्तावना-काल

[आ] प्राचीन राजस्थानी भाषा-काल

[इ] मध्यकालीन राजस्थानी भाषा-काल

[ई] आधुनिक राजस्थानी भाषा-काल

४. ललित कलाएँ और राजस्थानी साहित्य

क. संगीत

ख. चित्रकला

ग. नृत्य

॥ श्री ॥

प्रथम अध्याय

राजस्थानी साहित्य की भूमिका



१:१ । किसी भी साहित्य के परिचय हेतु सम्बद्ध प्रदेश का अध्ययन आवश्यक होता है क्योंकि देश की भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों के सर्वथा अनुकूल ही साहित्य की रचना होती है। साहित्यकार अपने उपादान स्वीकृति, विरोध अथवा पलायन की स्थिति में सम्बद्ध समाज से ही प्राप्त करता है। साहित्यकार समाज की देन होता है और साहित्य पर साहित्यकार के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का प्रभाव होता है। इस प्रकार साहित्य, साहित्यकार, समाज और सम्बन्धित प्रदेश चारों का परस्पर घनिष्ठ तथा अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है।

२:१ । "सहितस्य भावः साहित्यम्" के अनुसार "साहित्य" का अर्थ मिलन, मेलन अथवा हितकर है। "साहित्य" शब्द की व्याख्या— साथ, संयोग, मेल, वाक्य में पदों का सापेक्ष सम्बन्ध; गद्यात्मक अथवा पद्यात्मक रचनाएं; लिपिबद्ध विचार और ज्ञान; ग्रन्थ-समूह, वाङ्मय; काव्यशास्त्र तथा हितयुक्त लिखते हुए की गई है।[1]

सामाजिक आलोचना और व्याख्या के रूप में भाषा के माध्यम से हुई साहित्यकार की अभिव्यक्ति अथवा साहित्यकार के विचारों और भावों की समष्टि ही साहित्य है। 'साहित्य' शब्द की व्युत्पत्ति "सहित" शब्द से 'यत' प्रत्यय लग कर हुई है। 'सहित' का अर्थ 'हित सहित' 'हितेन सह सहित' और 'साथ होना', मिलन अथवा मेलन है। तदनुसार साहित्य के माध्यम से विविध भावों, विचारों, देशों और मनुष्यों के मिलन का महान् कार्य सम्पादित होता है। रुद्रधर ने भाषा विशेष के विविध प्रकार के विषयों पर लिखित ग्रन्थ-समूह को "साहित्य' कहा है[2] और यही मत कवि विल्हण ने भी प्रकट किया है।[3]

---

१ – क – ज्ञान शब्द कोष, ज्ञानमण्डल, वाराणसी, वि० सं० २०१३, पृ० ८४२।
ख – वाचस्पत्यम्, चौखम्भा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, पृ० ५२९०।

२ – श्राद्धविवेक, चौखम्भा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी, पृ० १८।

३ – विक्रमाङ्कदेवचरित, १। ११।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस विषय में लिखा है — "सहित शब्द से साहित्य की उत्पत्ति हुई है अतएव धातुगत अर्थ करने पर साहित्य शब्द में मिलन का एक भाव दृष्टिगोचर होता है। वह केवल भाव का भाव के साथ, भाषा का भाषा के साथ, ग्रन्थ का ग्रन्थ के साथ ही मिलन नहीं है, वरन् यह बतलाता है कि मनुष्य के साथ मनुष्य का, अतीत के साथ वर्तमान का, दूर के साथ निकट का मिलन कैसा होता है ?"[1] इस प्रकार साहित्य में समत्व और असमत्व के सामंजस्य की शक्ति भी निहित है। साहित्य विरोधी तत्वों का पारस्परिक विरोध दूर कर उन्हें एकता के सूत्र में आबद्ध करने में भी विशेष सहायक होता है।

३:१। एक ही समाज और युग से प्रभावित साहित्यकारों एवं साहित्य में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है, जिसका मुख्य कारण समाज में अनेक इकाइयां और वर्गों की संहति है। समाज में अनेक दृष्टिकोणों और प्रवृत्तियों का समावेश होता है, जिनका संघात साहित्यकारों पर विभिन्न अन्तर्वर्तिनी विचार-धाराओं और अभिव्यंजना-शैलियों के रूप में होता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसलिये यह पारिवारिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, भौगोलिक तथा आर्थिक मर्यादाओं में अन्य मनुष्यों से सम्बद्ध होता है। व्यक्तियों की भिन्नता ही साहित्यिक भिन्नता के रूप में प्रकट होती है।

१. राजस्थान का नामकरण : प्राचीन उल्लेख

४:१। 'राजस्थान' शब्द का प्राचीनतम प्रयोग—'राजस्थानीयादित्य' वि० सं० ६८२ में उत्कीर्ण वसन्तगढ़ (सिरोही) के शिलालेख में उपलब्ध हुआ है।[2] मुंहणोत नैणसी (वि० सं० १६६७–१७२७) की ख्यात में भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ है —

"संमत १६७२। रांणों अमरसिंघ साहजादे खुरम सूं मिलियो। तठा पछै रांणों अमरसिंघ उदेपुर आयो। तठा पछै 'राजस्थान' उदैपुर हुवो।"[3]

चारण कवि वीरभाण कृत 'राजरूपक' (वि० सं० १७८८) नामक महाकाव्य में 'राजस्थान' शब्द का प्रयोग इस प्रकार हुआ है—

---

१ – साहित्य, हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, पृ० ८।

२ – राजस्थान पुरातत्व संग्रहालय, अजमेर में सुरक्षित और महाकवि माघ उनका जीवन और कृतियां, डा० मदनमोहन लाल शर्मा, नवयुग प्रकाशन, दिल्ली में, प्रकाशित पृ० ४।

३ – राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की उदयपुर शाखा में सुरक्षित "सरस्वती भण्डार पुस्तकालय" की हस्तलिखित प्रति, पत्र सं० २७। "राजस्थान के साहित्यिक ग्रन्थों में 'राजस्थान' सम्बन्धी प्राचीनतम यही उल्लेख दिया गया है।" — राजस्थान का [illegible]

छंद गाथा

सप्त पुरी सिरताजं कृत अपवर्ग हुँत समकारण।
उत्तम धाम अजोध्या, ओपै नाम ग्राम पुर ऊपर ।।२५।।

थिर ते 'राजसयानं' महि इक छत्र भोम सामर्थ ।
एके आरण अखंडं, खंडण माण प्राण नवखण्डं ।।२६।।[1]

इस प्रकार प्रकट होता है कि 'राजस्थान' शब्द के प्राचीन प्रयोग मुख्यतः 'राज का स्थान' अर्थात् 'राजधानी' के अर्थ में किये गये हैं। मध्यकाल में यह प्रदेश अनेक राजाओं और सामन्तों के अधिकार में था एवं राजा और सामन्त अपने संस्थान के लिये 'राजस्थान' अथवा 'राजथाण' 'रायथाण' और 'रायथान' शब्दों का प्रयोग करते थे।

५:१। ब्रिटिश शासकों ने इस प्रदेश का नाम तैलंगाना, गोडवाना और उडियाना आदि के अनुकरण में 'राजपूताना' दिया था। प्रदेश-सूचक 'राजपूताना' शब्द का प्रथम लिखित प्रयोग १९ वीं सदी के प्रारम्भ में जार्ज टामस कृत माना जाता है।[2]

६:१। प्रशासन-कार्यों में प्रदेश-सूचक 'राजस्थान' शब्द का प्रयोग भारतीय स्वाधीनता (१९४८ ई०) के पश्चात् विभिन्न रियासतों के एकीकरण के साथ ही प्रारम्भ हुआ है।[3]

७:१। प्रदेश विशेष के लिये 'राजस्थान' शब्द प्रयुक्त करने का प्रधान श्रेय कर्नल जेम्स टॉड नामक सुप्रसिद्ध इतिहासकार को है, जिसने एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ 'राजस्थान' नामक ग्रन्थ लिखा है।[4] इस विषय में डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या का मत है —

"प्रान्त-वाचक 'राजस्थान' नाम एक विशेष मर्यादा के साथ हम सब कोई स्मरण करते हैं, खास करके हिन्दुओं में, और शिक्षित लोगों में। मुख्यतया एक विदेशी की राजस्थान

---

१ – सम्पादक– पं० रामकर्ण आसोपा, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम प्रकाश, पृ० १०—११।

२ – मिलिट्री मेमोअर्स आफ मिस्टर जार्ज टॉमस, विलियम फ्रेंकलिन, लंदन (१८७५ ई०) पृ० ३४७।

३ – बेसिक स्टेटिस्टिक आफ राजस्थान, जन-सम्पर्क कार्यालय, जयपुर (१९५७ ई०) पृ० १।

४ – विलियम क्रुकस, लन्दन (१८२९ ई०)। (हिन्दी संस्करण 'टॉड कृत राजस्थान' भाग १ खण्ड १ "राजपूत कुलों का इतिहास" मंगल प्रकाशन, ३।)

पर प्रीति के कारण ऐसा हो पाया। ....निकलते ही इस ग्रन्थ ने भारत के हिन्दू साहित्य में और पुनर्जागृति के क्षेत्र में अपना निराला स्थान बना लिया।[1]

८:१। प्राचीन काल में यह प्रदेश और इसके भू-खण्ड विभिन्न नामों से प्रसिद्ध रहे हैं। जैसे राजस्थान के उत्तरी भाग का नाम 'जाङ्गल', पूर्वी भाग का नाम 'मत्स्य', दक्षिणी-पूर्वी भाग का नाम 'शिवी'; दक्षिणी भाग का नाम मेदपाट, वागड़, प्राग्वाट, मालव और गुर्जरत्रा; पश्चिमी भाग के नाम मरुकान्तार, माड, त्रवणी और मध्य-भाग के नाम अर्बुद तथा सपादलक्ष प्रचलित रहे हैं।[2] साल्व नामक जनपद[3] और परियात्र-मण्डल भी इसी प्रदेश के अन्तर्गत माने गये हैं।[4] राजस्थान का मरुस्थलीय भाग मारवाड़ के नाम से प्रसिद्ध रहा है। भूतपूर्व जोधपुर रियासत का जिसका अधिकांश भाग मरुस्थल है, "राज मारवाड़" भी कहा गया है।

२. जन-जीवन और राजस्थानी साहित्य

९:१। राजस्थान में प्राचीन काल से अनेक जातियों का निवास रहा है और अनेक जातियों का आगमन भी होता रहा है। नृवंश-शास्त्र की दृष्टि से राजस्थान में [illegible] प्रकार की जातियां हैं — आर्य और द्रविड़। आर्यों में – ब्राह्मणों, राजपूतों [illegible] आदि की तथा द्रविड़ों में भीलों और मीणों आदि की गणना होती है।

१०:१। प्राचीन काल में राजपूत जाति का राजस्थान में विशेष प्रभुत्व रहा और इसी कारण राजस्थान को 'राजपूताना' भी कहा गया। राजपूत जाति अपनी वीरता के लिये समस्त विश्व में विख्यात रही है तथा साहित्य, संगीत, चित्र और शिल्प-स्थापत्य के क्षेत्र में राजपूतों की विशेष देन मानी जाती है।

११:१। राजस्थान के वैश्य अपने व्यापार-कौशल और उद्योग-प्रियता के कारण समस्त देश में प्रमुख स्थान बनाये हुए हैं तथा देश के औद्योगिक विकास में विशेष योग प्रदान कर रहे हैं। अनेक वैश्यों ने साहित्यकारों को प्रोत्साहित किया और स्वयं भी साहित्य का निर्माण किया।

---

१ – राजस्थानी भाषा, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, शोध-संस्थान, उदयपुर, पृ० २, (१९४९ ई०)।

२ – राजपूताने का इतिहास, डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, भाग १, पृ० २।

३ – राजस्थान भारती, भाग ३, अङ्क ३–४ (शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट बीकानेर) में प्रकाशित, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का निबन्ध।

४ – हमारा राजस्थान, पृथ्वीसिंह मेहता, पृ० २०—२२, हिन्दी भवन, इलाहाबाद, १९५० ई०।

१२:१ । राजस्थान मे ब्राह्मणों ने विद्या एवं साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया है । राजपूत शासकों द्वारा ब्राह्मणों का विशेष सम्मान होता रहा, जिससे प्रोत्साहित हो कर ब्राह्मणों ने मौलिक और अनुवादित साहित्य की सृष्टि की ।

१३:१ । राजस्थान की आदिवासी जातियों मे भील, गरासिया और मीणा मुख्य हैं । इन जातियों का निवास मुख्यतः राजस्थान के पर्वतीय प्रदेशों में है । राजस्थान में अधिकांश राजपूत राजाओं ने भीलों और मीणों से ही राज्य प्राप्त किये । आदिवासी भील और मीणे कलाओं के विशेष प्रेमी होते हैं ।[1]

१४:१ । बालदिया, बणजारा और गाडुल्या-लुहार आदि घुमक्कड़ जातियों का सम्बन्ध भी राजस्थान से माना जाता है । प्राचीन काल मे बालदियों और बणजारों द्वारा बैलों की सहायता से माल लाद कर सुदूर प्रदेशों तक पहुँचाया जाता था । गाडुल्या लोहार बैलों द्वारा खींची जाने वाली गाड़ियों में ही अपना निर्वाह करते हुए घूमते रहते हैं और ग्राम-जनों की सम्बद्ध आवश्यकता-पूर्ति में योग देते हैं । राजस्थान की उक्त घुमक्कड़ जातियों से सम्बद्ध साहित्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है ।

१५:१ । १९६१ ई० की जनगणना के अनुसार राजस्थान की जन-संख्या २.०१ करोड़ आंकी गई है । उक्त जन-संख्या में ८४ प्रतिशत की आजीविका कृषि और पशु-पालन पर निर्भर है । इस प्रकार स्पष्ट है कि राजस्थानी जन-जीवन में कृषकों और पशुपालको का विशेष स्थान है । तदनुसार राजस्थानी साहित्य में भी पशुपालन और कृषक-जीवन का विस्तृत चित्रण उपलब्ध होता है । "वेलि क्रिसन रुकमणी री" को युद्ध कृषि-रूपक उक्त कथन का एक उत्तम उदाहरण है ।[2]

३. राजस्थानी भाषा

क. विस्तार - क्षेत्र

१६:१ । राजस्थानी समस्त राजस्थान - क्षेत्र की भाषा है । राजस्थान क्षेत्र के अन्तर्गत भूमि, भाषा, रहन-सहन, विचार, व्यवहार और इतिहास आदि की दृष्टि से पश्चिमी भारत के उत्तर में सरस्वती अथवा हाकड़ा नदी के सूखे थाले से दक्षिण में सतपुड़ा पर्वत के

---

१ – भारतीय लोक-कला ग्रन्थावली– १. राजस्थानी लोक-संगीत और २. राजस्थानी लोक नृत्य, लेखक – श्री देवीलाल सामर, सं० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, भारतीय लोक-कला-मण्डल उदयपुर, क्रमशः पृ० ६७–७२ और ४१–४९ ।

२ – पृथ्वीराज राठौड़ कृत, छन्द सं० ११७–१२८ ।

ढालों एवं ताप्ती नदी तक और पूर्व में बेतवा नदी की ऊपरी धारा से पश्चिम में उमरकोट सहित सिन्ध नदी की पूर्वी धारा तक के समस्त भाग को लिया जाना चाहिये।[1] वर्तमान राजस्थान-राज्य की सीमाएं वास्तव में अंग्रेज शासकों द्वारा उनकी सुविधा के लिए निर्धारित राजपूताने की सीमाओं में सामान्य परिवर्तन कर निर्धारित की गई हैं।

१७:१। राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत वर्तमान राजस्थान राज्य की बोलियां (धौलपुर और करौली की 'व्रज' के अतिरिक्त) के साथ ही मध्यप्रदेश के अन्तर्गत मालवी, पहाड़ी प्रदेशों की भीली, पंजाब और काश्मीर की गूजरी और बणजारों तथा बालदियों आदि घुमक्कड़ जातियों की समस्त बोलियां मानी जाती हैं।[2] राजस्थान के मारवाड़ी व्यापारियों के साथ राजस्थानी भाषा का प्रवेश भारत के अनेक भू-भागों में हो चुका है।[3] इस प्रकार राजस्थानी भाषा-भाषियों की संख्या दो करोड़ आंकी गई है।[4]

ख. सीमायें

१८:१ राजस्थानी भाषा की सीमाएं निम्नलिखित भाषाओं से मिलती हैं और राजस्थानी भाषा क्रमशः अपना प्रभाव छोड़ती हुई निम्नलिखित भाषाओं में विलीन हो जाती है —

(१) उत्तर-पंजाबी,
(२) पश्चिमोत्तर- हिन्दकी या पश्चिमी पंजाबी,
(३) पश्चिम- सिन्धी, लंहदा और पंजाबी,
(४) दक्षिण-पश्चिम- गुजराती,
(५) दक्षिण- गुजराती और मराठी,
(६) दक्षिण-पूर्व- मराठी और बुन्देली,
(७) पूर्व- बुन्देली और व्रज, और
(८) उत्तर-पूर्व- बांगड़ू।

---

१ – हमारा राजस्थान, पृथ्वीसिंह मेहता, पृ० २।

२ – राजस्थानी भाषा, डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पृ० ५ और ६।

३ – लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, जार्ज ग्रियर्सन, खण्ड १, पृ० १५७।

४ – राजस्थानी भाषा की रूपरेखा, ले० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, ज्ञानवापी, वाराणसी, १९५३ ई०, पृ० २।

ग. वर्गीकरण

१९:१ राजस्थानी भाषा की विभिन्न बोलियों का वर्गीकरण निम्न रूप में किया जा सकता है :—

(१) पश्चिमी-राजस्थानी — मारवाड़ी-मेवाड़ी जिसमें धाटकी, थली, बीकानेरी, शेखावाटी, गोड़वाड़ी आदि का समावेश होता है।

(२) उत्तर पूर्वी राजस्थानी — अहीरवाटी और मेवाती।

(३) मध्यपूर्वी राजस्थानी —ढूंढाड़ी हाड़ौती जिसमें तोरावाटी, जैपुरी, काठेड़ा, राजावाटी, अजमेरी, नागरचाल आदि का समावेश होता है।

(४) दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी राजस्थानी — निमाड़ी और मालवी।

(५) पहाड़ी-राजस्थानी — भीली।

२०:१। डा० जार्ज ग्रियर्सन ने भीली बोलियों को राजस्थानी के अन्तर्गत नहीं माना है[1] किन्तु डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने भीली बोलियों को राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत ही माना है।[2] प्राचीन काल में राजस्थान के अधिकांश भू-भागों में भीलों का शासन था। कालान्तर में भीलों को पहाड़ी भागों में जाना पड़ा। राजस्थान में भीलों का प्रमुख क्षेत्र बागड़ और भीली बोली वागड़ी के नाम से प्रसिद्ध है। साथ ही भीली बोली में राजस्थानी भाषा की विशेषताएं प्राप्त होती हैं इसलिए भीली को राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत मानना ही न्यायजनक होगा।[3]

घ. नामकरण

२१:१। राजस्थानी भाषा का नामकरण अनेक आधुनिक भाषाओं के नामकरण की भांति आधुनिक विद्वानों की देन है और इसका आधार 'राजस्थान' है। 'राजस्थान' की भांति "राजस्थानी भाषा" नाम भी देश - विदेश में प्रचलित एवं मान्य है।

२२:१। राजस्थानी भाषा को प्राचीन काल में मरूभूमि भाषा[४] मारूभाषा[५],

---

१ – लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया, खण्ड ९, भाग २, पृ० १।

२ – राजस्थानी भाषा पृ० ५,६।

३ – राजस्थानी भाषा की रूपरेखा, ले० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, पृ० २–५।

४ – "मरुभूम भाषा तणो मारग रमें आछो रीत सूं" रघुनाथ रूपक गीतां रो, कवि मंछ कृत, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

५ – "कर आणंदक बेस वहण मारू भाषा" वड़ो पाबू प्रकाश, मोडजी।

मरुदेशीया भाषा[1] और मरुवाणी[2] आदि नामों से अभिहित किया गया है। राजस्थानी का साहित्यिक रूप मुख्यतः पश्चिमी राजस्थानी अर्थात् मारवाड़ी रहा है और इस रूप में साहित्य भी प्रचुर परिमाण में प्राप्त होता है। मारवाड़ राजस्थान का विशेष भू भाग है और मारवाड़ी विस्तारक्षेत्र, जनसंख्या एवं साहित्य की दृष्टि से अनेक भारतीय भाषाओं से बढ़कर है। राजस्थानी भाषा की समस्त राजस्थान में प्रचलित एक विशेष शैली 'डिंगल' भी मुख्यतः मारवाड़ी पर ही आधारित है। उक्त कारणों से मारवाड़ी को राजस्थानी भाषा का साहित्यिक रूप माना गया है।

ङ. राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति

२३:१। भाषागत और जातिगत विशेषताओं के आधार पर संसार की भाषाएं १४ परिवारों में विभक्त की गई हैं जिनमें "भारत जर्मनिक" अथवा "भारत युरोपीय" परिवार भी है।[3] इस भाषा-परिवार में समस्त उत्तरी भारत की भाषाएं; ईरान, अफगानिस्तान और पाकिस्तान की भाषाएं तथा समस्त युरोपीय भाषाओं का समावेश होता है। 'भारत जर्मनिक' कहने से भारत और जर्मनी की भाषाओं का ही बोध होता है तथा 'भारत युरोपीय' कहने से भारत और युरोप का ही बोध होता है और इस भाषा-परिवार से सम्बद्ध अन्य प्रदेश छूट जाते हैं। दक्षिण भारत की भाषायें द्रविड़ परिवार की हैं जिनका समावेश इस परिवार में नहीं किया जा सकता। इसलिये उक्त दोनों ही नाम त्रुटिपूर्ण हैं। इस परिवार से सम्बद्ध देशों के निवासी मूलतः आर्य माने गये हैं इसलिये इसका नाम "आर्य भाषा परिवार" सर्वथा उपयुक्त है।[4]

२४:१। आर्य-भाषा-परिवार की भारतीय शाखा में सर्वप्रथम ऋग्वैदिक भाषा के रूप प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद का समय १५०० ई० पू० माना गया है। वैदिक भाषा में सम्बद्ध जनता द्वारा धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगे इसलिये वैयाकरणों ने नियमों-उपनियमों द्वारा इसको 'संस्कृत' करने का प्रयत्न किया। अन्ततोगत्वा पाणिनि (५०० ई० पू०) ने अपने व्याकरणगत नियमों से इस भाषा को 'संस्कृत' रूप में सदा के लिये सुरक्षित कर दिया। इस प्रकार प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा का उक्त विकास काल १५०० ई० पू० तक माना गया है।

२५:१। भाषा का संस्कृत रूप स्थिर हो जाने पर भी लौकिक भाषा में परिवर्तन होते रहे। कालान्तर में यह नव-विकसित भाषा साहित्य-सम्पन्न भी हो गई। मुख्यतः बौद्धों

---

१ – प्राची मरुदेशीया प्राकृत मिश्रित भाषा, वंशभास्कर, महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण।

२ – डिंगल उपनामक कहँर मरुवानीहु विधेय. वंशभास्कर, महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण।

३ – भाषा-विज्ञान, डा० भोलानाथ तिवारी, किताब महल, इलाहाबाद (१९६१) पृ० ६०।

४ – राजस्थानी भाषा की रूपरेखा, ले० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, पृ० ७।

श्रोर जैनों ने इस भाषा में साहित्य रचना की। इस भाषा को 'प्राकृत' कहा गया। प्रारम्भिक रूपों को "पाली–प्राकृत" श्रोर "श्रर्द्धमागधी" कहा गया। कालान्तर में मागधी, शौरसेनी श्रौर महाराष्ट्री प्राकृतों में भी साहित्य-रचना हुई। 'प्राकृत' भी व्याकरण के नियमों से बद्ध हो गई तो जनता द्वारा एक नवीन भाषा का विकास हुश्रा जिसको, "श्रपभ्रंश" कहा गया। भरत मुनि के नाट्यशास्त्रानुसार अपभ्रंश नाम देश–भाषा के रूप में दूसरी-तीसरी सदी ई० से प्राप्त होने लगता है। श्राचार्य मार्कण्डेय के मतानुसार श्रपभ्रंश के मुख्यतः तीन रूप माने गये हैं— १. नागर, २. व्राचड श्रौर ३. उपनागर।[१] स्थान–भेद के श्रनुसार श्रपभ्रंश के उपभेदों की संख्या प्राकृत-चन्द्रिका में सत्ताईस बताई गई हैं —

व्राचडो लाटवैदर्भावुपनागरनागरौ।
वार्बरावन्त्यपांचालटाक्कमालवकेंकयाः ॥
गौड़ोद्रहैवपाश्चात्यपाण्ड्यकौन्तल सैंहला.।
कालिङ्ग्यप्राच्यकर्णाटकाञ्च्यद्राविड़गौर्जराः ॥
श्राभीरो मध्यदेशीयः सूक्ष्मभेदव्यवस्थिताः।
सप्तविंशत्यपभ्रंशाः वैतालादिप्रभेदतः ॥

२६:१। नागर-श्रपभ्रंश उक्त श्रपभ्रंश-रूपों में मुख्य माना गया है। नागर-श्रपभ्रंश राजस्थान की श्रपनी भाषा थी श्रौर अपने समय की प्रधान साहित्य-सम्पन्न भाषा भी थी। नागर-श्रपभ्रंश का प्रसार सम्पूर्ण राजस्थान के साथ अधिकांश उत्तर भारत में था। नागर श्रपभ्रंश का व्याकरण हेमचन्द्राचार्य ने लिखा। इसी नागर-श्रपभ्रंश से राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति हुई।

२७:१। राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति "नागर-श्रपभ्रंश" से होने में संदेह प्रकट करते हुए कतिपय विद्वानों ने 'नागर-श्रपभ्रंश' के स्थान पर भिन्न नाम प्रस्तुत किये हैं। उदाहरण स्वरूप रिचार्ड पिशल[२] श्रौर डा० एल० पी० तेस्सीतोरी[३] ने "शौरसेनी श्रपभ्रंश" से राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति मानी है। यहां ध्यान में रखने योग्य बात है कि शौरसेनी श्रपभ्रंश' जैसा नाम हमारे प्राचीन साहित्य में प्रतिष्ठित नहीं है तो श्रब इसकी कल्पना कर "राजस्थानी" जैसी साहित्य-सम्पन्न भाषा की उत्पति 'शौरसेनी-श्रपभ्रंश' से कैसे मानी जा सकती है ? श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी[४], पुरातत्त्वाचार्य मुनि श्री जिनविजयजी[५]

१ – प्राकृतसर्वस्व, श्र० ७।

२ – प्राकृत भाषाश्रों का व्याकरण, श्रनु० डा० हेमचन्द्र जोशी, पृ० ६ –७।

३ – पुरानी राजस्थानी, श्रनु० डा० नामवरसिंह, भूमिका, पृ० १।

४ – श्र० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन, सभापति का भाषण, ३३ वां उदयपुर श्रधिवेशन का विवरण १, पृ० ६।

५ – कान्हडदे प्रबन्ध, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, प्रास्ताविक वक्तव्य,

और श्री एन० बी० दिवेटिया[1] ने 'नागर अपभ्रंश' के स्थान पर 'गुर्जरी-अपभ्रंश' नाम दिया है। इस नाम के विषय में भी वही शंका सामने आती है जिसका उल्लेख 'शौरसेनी-अपभ्रंश' के सम्बन्ध में किया गया है। साथ ही 'गुर्जरी' का क्षेत्र गुजरात ही हो सकता है। डा० सुनीतिकुमार चटर्ज्या ने राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति "सौराष्ट्री-अपभ्रंश"[2] से बताई है जिसके विषय में भी उक्त शंका होती है। सौराष्ट्र का क्षेत्र भी बहुत संकीर्ण है। राजस्थानी भाषा का उद्गम 'नागर-अपभ्रंश' में मानने में यह आपत्ति उठाई गई है कि 'नागर-अपभ्रंश' से नागर जाति की अपभ्रंश से तात्पर्य है अथवा नागरिकों की अपभ्रंश से ?[3] वास्तव में नागर-अपभ्रंश के साथ 'नागर जाति' अथवा नगर का सम्बन्ध बताना हमारी कल्पना मात्र है। 'नागर-अपभ्रंश' का प्रचलित अर्थ राजस्थान और गुजरात में प्रचलित साहित्यिक अपभ्रंश है। 'नागर-अपभ्रंश' के स्थान पर कोई दूसरा प्रयोग ही करना है तो हमारे मत से "मरुगुर्जरी-अपभ्रंश" सर्वथा उपयुक्त होगा। पश्चिमी राजस्थान और गुजरात की भाषा को सोलहवीं सदी तक डा० एल० पी० तैस्सीतोरी[4] और डा० जार्ज ग्रियर्सन[5] ने एक ही माना है। डा० तैस्सीतोरी ने गुजराती की उत्पत्ति भी इसी प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी से विशेष जांच-पड़ताल के परिणाम-स्वरूप बताई है।[6] डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने स्वीकार किया है कि यह प्राचीन पश्चिमी-राजस्थानी शौरसेनी अथवा मध्यदेशीय प्राकृत से भिन्न थी और राजस्थानी-गुजराती का मेल पश्चिमी-पंजाबी से तथा कुछ-कुछ सिन्धी से है किन्तु मध्यदेश की बोली से नहीं है। साथ ही डा० चाटुर्ज्या ने यह भी प्रकट किया है कि राजस्थान में जो आर्य-भाषा आई वह मध्यदेश की ओर से नहीं आई और सम्भव है कि वह हिसार, शेखावाटी अथवा उदयपुर की राह से आई है।[7] इस प्रकार स्पष्ट होता है कि शौरसेनी-अपभ्रंश से राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति न हो कर राजस्थान में प्रचलित, नागर-अपभ्रंश से ही हुई है।

१.८.२। अपभ्रंश और राजस्थानी भाषा के बीच सीमा-रेखा निश्चित करना एक कठिन कार्य माना गया है। राजस्थानी भाषा के प्राचीनतम रूप विक्रमीय ८ वीं शताब्दी से

१ – गुजराती लेंग्वेज एण्ड लिट्रेचर, भा० २, पृ० ६।

२ – राजस्थानी भाषा, पृ० ४५।

३ – प० मोतीलाल जी मेनारिया, राजस्थानी भाषा और साहित्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० ३।

४ – पुरानी राजस्थानी, अनु० नामवरसिंह, काशी नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, भूमिका पृ० १०।

५ – लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, खण्ड ९, भाग २, पृ० २५।

६ – पुरानी राजस्थानी, अनु० नामवरसिंह, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी और 'ओरीजिन एण्ड डेवलपमेन्ट आफ बगाली लेंग्वेज', डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, भाग १, पृ० ९।

७ – राजस्थानी भाषा, राजस्थान विद्यापीठ, शोध-संस्थान, उदयपुर, पृ० ४५-४६।

प्राप्त होते हैं।[1] शालिभद्र सूरि रचित "भरतेश्वर बाहुबली रास" का रचनाकाल वि० सं० १२४१ है।[2] १३वीं सदी की अन्य राजस्थानी भाषा की रचनाओं में "जंबूस्वामी चरित"[3] "स्थूलिभद्र रास[4]", रेवंतगिरि रास[5]" "आबू रास[6]" और चन्दनबाला रास[7]" आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इन रचनाओं से प्रकट है कि १३वीं सदी वि० में राजस्थानी भाषा ने विकसित हो कर साहित्यिक स्वरूप प्राप्त कर लिया था। किसी भाषा को बोल-चाल के स्तर से विकसित हो कर साहित्यिक स्वरूप प्राप्त करने मे कुछ शताब्दियों का समय अवश्य लगता है।

२९:१। आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं का उद्भवकाल महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने 'सिद्ध-सामन्त-युग' के रूप मे ७६० ई० निर्धारित करते हुए इस युग के साहित्य को समस्त भारतीय आर्य भाषाओं की सम्मिलित निधि घोषित किया है।[8] डा० रामकुमार वर्मा ने इस युग को "संधिकाल" की संज्ञा देते हुए इसका प्रारम्भ सं० ७५० वि० माना है।[9] राजस्थानी भाषा और साहित्य का प्रारम्भकाल पं० मोतीलाल जी मेनारिया १०४५ वि० सं० से[10], श्री नरोत्तमदास जी स्वामी सं० ११५० वि० से[11] और श्री उदयसिंह भटनागर वि०सं० ७०० (६४३ ई०) से[12] मानते हैं। इस विषय में उल्लेखनीय

---

१ – राजस्थानी शब्द कोष, श्री सीताराम लालस, राजस्थानी शोध-संस्थान जोधपुर, भूमिका पृ० ८८।

२ – क – भारतीय विद्या, सं० मुनि जिनविजय जी, भाग २, अंक १, पृ० १-१९।
ख – हिन्दी काव्यधारा, राहुल सांकृत्यायन, पृ० ३९८-४०८।

३, ४, ५ – जैन गुर्जर कविओ, मोहनलाल दलीचन्द देसाई, भाग १, पृ० १-४ और भाग ३ पृ० ३९५-३९७।

६ – राजस्थानी, त्रैमासिक, कलकत्ता, भाग ३, अंक १।

७ – राजस्थान भारती, बीकानेर, भाग ३, अंक ३-४।

८ – हिन्दी काव्य धारा, किताबमहल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, (१९४५ ई०), भूमिका पृ० १२।

९ – हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामनारायण लाल, प्रयाग, चौथा संस्करण (१९५८ ई०), पृ० ५०।

१० – राजस्थानी भाषा और साहित्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० ७७।

११ – राजस्थानी साहित्य : एक परिचय, नवयुग ग्रंथ कुटीर, बीकानेर, पृ० २२।

१२ – राजस्थानी साहित्य विषयक निबन्ध, हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, सं०— डा० धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान) और व्रजेश्वर वर्मा (सहकारी), भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग, (१९५९ ई०) पृ० ५१९।

है कि मरु-भाषा का प्राचीनतम लिखित प्रमाण सं० ८३५ वि० का प्राप्त हो चुका है।[1] किसी भाषा अथवा बोली को विकसित होकर अपना नाम प्राप्त करने में कम से कम सौ-सवा सौ वर्षों का समय अवश्य लग जाता है। साथ ही राजस्थानी के पूषी कवि वि०सं० ७०० (६१३ ई०)[2], ढेढणिपा कृत चतुर्योग भावना वि०सं० ९०० (८४३ ई०)[3], गोरखनाथ कृत गोरखवाणी वि० सं० ९०० (ई० ८४३)[4], खुमाण कृत खुमाण रासो वि० सं० ९०० (ई० ८४३)[5] और देवसेन वि०सं० ९९० (ई० ९३३) कृत सावयधम्म दोहा और दर्शनसार[6] की उपलब्धि भी होती है। इसलिए राजस्थानी भाषा के उत्पत्ति-काल को ८ वीं सदी विक्रमी का प्रथम चरण मानना उचित होगा।

च. राजस्थानी भाषा का विकास

३०:१। राजस्थानी भाषा के विकास-काल को मोटे रूप में निम्नलिखित चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(अ) प्रस्तावना-काल— वि०सं० ८०७ (७५०ई०) से वि० सं० १०५७ (१००० ई०)

(आ) प्राचीन राजस्थानी भाषा काल— वि० सं० १०५८ (१००१ ई०) से वि०सं० १५५७ (१५०० ई०)

(इ) मध्यकालीन राजस्थानी भाषा काल— वि० सं० १५५८ (१५०१ ई०) से वि०सं० १९०७ (१८५० ई०)

(ई) आधुनिक राजस्थानी भाषा काल— वि० सं० १९०८ (१८५१ ई०) से प्रारम्भ।

अ. राजस्थानी भाषा का प्रस्तावना काल—

३१:१। राजस्थानी भाषा के प्रस्तावनाकालीन रूप प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नहीं होते, जिसका मुख्य कारण यह है कि इस काल का अधिकांश साहित्य श्रुतिनिष्ठ था। श्री किशोरसिंह बार्हस्पत्य ने ९वीं सदी के ऐसे राजस्थानी नायकों और जोगियों का वर्णन

---

१ – मुनि उद्योतन सूरि रचित कुवलय माला, राजस्थानी शब्द कोष, पृ० ८८।

२, ३, ४, ५, ६ – राजस्थानी साहित्य विषयक निबन्ध, लेखक – प्रो० उदयसिंह भटनागर, हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, सम्पादक – डा० धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान) और ब्रजेश्वर वर्मा (सहकारी), भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग (१९५९ ई०)।

किया है जिनका मुख्य कार्य पूर्वजों द्वारा सुनाई हुई रचनाओं को कण्ठस्थ रख कर जनता को सुनाना था।[1] भाषा विशेष में प्रारम्भिक साहित्य प्रायः मौखिक होता है। उदाहरण-स्वरूप— वेद, पुराण, उपनिषद् आदि को लिया जा सकता है जो प्रारम्भ में मौखिक थे और कालान्तर में लिपिबद्ध किये गये। आधुनिक काल में मौखिक रूप में प्रचलित लोकसाहित्य का मूल इसी कारण वेदों में प्राप्त होता है।[2]

३२:१। नागर अपभ्रंश का प्रभाव समस्त उत्तरी-भारत में था अतएव नागर-अपभ्रंश से विकसित होने वाली प्राचीन राजस्थानी का प्रभाव भी अधिकांश उत्तरी भारत में रहा। राजस्थानी भाषा का प्रभाव कभी पूर्व में काशी तक था, यह कबीर की रचनाओं और भाषा से प्रमाणित हो चुका है।[3]

३३:१। राजस्थानी भाषा के प्रस्तावना-काल में भारत पर मुसलमानों के आक्रमण प्रारम्भ हो चुके थे इसलिए परम्परागत शान्त-रस-मयी अपभ्रंश काव्यधारा में परिवर्तन होकर वीर-रस-मयी राजस्थानी काव्य-धारा का विकास प्रारम्भ हुआ।

३४:१। प्रस्तावनाकालीन राजस्थानी के कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं—

गुरु उवएसे अमिय-रसु, धाव न पीअउ जेहि।
बहु-सत्थत्थ मरुत्थलहिं, तिसिण मरिअउ तेहि॥
चिन्ताचिन्ति वि परिहरहु, तिम अच्छहु जिम बालु।
गुरु वअणे दिढ मति करु, होइजई सहज उलालु॥ — सरहपा (७६ ई०)[4]

कसिण कमल-दल लोयण चल रे हंत ओ।
पीण पिधुल थण कडियल भार किलत ओ॥
ताण चलिर वाळियावलि कळयळ सद्द ओ।
रास रम्मिजइ लब्भइ जुवइ सत्थ ओ॥ — उद्योतन सूरि (७७९ ई०)[5]

---

१ – "डिंगल भाषा और उसका साहित्य" सौरभ, झालावाड़, भाग १, संख्या १।
२ – क – रेवरेंड सर जी० डब्ल्यू० काक्स, दी माइथोलोजी आफ दी आर्यन नेशन्स, प्रथम अध्याय।
ख – शोध-पत्रिका, उदयपुर, वर्ष २, अंक १ में प्रकाशित सम्पादकीय, लेखक पुरुषोत्तमलाल मेनारिया।
३ – ढोला मारू रा दूहा (सूर्यकरण पारीक, रामसिंह और नरोत्तमदास द्वारा सम्पादित) काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रस्तावना, पृ० १६७-१७८।
४ – हिन्दी काव्य-धारा, राहुल सांकृत्यायन, पृ० ८-१०।
५ – राजस्थानी शब्द कोष, श्री सीताराम लालस, राजस्थानी शोध-संस्थान, जोधपुर, भूमिका पृ० ८८।

एक्कल्लउ सुहडु अणंत-बलु । पफ्फुल्लु तोवि तहो मुह-कमलु ॥
परिसक्कइ थक्कइ उल्ललइ । हक्कारइ पहरइ दणु दलई ॥
आरोक्कइ टुक्कइ उत्थरइ । पहिउमइ रुंभइ वित्थरइ ॥
णवि छिज्जइ भिज्जइ पहरणहिं । जिह जिणु संसारहो कारणेहिं ॥

— स्वयंभू (७९०ई०)[1]

टालत (नगरत) मोर घर नाही पडिवेशी । हांडीत मात नाहि निति आवेशी ॥
वेगस साप वड़हिल जाअ । दुहिल दुधु कि वेन्टे समाअ ॥
बलद विआअल गविआ वाझे । पियहु दुहिअइ ए तीनों सांझे ॥
जो सो बुधो सोय नि-बुधी । जो सो चोर सोई साधी ॥
निति सिआला सिहे सम जुझअ । टेण्टणपा एर भीत विरले बूझअ ॥

— टेण्टण(तंति)पा (८४५ ई०)[2]

महु आसायउ थोडउवि, णासइ पुण्णू बहुन्तु ।
वइसाणरह तिडिक्कडंइ, काणणु डहइ महन्तु ॥
जूं ए वणहुण हाणि पर वयह मि होइ विणासु ।
लग्गउ कट्ठुण डहइ पर इयरहं डहई हुयासु ॥
वेसहिं लग्गइ धनिय धणु, तुट्टइ बंधउ मिन्तु ।
मुच्चइ णरु सव्वई गुणहं, वेसाधरि पइसन्तु ॥ — देवसेन (९३३ ई०)[3]

उव्वंन बहु मच्छरो भडो, हत्थि-खंभ-हत्थो महाभडो ।
चरण चार चालिय धरायलो, धाइयो भुया तुलिया भयगलो ।
ता कयतेहि तेण दारुणं, परियलंत बण रुहिर सारुणं ।
नल्लिय दलिय पडि खलिए सदणं, णिविड गय घडा वीढ मद्दणं ।
आरदमणु पयायउ साहिमाणु, हणु हणु भणंतु कडदिवि किवाणु ॥

— पुष्पदन्त (९५९-७२ ई०)[4]

आ. प्राचीन राजस्थानी भाषा काल —

का प्रभाव बना रहा तथा क्रमशः कम होता गया। इस काल में राजस्थानी से गुजराती अलग नहीं हुई थी। गुजराती भाषा और साहित्य के मर्मज्ञ स्व० श्री झवेरचन्द मेघाणी ने इस विषय में लिखा है —

"इस जमाने का पर्दा उठा कर यदि आप आगे बढ़ेंगे तो आपको कच्छ-काठियावाड़ से लेकर प्रयाग पर्यन्त के भूखण्ड पर फैली हुई एक भाषा दृष्टिगोचर होगी।.... इस व्यापक बोलचाल की भाषा का नाम राजस्थानी है। इसी की पुत्रियां फिर व्रजभाषा, गुजराती और आधुनिक राजस्थानी का नाम धारण कर स्वतन्त्र भाषायें बनी।"[1]

३६:१। डा० एल० पी० तेस्सितोरी ने इस काल की भाषा का नाम "प्राचीन-पश्चिमी-राजस्थानी" दिया है और लिखा है —

"तथ्य यह है कि जिस भाषा को मैं "प्राचीन पश्चिमी-राजस्थानी" के नाम से पुकारता हूं, उसमें वे सभी तत्व हैं जो गुजराती के साथ-साथ मारवाड़ी के उद्भव के सूचक है और इस तरह वह भाषा स्पष्टतः इन दोनों की सम्मिलित मां है।"[2]

३७:१। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने इस विषय में लिखा है —

"ईस्वी सन् १६०० तक पश्चिमी-राजस्थान (मारवाड़) तथा गुजरात की भाषा एक ही थी। ईसा के पूर्व की तृतीय शती को, राजस्थान से संपर्कित सौराष्ट्र की भाषा का निदर्शन गिरनार (जूनागढ़ राज्य) लेख से उपलब्ध हुआ है।"[3]............... हम कह सकते है कि, प्राकृत या मध्ययुग की आर्यभाषा, गुजरात-काठियावाड़ तथा मारवाड़ प्रान्तों में, मध्यप्रदेश या शूरसेन-जनपद मे नही फैली थी।............ ऐसा प्रतीत होता है कि वह पश्चिम-पंजाब प्रान्तों से ही आई थी।[4]

३८:१। प्राचीन राजस्थानी की प्रमुख विशेषताएं दो हैं जिनसे वह एक ओर अपभ्रंश से अलग होती है और दूसरी ओर आधुनिक राजस्थानी तथा गुजराती से अलग होती है —

(१) अपभ्रंश के व्यंजन-द्वित्व का सरलीकरण और पूर्ववर्ती स्वर का दीर्घीकरण। जैसे— अज्ज (अप०) आज (प्रा० रा०), वद्दल (अप०) बादल।

---

१ – राजस्थानी शब्द कोष, श्री सीताराम लालस, पृ० ८७।

२ – पुरानी राजस्थानी, डा० नामवरसिंह कृत हिन्दी अनुवाद, पृ० ४, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

३ – राजस्थानी भाषा, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, पृ० ४५।

४ – वही, पृ० ४७।

(२) अपभ्रंश के दो स्वर-समूहों "अइ" और "अउ" के उद्वृत्त र, अर्थात् इनमें से प्रत्येक समूह के दो स्वर दो अक्षर माने जाते थे। जैसे— अच्छइ (अप०), अछइ (प्रा० रा०)। अपभ्रंश "अइ" और "अउ" संकुचित होकर क्रमशः गुजराती में "ए" और "ओ" तथा आधुनिक राजस्थानी में 'ऐ' और "औ" हो जाते हैं।[1]

३६:१। प्राचीन राजस्थानी भाषा में मुख्यतः जैन आचार्यों, साधु-साध्वियों, यतियों, चारणों और कविरावों ने अपनी विभिन्न विषयक रचनाएं प्रस्तुत कीं। प्राचीन राजस्थानी भाषा की एक प्रधान विशेषता यह है कि इसमें पद्य के साथ गद्य भी प्राप्त होता है। प्राचीन राजस्थानी भाषा के कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं —

सदेसडउ सवित्थरउ, पर मह कहण न जाई।
जो कालंगुलि मूंदडउ, सो बांहडी समाई॥
सुन्नारइ जिम यह हिइउ, पिय उक्कंखि करेई।
विरह हुयासी दहेवि करि, आसाजलि सिंचेई॥

—अब्दुर्रहमान (१०१० ई०)[2]

गयण-मग्ग-संलग्ग लोल कल्लोल परंपरू।
णिक्कारणुक्कउ नक्क-चंक-चंकमण-दुहंकरू॥
उच्छलंत-गुरु-पुच्छ-मच्छ रिंछोलिनिरंतरू।
विलसमाण जालाजडाल वडुवानल दुत्तरू॥
आवन्न सयायनु जलहि लहु गोपउ जिवते नित्थरहि।
नीसेस-वसण-गण-निट्ठवणु पासनाहु जे संभरहि॥

—सोमप्रभु सूरि, (वि० सं० १२४१)[3]

एकणि वंनि वसंतडा, एवड़ अंतर काइ।
सीह कवड्डी ना लहइ, गैवर लक्ख विकाइ॥
गैवर गले गळथीयो, जह खंचै तह जाइ।
सीह गळथ्यण जे सहे, तो दह लक्ख विकाइ॥

—सिवदास चारण (वि०सं० १४८५)[4]

---

१ – पुरानी राजस्थानी, डा० एल० पी० तेस्सीतोरी, डा० नामवरसिंह कृत हिन्दी अनुवाद, पृ० ७-८।

२ – संदेश रासक, सिंघी जैन ग्रन्थ-माला, सं० मुनि श्री जिनविजयजी, भारतीय विद्या भवन, बम्बई।

३ – कुमारपाल प्रतिबोध, र० का०, वि०सं० १२४१।

४ – अचलदास खीची री वचनिका, सं० डा० एल० पी० तेस्सीतोरी, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता।

किलकिलतो वन विचरती, वेलो वर वीसास ।
सयि सामी साहस कीउ, हूँ एकली निरास ॥
भणि असाइत भव अंतरि, समरि सामणि कंत ।
हंसावलि धरती ढली, पिउ पिउ मुक्खि भणंति ॥

— असाइत, र० का० वि०सं० १४२७ ।[1]

हय खुरतल रेणइ रवि छाहिउ, समुहर भरि ईडरवइ आइउ ।
खान खवास खेलि वलि धायु, ईडर अडर दुग्गतल गाह्यु ।
दमदमकार दमाम दमक्कइ, ढमढम ढमढम ढोल ढमक्कइ ।
तरवर तववर वेस पहट्टइ, तरतर तुरक पड़इ तलहट्टइ ।

— श्रीधर, वि०सं० १४५७ ।[2]

राजा अनइ महामात्यु वे जणा अश्वापहारइ तउ अटवी माहि गया । भूखिया हूया । वणफल खाधां । नगरि आविया । राजा सूपकार तेड़ी करी कहइ । जिके भक्ष्यभेद संभवहं ति सगलाई करउ । सूपकारे कीधा । राजा आगइ आणिया । राजेंद्रि चीतविउ । मधुर मोदक पूयकादिक भक्ष्य-भेद पाछेई माविसिई । इणि कारणि पहिलउ वाकुल ढोकलादिक भक्ष्य भेद भखी करी पाछइ मधुराहार भक्षणु कीधउ ।

—तरुणप्रभ सूरि (१३५५ ई०)

इ. मध्यकालीन राजस्थानी भाषा-काल—

४०: १ । मध्यकालीन राजस्थानी भाषा का समय १५०१ ई० से १८५० ई० है । सोलहवीं सदी ईस्वी के प्रारम्भ में गुजरात पर पूर्णतः मुस्लिम शासकों का आधिपत्य स्थापित हो जाता है । इसी समय गुजराती का विकास एक स्वतन्त्र भाषा के रूप में होने लगता है और राजस्थानी से इसमें भिन्नता दृष्टिगोचर होने लगती है । राजस्थान और गुजरात के चारण साहित्यकार तथा जैन साधु एवं साध्वियां अवश्य ही राजस्थान-गुजरात की सांस्कृतिक एकता बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं । इस काल की अनेक चारण और जैन-रचनाएं राजस्थान और गुजरात में समान रूप से लोकप्रिय रहीं । राजस्थानी भाषा और साहित्य से गुजराती भाषा और साहित्य उसकी सन्तान के रूप में पोषण-शक्ति सतत् प्राप्त करते रहे ।

४१:१ । मध्यकालीन राजस्थानी भाषा-काव्य की एक प्रधान शैली 'डिंगल' के नाम से प्रसिद्ध हुई । डिंगल का मुख्य आधार मारवाड़ी बोली है, जिसको चारण कवियों ने अधिक अपनाया । डिंगल शैली का प्रचलन राजस्थान के सभी भागों में हुआ । साथ ही मध्यप्रदेश और गुजरात के चारण कवियों तथा उनके अनुयायियों ने भी इसी शैली का प्रयोग किया ।

---

१ व २ – प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ६, सं० डा० गोवर्धन शर्मा 'असाइत' पृ० १४-२५, 'श्रीधर' पृ० ३९-५२, राजस्थान विद्यापीठ, साहित्य-संस्थान, उदयपुर ।

४२:१ । शब्दों में "अइ" के स्थान पर 'ऐ' और "अउ" के स्थान पर "औ" का प्रचलित होने लगे थे । कतिपय शब्दों के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

'अइ' के स्थान पर ए— उन्हाले (उन्हालइ), सियाले (सियालइ), जागिये (जागियइ)

"अउ" के स्थान पर औ— उनमिऔ (उनमिअउ), जागियौ (जागियउ)

द्वित्तवर्ण— कडक्क, फडक्क, उठ्ठ, उड्डिय, लग्गिय, मग्गिय आदि ।

४३:१ । राजस्थानी साहित्य की एक शास्त्रीय शैली के रूप में डिंगल स्थिर सी हो गई और राजस्थान के प्रायः सभी भागों के साहित्यकार, मुख्यतः चारण कवियों ने इसमें विविध विषयक रचनाएं प्रस्तुत कीं । मध्यकालीन राजस्थानी में "गीत" और "दूहा" नामक छन्दों का प्राधान्य रहा ।

मध्यकालीन राजस्थानी की लौकिक शैली का दर्शन— मीरां, चन्द्रसखी, दयाबाई, दादू और अनेक जैन कवियों की रचनाओं में होता है । मध्यकालीन राजस्थानी की लौकिक शैली के अन्तर्गत 'पिंगल' भी प्रचलित हुई जिस पर ब्रज-भाषा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है ।

४४:१ । मध्यकालीन राजस्थानी में विविध शैलियों और विषयों के पद्य के साथ ही गद्य भी प्रचुर मात्रा में लिखा गया । मध्यकालीन राजस्थानी गद्य की विविध विधाओं के रूप में ख्यात, वात, वंशावली, कथा, हाल, हकीकत, विगत, पीढ़ी, याद आदि लिखे गये तथा संस्कृत और फारसी ग्रन्थों के अनुवाद भी किये गये । टीका-ग्रन्थों, शिलालेखों और पट्टों-परवानों के रूप मे भी पर्याप्त राजस्थानी गद्य उपलब्ध होता है ।[1]

४५:१ । मध्यकालीन राजस्थानी भाषा में देशज शब्दों के साथ ही संस्कृत तुर्की, अरबी और फारसी के तत्सम तथा तद्भव शब्द भी प्रचुर मात्रा में सम्मिलित हो गये । मध्यकालीन राजस्थानी भाषा के कतिपय उदाहरण निम्नलिखित है –

रगि राउत वावरइ कटारी, लोह कटांकडि ऊडइ ।
तुरक तणा पाखरिया तेजी, ते नरम्रारे गृडइ ॥
माल तणी परि वाथे आवइ, प्रांणइ विलगइ मूंटइ ।
गृडरा पाद्र दोट वजावइ, भिडइ प्रहार मोटइ ॥
ऊपरिया पूंनार विछुटइ, भूनलि जाजइ पाउ ।
वाढ़ी मूढ़ि डोलीइ डाचा, वरणि वलइ नीहाउ ॥

---

१ – क – राजस्थानी शब्द कोष, श्री सीताराम जी लालस, सम्पादकीय प्रस्तावना ।
ख – राजस्थानी भाषा और साहित्य, डा० हीरालाल माहेश्वरी, राजस्थानी गद्य ।

भाजइ कंध पडइ रिण माथां, धगड तणां धड धाइ ।
माहो मांहि मारेवा लागा, विगति किसी न कहाइ ॥[1]

— पद्मनाभ कृत कान्हडदे प्रबन्ध (र० का० वि० सं० १५१२)

'ते घोडा गंगोदकि स्नान कराव्या । तेह तणि सिरि श्री कमलि पूजा कीधी। तेह तणि पूठि बावनो चंदन तणा हाथी दीधा। तेही तणि पूठि पंच वर्ण पखर ढाली । किसी पखर— रणपखर, जीणपखर, गुडिपखर, लोहपखर, कातलीयाली पखर ।

— पद्मनाभ कृत कान्हडदे प्रबन्ध (र० का० वि० सं० १५१२)[2]

फागुण केरां फणगरां, फिरि फिरि गाई फाग ।
चंग वजावइ चंग परि, आलवइ पंचम राग ॥
केलि कुसुंमा केरड़ा, केसर सुर-तरु सोय ।
माधव कीजइ छांटणां, अमर आश्चर्यइ जोइ ॥

— गणपति कृत माधवानल कामकन्दला, (र० का० वि० सं० १५७४)[3]

स्याम मिलण रो घणों उमावो, नित उठ जोऊं बाटड़ियां ।
दरस बिना मोहि कछु न सुहावै, जक न पड़त है आंखड़ियां ।
तळफत-तळफत बहु दिन बीता, पड़ी विरह की पासड़ियां ।
अब तो वेगि दया करि साहिब, मैं तो तुमरी दासड़ियां ।
नैण दुखी दरसणकूं तरसै, नाभि न बैठे सांसड़ियां ॥
राति दिवस यह आरति मेरे, कब हरि राखे पासंड़ियां ।
लगी लगन छूटण की नाहीं, अब क्यूं कीजै आंटड़ियां ।
मीरां के प्रभु कब रे मिलोगे, पूरो मन की आसड़ियां ॥

— मीरांबाई (वि० सं० १५५५-१६०३)

ऊठि अचूंका बोलणा, नारी पयंपै नाह । घोड़ा पाखर घमघमी सींधू राग हुवाह ॥
हूवां अति सींधवी राग वागी हकां । थाट आया पिसण घाट लागै थकां ॥
अखाड़ां जीति खग अरि घड़ा खोलणा । ऊठि हरधवल सुत अचुंका बोलणा ॥

— ईसरदास बारहठ (वि० सं० १५९५-१६७५)[4]

---

१ – सं० श्री के० बी० व्यास, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ।

२ – वही ।

३ – प्रका० गायकवाड ओरिएंटल सिरीज, विश्व विद्यालय, बड़ोदा ।

४ – हालां-झालां रा कुण्डलिया, सं० पं० मोतीलालजी मेनारिया, पृ० ५, हिंदी पुस्तक भण्डार, उदयपुर ।

सांगो धरम सहाय, बाबर सूं भिडियो बिहस ।
अकबर कदमां आय, पड़े न राण प्रतापसी ।।
अकबर घोर अंधार, ऊंघाणा हिन्दू अवर ।
जागे जगदातार, पोहरे राण प्रतापसी ।।

— दूरसाजी आढ़ा (वि०सं० १५९२-१७१२)[1]

पहिलो मुख राग प्रगट थियो प्राची, अरुण कि अरुणोदय अम्बर ।
पेखे किरि जागिया पयोहर, संझ्या वंदण रिखेसर ।।

—महाराज पृथ्वीराज राठोड़ (वि० सं० १६०६-१६५७)[2]

दादू इण संसार सों, निमख न कीजो नेह ।
जांमण मरण आवटण, छिन-छिन दाझै देह ।।
दादू सब जग निरधना, धनवंता नहिं कोइ ।
सो धनवंता जाणिए, जाके राम पदारथ होइ ।।

— दादूदयालजी (वि० सं० १६०१-१६६०)[3]

सखि आयउ सांवण मास, पिउ नहीं मांहरइ पासि ।
कंत विना हूं करतार, कीधी कि सामणी नारि ।।
भाद्रवइ वरसइ मेह, विरहण धूजइ देह ।
गयउ नेमि गढ़ गिरनारि, निरवही न सकी नारि ।।

— समयसुन्दर (वि० सं० १६२०-१७०२)[4]

सुणि रांमो सबळ रो, एम बोलियो अड़ीखंभ ।
विड़ंग ओरि दळ विलंद, जवन खग हणूं रूप जंम ।।
धण भेलूं खग-धाव, सांम निज कांम सुधारूं ।
सिर समपूं सकर नूं, रंभ चौंसरि गळ धारूं ।।
जग तणो मोह माया तजूं, जिम-गोपीचंद भरथरी ।
चढ़ि रथां अमरपुर मझि चढूं, अमर कीत सज आपरी ।।

— कविया करणीदान (र० का० वि०सं० १७८७)[5]

---

१ – विरुद छिहुत्तरी, प्रताप सभा, उदयपुर ।

२ – वेलि क्रिसन रुकमणी री, छन्द सं० १९ ।

३ – दादूवाणी ।

४ – बारहमासा, समय-सुन्दर कृत कुसुमांजली, सं० श्री अगरचन्द नाहटा और श्री भंवर लाल नाहटा, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर ।

५ – सूरजप्रकास, सं० श्री सीताराम लालस, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ।

सांचो मित्र सचेत, कह्यो कांम न करे किसो।
हर अरजण रे हेत, रथ कर हांक्यो राजिया ॥
मलयागिरि मंझार, हर कोइ तरु चंदण हुवै।
संगत लहै सुधार, रूंखा ने ही राजिया ॥

—कृपाराम खिड़िया (१९ वीं सदी वि०)[1]

ई. आधुनिक राजस्थानी भाषा-काल—

४६:१। आधुनिक राजस्थानी भाषा-काल का प्रारम्भ सन् १८५१ ई० से होता है। आधुनिक राजस्थानी भाषा की प्रधान विशेषता यह है कि इसको "डिंगल" के विविध बन्धनों से मुक्ति मिल गई है, जिसके परिणाम स्वरूप राजस्थानी का रूप जनता के लिए सर्वथा निकट एवं बोधगम्य हो गया है। उदाहरण के लिए केसरीसिंह बारहठ, कोटा (१८७२-१९४२ ई०), ऊमरदान लालस (ज० सं० १९०८), नाथूदान महियारिया (जन्म १८९२ ई०) और शक्तिदान कविया (जन्म १९४० ई०) आदि की सरल सरस रचनाओं को देखा जा सकता है।

राजस्थानी भाषा की लौकिक शैली भी आधुनिक काल में विकसित होती रही। मीरां और दादू आदि सन्तों की लौकिक शैली में ही आधुनिक काल में महाराज चतुरसिंहजी ने विविध विषयक गद्य और पद्यमयी रचनाएं लिखीं जिनका जनता में विशेष प्रचार हुआ।

४७:१। पश्चिमी भाषा-साहित्य का प्रभाव भी आधुनिक राजस्थानी भाषा पर दृष्टिगत होता है। उदाहरण-स्वरूप यूरोपीय भाषाओं के अनेक शब्द आधुनिक राजस्थानी भाषा में सम्मिलित हो गये हैं। यथा —

"अफसर, अरदली, अलमारी, अस्पताल, इंजण, इस्कूल, इस्टेसण, ओफिस, एडवोकेट, कंडक्टर, कप, कम्पोडर, कालर, किलास, कुली, गारड, गिलास, चाकलेट, चेक, चेयरमेन, टिकट, टेम, टेलीफून, टेमण, दराज, नोटिस, डाक्टर, डिपटी, नेकलेस, पिन, पेनसिल, फाइल, फुटबोल, फुन, बटण, बाइसिकल, बुरश, बूट, बैंक, बोर्ड, मनीयाडर, मास्टर, मिलेट्री, मोटर, रूल, रेल, रेल्वे, वोट, साइकल, सिगल, सैंडल, सोडा, होल्डर।" आदि।

४८:१। आधुनिक राजस्थानी भाषा के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं —

रहंट फरे चरख्यो फरे, पण फरवा में फेर।
वो तो बाड़ हर्‌यो करे, वो छूंतां रो ढेर ॥

---

१ – राजिया रा दूहा, हिन्दी पुस्तक मन्दिर, जोधपुर।

कारड तो कहतो फरे, हर कीनै हकनाक।
जां री व्है व्हीनै कहै, हिये लिफाफो राख॥

—महाराज चतुरसिंह (वि॰सं॰ १९३३-१९८६)[1]

सत ऊजळ संदेस, उदयराज ऊजळ अखे।
दीपे वांरो देस, ज्यांरो साहित जगमगे॥
रटो वीर रजथान रा, साचो मंत्र सदीव।
जीवे देस-समाज वे, साहित जिकां सजीव॥

—श्री उदयराज उज्ज्वल (जन्म वि॰ सं॰ १९४२, वर्तमान)[2]

"राजस्थानी साहित्य में जको तेज पैली हो वो ही आज भी है, कठै ही गयो कोनी। राजस्थान रे आज रे कवि में भी वाही प्रतिभा, वोही देशप्रेम, वोही आत्माभिमान, वो ही तेज और वा ही आग भरी है। गांव-गांव में आज भी इसा कवि बैठा है। पण वे प्रकाश में कोनी आवे। राजस्थानी रो ओ नवो साहित्य प्रकाश में आवसी जके दिन संसार देखसी के राजस्थानी साहित्य रो तेज कोई भाव घट्यो कोनी।"

—ठाकुर रामसिंह (जन्म सं॰ १९५६, वर्तमान)[3]

पसवाड़ो मत फेर निदालू, जागण री वेळा आई।
दिन उग्यो चिड़कोली बोली, आभै में लाली छाई।
माटी मुळकी, बीज पसीज्या, कूंपल पर जोबण छायो,
फूल पातड़ी बिछिया वण गी, धरती रो मन अंगड़ायो।
थोड़ी सी जे आंख मांज ली, निजर घणों ही आवेलो।
जे देखी अण देखी कर दी, बिना मोत मर जावेलो॥

—श्री मेघराज 'मुकुल' (जन्म सं॰ १९८०, वर्तमान)[4]

विरह

ओरे प्रखर प्रीत रा झूलणा,
थां फलियां जोबण मद उफणै।
अभाव री अमली पीड़,
परखण रा छिण अणमणा
उर पतझड़ उतरै।

---

१ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, पं० मोतीलाल जी मेनारिया, पृ० २५६।
२ – राजस्थान की रसधारा, पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, पृ० २६, २८।
३ – राजस्थानी भाषा की रूपरेखा, पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, पृ० २२।
४ – राजस्थान के कवि, भाग २, सम्पादक श्री रावत सारस्वत, राजस्थान साहित्य एकेडेमी, उदयपुर, पृ० ११६।

थां सो बोझाळ न हरगिर आवसो,
थां सो खरो न वासग जेर।
पल-पल कळप कलपना रो।

— श्री नारायणसिंह भाटी (वर्तमान)[1]

अड़वो ऊभ्यो खेत में,
सोनो निपजे रेत में,
खबरदार! हरियाळी खेती रे कुण नजर लगावे,
रात अंधेरी बाड़ तोड़ औ कुण छाने सी आवे?
ऊजड़ चाले रे,
हरी-भरी खेती घूमर घाले रे।

— श्री गजानन वर्मा (वर्तमान)[2]

रंगभीने परभात, पवन री सुधरी हेलो।
चहकै बैठो डाळ, कन्हैयो वो अलबेलो।
कुकड़ री कुरळाट, सिकारी मोंगी चाला।
पण पोढ्या घर सेज, पुरस नीं जागण वाला॥
थां पोढणियां काज, हमें नी तपसी उगसी।
सांझ समै घरनार, संजीरे फेर न लगसी।
घावल आनां पेल, थानिया हूंसी न करसी।
चालां होटाहोट, फेर नीं कळियां चढसी॥

— टामस ग्रे की "एलीजी" का राजस्थानी पद्यानुवाद
— श्री शक्तिदान कविया (वर्तमान)[3]

४. ललित कलाएं और राजस्थानी साहित्य

४६:१। राजस्थान-प्रदेश की महानता और विविधता के अनुरूप ही यहां की ललित एं महान् है। राजस्थान के प्राकृतिक वातावरण में मरुस्थलीय टीबों, भरी-हरी पर्वत-ओं, उपजाऊ घाटियों, कल-कल निनादिनि सरिताओं और सुविस्तृत सरोवरों का अपूर्व [illegible] हुआ है। राजस्थान के प्राकृतिक वातावरण की विविधताओं से प्रेरित राजस्थानी

— राजस्थान के कवि, भाग २, पृ० ७७।
— सोनो निपजे रेत में।
— वाणी, मासिक, सं० श्री विजयदान देथा, रूपायन प्रकाशन, बोरून्दा (जोधपुर), अंक १।

कलाओं में भी मोहक विविधताओं का अनूठा सामंजस्य हुआ है। राजस्थानी साहित्य का संगीत, चित्र और नृत्य से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है इसलिए सम्बन्धित कलाओं पर दृष्टिपात करना सर्वथा प्रासंगिक होगा।

क. संगीत

५०:१। भारतीय संस्कृति का एक श्रीसम्पन्न केन्द्र होने से राजस्थान में भी भारतीय संगीत का विकास हुआ। राजस्थान के राजपूत नरेशों और सामन्तों ने न केवल संगीतज्ञों को प्रश्रय तथा प्रोत्साहन दिया वरन् अनेक बार स्वयं भी संगीत के उत्थान में सक्रिय भाग लिया। राजस्थान के विविध तीर्थों और मन्दिरों आदि धार्मिक केन्द्रों से भी संगीत को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। राजस्थान के अनेक भक्त-कवियों ने संगीत की विविध राग-रागिनियों के अनुसार गेय पदों की रचना कर संगीत और साहित्य की एकता को प्रतिष्ठित किया। साथ ही मुगल साम्राज्य के पतन-काल में अनेक प्रमुख भारतीय संगीतज्ञों और उनके घरानों को राजस्थान के राज-दरबारों में प्रश्रय प्राप्त हुआ।

५१:१। महाराणा कुम्भा (वि० सं० १४९०-१५२५) स्वयं संगीतशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे जिन्होंने संगीत विषयक तीन ग्रन्थों की रचना की — संगीतराज, संगीतमीमांसा और सूडप्रबन्ध।[1] इनमें से संगीत-राज मुख्य है जिसकी रचना १६००० श्लोकों में की गई थी।[2] इस बृहद् ग्रन्थ के कतिपय भाग प्रकाशित भी हो चुके हैं।[3]

५२:१। भक्त कवयित्री मीरांबाई ने संगीत के विकास में विशेष योग दिया, जिनके भक्ति विषयक पदों को संपूर्ण देश में भावपूर्वक विभिन्न राग-रागिनियों में गाया जाता है। भारतीय संगीत की रागों में "मीरांबाई की मल्लार" भी प्रसिद्ध है। राजस्थान में प्रचलित रागों में "सिंधू" और "मांड" भी भारतीय संगीत में विशेष स्थान रखते हैं। "सिंधु राग" वीररस के सर्वथा उपयुक्त माना गया है जिसका उल्लेख राजस्थान के अनेक काव्य-ग्रन्थों में हुआ है—

हूंकलै सीधवो वीर कलहल हुवे। वरण वरि अपछरां सूरियां सह वुवे॥
— हालां झालां रा कुण्डलिया, ईसरदास (वि० सं० १५९५-१६७५)[4]

---

१ – महाराणा कुम्भा, डा० हरविलास शारदा, पृ० १६६।

२ – डा० ओझा, रा० इ०, जिल्द १, पृ० ३२।

३ – क – नृत्यरत्नकोश, सं० रसिकलाल परीख और डा० प्रियबाला शाह, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।
ख – संगीत राज सं० सी० कुन्हन राजा, अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर।

गाज ग्रंवाल पड रौल गैणाइयां। सानुने सिधुये राग सरणाइयां ।।
— रुखमणी-हरण, सायांजी झूला (वि०सं० १६३२-१७०३) [१]

ग्राघा पड़वां ग्रोलगण, जांगड़ जीमण जाग। रण भड़तां भड़ दूर को, सुणसी सींधुराग।।
— वीर सतसई, सूर्यमल जी (वि० सं० १८७२-१६२५) [२]

५३: १। 'मांड राग' का भी राजस्थानी काव्य एवं संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है। मांड राग की उत्पत्ति जैसलमेर-प्रदेश में मानी गई है। [३] मांड राग मुख्यतः शृंगार-रस के लिये प्रयुक्त होता है। राजस्थानी "दूहा" छन्दों को मांड राग में अधिक गाया जाता है।

५४:१। बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह (वि०सं०१७२६-५५) के शासनकाल में संगीत विषयक कतिपय महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गये जिनमें पं० भाव भट्ट कृत संगीत अनूपांकुश, अनूप संगीत विलास और अनूप संगीत रत्नाकर विशेष उल्लेखनीय हैं। [४] महाराजा प्रतापसिंह, जयपुर (स० १८२१-६०) ने भी राधागोविन्द संगीत-सार, राग रत्नाकर और स्वरसागर नामक संगीत सम्बन्धी ग्रन्थों के निर्माण में योग दिया। [५]

५५:१। राजस्थानी लोकगीतों, पवाड़ों और ख्यालों (राजस्थानी नाटकों) आदि में भी भारतीय संगीत की अनेक राग-रागिनियां और धुनें सुरक्षित हैं। [६] राजस्थानी लोक-संगीत की कतिपय स्वरलिपियां भी तैयार की गई हैं, जिनसे भारतीय संगीत के अध्ययन में विशेष सहायता प्राप्त होती है। [७]

५६:१। राजस्थान के अनेक कवियों और कवियित्रियों ने संगीत की विविध राग-रागिनियों में गेय पदों का निर्माण कर संगीत के प्रचार-प्रसार में योग दिया है, जिनमें

---

१ – सं० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, पृ० ४७।

२ – सम्पादक प्रो० कन्हैयालालजी सहल, पतरामजी गौड़ और ठा० ईश्वरीदानजी आसिया, बंगाल हिन्दी-मण्डल, ८, रायल एक्सचेन्ज प्लेस, कलकत्ता, छं सं० ११३, पृ० सं० ६३।

३ – राजपूताने का इतिहास, ओझा, जिल्द १, पृ० ३१।

४ – बीकानेर राज्य का इतिहास, ओझा, पृ० २८६।

५ – ब्रजनिधि ग्रन्थावली, सं० हरिनारायणजी पुरोहित, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, भूमिका पृ० ४८।

६ – क – राजस्थान का लोक संगीत, श्री देवीलाल सामर, भारतीय लोक-कला मण्डल, उदयपुर।

ख – राजस्थानी लोक नाटक, श्री देवीलाल सामर, भारतीय लोक-कला मण्डल, उदयपुर।

७ – राजस्थान स्वर लहरी, भाग १ और २, श्री देवीलाल सामर और पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, भारतीय लोक-कला मण्डल, उदयपुर।

मीरांबाई (सं० १५५५-१६०३ वि०) के साथ ही चन्द्रसखी (सं० १८८०), दादू (सं. १६०१ १६६०), रज्जब (सं०१६२४-१७४६), सुन्दरदास (सं०१६५३-१७४६), महाराजा प्रतापसिंह (सं०१८२१-१८६०वि०), महाराणा जवानसिंह (सं० १८५७-१८९५ वि०), महाराणा सज्जनसिंह (वि० सं० १९३५) महाराजा चतुरसिंह (सं०१९३३-१९८६) आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

ख. चित्रकला

५७:१ । हमारे देश की प्राचीनतम चित्रकला के उदाहरण गुहा-चित्रों के रूप में उपलब्ध होते हैं। कालान्तर मे हमारे देश में चित्रकला की विशेष उन्नति हुई। अजन्ता गुहा-चित्रों के उदाहरण भारतीय चित्रकला के रूप में उत्कृष्ट सिद्ध हुए हैं। १२ वीं शताब्दी ईस्वी के पश्चात् के चित्र हमारे देश में काष्ट-पट्टिकाओं, ताड़पत्रों और कागज पर मिलने लगते हैं। जैसलमेर ग्रन्थ-भण्डार में प्राप्त काष्ट-पट्टिकाओं और ताड़पत्रों पर अंकित चित्र हमारे देश की मूल्यवान सम्पत्ति है। धीरे-धीरे राजस्थान के राजपूत राजाओं के आश्रय में भारतीय चित्रकला ने विशेष उन्नति की और यह "राजपूत चित्रशैली" अथवा "राजस्थानी चित्रशैली" के रूप में प्रसिद्ध हुई।

५८:१ । राजस्थानी चित्रशैली की स्थानीय प्रभाव के कारण विभिन्न उपशैलियाँ प्रचलित हुईं जिनके नाम इस प्रकार है –

५९:१ । उदयपुर कलम, जैसलमेर कलम, बीकानेर कलम, जयपुर कलम, अलवर कलम, बूंदी कलम, नाथद्वारा कलम, जोधपुर कलम, कोटा कलम और अजमेर कलम। मालवा, कांगड़ा और बसोली की चित्रशैलियां भी राजस्थानी चित्रशैली में विकसित मानी जाती हैं।

६०:१ । भारतीय धार्मिक और राजपूती जीवन सम्बन्धी विषय, रंगों का चटकीलापन, भावों की गहराई और रेखाओं की सादगी राजस्थानी चित्रशैली की प्रधान विशेषता है। राजस्थानी चित्रशैली के विभिन्न उत्कृष्ट उदाहरण श्री कृष्ण चरित्र, बारहमासा, रागरागिनी, राजपूत राजाओं के दरबार, शिकार, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत, पंचतन्त्र, कल्पसूत्र, दशवैकालिक-सूत्र तथा राजस्थानी साहित्य की विभिन्न रचनाओं जैसे पृथ्वीराज रासो,[1] ढोला मारू रा दूहा,[2] सूरजप्रकाश,[3] मधुमालती,[4] सदयवत्स सावलिंगा री वार्ता,[5] आदि पर आधारित प्राप्त होते हैं।

---

१ – सरस्वती भण्डार संग्रह, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान शाखा, उदयपुर।

२ – पुस्तक-प्रकाश, उम्मेद भवन, जोधपुर।

३ – वही।

४ से ६ – राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, केन्द्रीय पुस्तकालय, जोधपुर।

६१:२। राजस्थानी चित्रशैली के अनेक सुन्दर नमूने यूरोप और अमेरिका के प्रमुख संग्रहालयों में; कलकत्ता, दिल्ली, बम्बई और राजस्थान के राजकीय संग्रहालयों में तथा देश-विदेश के अनेक व्यक्तिगत संग्रहों में प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं।

६२:२। भारतीय संस्कृति की जितनी झाँकी इन राजस्थानी चित्रों पर अंकित है, उतनी किसी अन्य प्रकार के चित्रों पर नहीं। यही कारण है कि राजस्थानी चित्र भारतीय सांस्कृतिक अध्ययन के विशेष माध्यम बन गये हैं।

ग. नृत्य

६३:२। नृत्य का उद्भव मानव-जीवन में हर्षातिरेक के अवसरों में हुआ। ऋतु-परिवर्तन, देव-पूजा, जन्मोत्सव, विवाह, विजयोत्सव, प्रिय-मिलन आदि अवसरों पर मानव में नाचने-गाने की प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है। सिन्धु-घाटी में "हड़प्पा" और "मोहनजो-दड़ो" नामक प्राचीन नगरों के उत्खनन में नृत्य-मुद्राओं से युक्त एक प्राचीन कांस्य मूर्ति प्राप्त हुई है। इस कांस्य मूर्ति के आधार पर भारतवर्ष में नृत्य का प्रारम्भ ३,००० ई० पू० में सिद्ध हो जाता है।

६४:२। नृत्य के दो प्रकार रहे हैं— (१) लोक नृत्य और (२) शास्त्रीय नृत्य। भारतवर्ष में अनेक प्रकार के लोकनृत्य प्रचलित हैं जिनमें नृत्य की प्रारम्भिक भावना और झाँकी है। भारतवर्ष की ग्राम्य जनता लोक-नृत्यों को जीवन के आवश्यक अंग के रूप में अपनाये हुए है। लोक-नृत्य हमारे धार्मिक, सामाजिक और मनोरंजनात्मक अंगों से सम्बद्ध हो चुके हैं और अनेक अवसरों पर लोक-नृत्य अनिवार्य माने जाते हैं।

६५:२। लोकनृत्य बहुधा सामूहिक होते हैं और स्त्री-पुरुष इनमें सम्मिलित रूप से अथवा अलग-अलग भाग लेते हैं। अधिकांश लोक-नृत्य पुरुष-नृत्य अथवा स्त्री-नृत्य होते हैं। भारतीय लोक-नृत्यों में पंजाब का 'भंगड़ा' और 'गिद्धा', गुजरात का 'गरबा' तथा राजस्थान का 'घूमर' और 'गैर' विशेष प्रसिद्ध हैं। अधिकांश लोक-नृत्य कथाओं, गीतों अथवा नाट्यों पर आधारित होते हैं इसलिये लोक-नृत्य का साहित्य से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। भारत के शास्त्रीय नृत्य—कथक, मणिपुरी, कथकली और भरतनाट्यम् भी काव्य अथवा कथा पर आधारित होते हैं।

६६:२। राजस्थानी लोक-नृत्य लोक-गीतों, लोक-कथाओं अथवा नाट्यों पर आधारित होते हैं। राजस्थानी लोक-नृत्यों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जाना चाहिये—

(१) भौगोलिक आधार पर

मारवाड़ के लोक नृत्य, पूर्वी राजस्थान के लोकनृत्य, हाड़ौती लोक नृत्य, मेवाड़ के लोक नृत्य और भील प्रदेश के भील नृत्य।

६. भक्ति-काल

क. प्रारम्भिक परिचय

ख. भक्ति-काल के प्रधान कवि

(१) मीरां बाई
(२) दुरसाजी आढ़ा
(३) ईसरदास
(४) महाराज पृथ्वीराज राठौड़
(५) सांयांजी झूला
(६) कविराजा बांकीदास

ग. राजस्थान के सन्त-सम्प्रदाय

[अ] प्रारम्भिक परिचय

[आ] सन्त कवि

(१) सन्त दादूदयालजी
(२) सन्त रज्जबजी
(३) स्वामी लालदासजी
(४) सन्त मावजी
(५) सन्त चरणदासजी
(६) जसनाथजी
(७) रामस्नेही सम्प्रदाय के कवि
(८) जांभोजी
(९) जैन सन्त कवि

घ. भक्ति-काल के कतिपय अन्य कवि

७. आधुनिक काल

क. प्रारम्भिक परिचय

ख. आधुनिक काल के प्रधान कवि

(१) महाकवि सूर्यमल
(२) चारण कवि केसरीसिंहजी
(३) महाराज चतुरसिंहजी
(४) नाथूदानजी महियारया

ग. अन्य उल्लेखनीय कवि

घ आधुनिक राजस्थानी काव्य की प्रधान प्रवृत्तियां

८. राजस्थानी गद्य साहित्य

द्वितीय अध्याय

राजस्थानी साहित्य



१. प्रारंभिक परिचय

१:२। मध्यकालीन भारतीय इतिहास में राजस्थान को परम गौरव-पूर्ण स्थान ाप्त हुआ है। राजस्थानी वीर-वीरांगनाओं ने देश की स्वाधीनता और अपनी मान-ार्यादा की रक्षा हेतु असीम त्याग एवं बलिदान किया है। गौरवपूर्ण मृत्यु प्राप्त ारना राजस्थानी जीवन का सदियों तक प्रधान उद्देश्य बना रहा और इन वीर-ीरांगनाओं ने मरण को भी महान् त्योहार के रूप में अङ्गीकृत किया। मरण-त्योहार े विषय में कहा गया है–

टह-टह घुरे त्रमागळा, व्है सिंधव ललकार।
चित कूंकभ चेळा चहै, आज मरण-त्योहार॥
आज घरे सासू कहे, हरख अचाणक काय।
बहू बळेवा हूळसे, पूत मरेवा जाय॥
सुत मरियो हित देस रे, हरख्यो बंधु-समाज।
मां नहं हरखी जनम दे, जतरी हरखी आज॥[1]

ओ त्योहारां देसड़ो, तिथ पर हुवै त्योहार।
विना बार तिथ आवणों, मोटो मरण-त्योहार॥[2]

२:२। राजस्थान भारतवर्ष की वीर-भूमि के रूप में विख्यात् है जिसके विषय में सुप्रसिद्ध इतिहासकार जेम्स टॉड ने लिखा है –

"राजस्थान में एक भी छोटी रियासत ऐसी नहीं है, जिसमें थर्मापोली जैसी युद्ध-भूमि

---

१ – मरण-त्योहार, राजस्थान की रसधारा, ले० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, राजस्थान संस्कृति परिषद्, जयपुर, १९५४ ई०, पृ० १–७।

२ – श्री नारायणसिंह भाटी, परम वीर, प्रकाशक– कलावतार पुस्तक मन्दिर, रातानाड़ा, जोधपुर, १९६३ ई०, पृ० ६१।

न हो और कदाचित् ही कोई ऐसा नगर हो जिसने लियोनिडास जैसा योद्धा न किया हो।"[१]

३:२। राजस्थान को वीर-भूमि बनाने का प्रधान श्रेय राजस्थान के साहित्य साहित्यकारों को है। राजस्थान के साहित्यकार लेखनी के साथ ही तलवार के धनी स्वयं युद्ध-भूमि में वीरों के साथ मरने-मारने के लिये तत्पर रहे हैं। ऐसे वीररस कवियों की परम प्रभावशाली वाणी से प्रेरित होते हुए राजस्थान के अगणित वीरांगनाओं ने अपने प्राण सहर्ष ही उत्सर्ग कर दिये, इसलिये जेम्स टॉड के उक्त कथन अन्तिम भाग को इस प्रकार संशोधित करना सर्वथा उपयुक्त होगा—

"और कदाचित ही कोई ऐसा नगर हो, जिसने लियोनिडास जैसा योद्धा होमर जैसा कवि नहीं उत्पन्न किया हो।"

४:२। राजस्थानी साहित्य में अन्य भावनाओं के साथ ही वीर-भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है।

२. राजस्थानी साहित्य की परिभाषा

५:२। "राजस्थानी साहित्य" से अनेक तात्पर्य हो सकते हैं। यथा—

(१) राजस्थानी भाषा में रचित साहित्य।

(२) राजस्थान में रचित साहित्य; चाहे वह संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, ब्रज बोली, उर्दू और फारसी आदि किसी भी भाषा में हो।

(३) राजस्थानियों द्वारा रचित साहित्य, फिर चाहे वह राजस्थानी, हिन्दी, रानी या बंगला किसी भी भाषा में हो।

(४) राजस्थान से सम्बन्धित साहित्य, चाहे वह किसी भी भाषा अथवा विषय का

यहां राजस्थानी साहित्य से लेखक का अभिप्राय राजस्थानी भाषा में साहित्य से है क्योंकि "गुजराती साहित्य" और "बंगला साहित्य" आदि से क्रमशः गुजराती और बंगला भाषा में लिखित साहित्य ही होता है।

३. राजस्थानी - साहित्य का काल - विभाजन

६:२। विभिन्न विद्वानों ने 'राजस्थानी साहित्य' का काल-विभाजन क्रम की दृष्टि से निम्न प्रकार से किया है —

---

१ — एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज आफ राजस्थान, प्रस्तावना, विलियम क्रुक द्वारा सं दित संस्करण, भाग १, १९२० ई०। हिन्दी संस्करण, मंगल प्रकाशन,

(१) डा० एल०पी० तेस्सीतोरी

क – प्राचीन डिंगल–काल — १२५० ई० से १६५० ई०।

ख – अर्वाचीन डिंगल–काल — १६५० ई० से आज तक।[1]

(२) पं० मोतीलालजी मेनारिया

क – प्रारम्भ-काल — सं० १०४५ से १४६०।

ख – पूर्व–मध्य-काल — सं० १४६० से १७००।

ग – उत्तर–मध्य-काल — सं० १७०० से १९००।

च – आधुनिक काल — सं० १९०० से २००५।[2]

(३) पं० नरोत्तमदासजी स्वामी

क – प्राचीन काल — सं० ११५० से १५५०।

ख – मध्यकाल — सं० १५५० से १८७५।

ग – अर्वाचीन काल — सं० १८७५ के पश्चात्।[3]

(४) श्री हीरालालजी माहेश्वरी

क – विकास काल अथवा प्राचीन पश्चिमी-राजस्थानी का आदिकाल–सं० ११०० से १५००

ख – नवीन काल अथवा प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी का नवीन काल–सं० १५०० से प्रारम्भ।[4]

(५) श्री सीताराम जी लालस

क – आदिकाल — वि० सं० ८०० से १४६०।

ख – मध्यकाल — वि०सं० १४६० से वि०सं० १९००।

ग – आधुनिक काल — वि०सं० १९०० से वर्तमान काल तक।[5]

---

१ – क – वचनिका राठोड़ रतनसिंह री, भूमिका पृ० ४।
  ख – जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ़ बंगाल, वो० १०, नं० १०, पृ० ३७५–३७७।

२ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, पृ० ७७।

३ – राजस्थानी साहित्य, एक परिचय, नवयुग ग्रन्थ-कुटीर, बीकानेर पृ० २२।

४ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० ३०–३१।

५ – राजस्थानी शब्द-कोष, प्रस्तावना, पृ० ८८।

(६) गजराज ओझा

क – प्रारम्भ काल — सं० १००० से १४०० ।

ख – मध्यकाल — सं० १४०१ से १८०० ।

ग – उत्तरकाल — सं० १८०१ से आज तक ।[१]

(७) पुरुषोत्तम दास स्वामी

क – प्राचीन राजस्थानी-काल — सं० १००० से १६०० ।

ख – माध्यमिक राजस्थानी-काल — सं० १६०० से १९०० ।

ग – आधुनिक राजस्थानी-काल — सं० १९०१ से वर्तमान समय तक ।[२]

(८) डा० जगदीश प्रसाद

क – प्राचीनकाल — लगभग १३०० ई० से १६५० ई० ।

ख – मध्यकाल — लगभग १६५० ई० से १८५० ई० ।

ग – आधुनिक-काल — लगभग १८५० ई० से आज तक ।[3]

(९) श्री उदयसिंह भटनागर

क – प्रथम-उत्थान या सूत्रपात-युग — सं० ७०० से १००० ।

ख – द्वितीय-उत्थान या नव-विकास-युग — सं० १००० से १२०० ।

ग – तृतीय उत्थान या वीरगाथा-युग — सं० १२०० से १५०० ।

घ – चतुर्थ उत्थान या भक्ति-युग – सं० १५०० से १७०० ।

ङ – पंचम उत्थान या रीति-युग — सं० १७०० से १९०० ।[४]

(१०) उक्त मतों की समीक्षा और लेखक का मत

नहीं हुआ है और न काल-सम्बन्धी परिवर्तन का ठोस ऐतिहासिक आधार ही प्रस्तुत किया गया है। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इस विषय में लिखा है— "सारे रचना-काल को केवल आदि, मध्य, पूर्व, उत्तर इत्यादि खण्डों में आंख मूंद कर बांट देना – यह भी नहीं देखना कि किस खण्ड के भीतर क्या आता है, क्या नहीं – किसी वृत्त-संग्रह को इतिहास नहीं बना देता।" [1]

८:२। साहित्य विशेष के इतिहास का काल-विभाजन सम्बन्धित साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर होना चाहिये। विभिन्न परिस्थितियों के अनुरूप सामाजिक मनोवृत्तियां परिवर्तित होती रहती हैं और तदनुसार साहित्यिक प्रवृत्तियों का आविर्भाव होता है। सामाजिक मनोवृत्तियों और साहित्यिक प्रवृत्तियों के मूल में वस्तुतः ऐतिहासिक परिस्थितियां होती हैं जिनकी उपेक्षा साहित्यिक इतिहास के लेखन में नहीं की जा सकती। आचार्य पं० रामचन्द्र-शुक्ल ने साहित्यिक इतिहास के विषय में लिखा है — "जनता की परिवर्तनशील चित्त-वृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य-परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।" [2] उक्त दृष्टिकोण के आधार पर राजस्थानी साहित्य के इतिहास को निम्नलिखित चार भागों में विभक्त करना सर्वथा उपयुक्त होगा –

क—प्रारम्भकाल — वि० सं० ८३५ से १२४०।

ख – वीरगाथा-काल — वि० सं० १२४१ से १५८४।

ग – भक्ति-काल — वि० सं० १५८५ से १९१३।

घ – आधुनिक-काल — वि० सं० १९१४ से प्रारम्भ।

४. प्रारम्भकाल

क. प्रारम्भिक परिचय

९:२। सम्राट हर्ष की मृत्यु (वि०सं० ७०५, ई० सन् ६४८) हमारे इतिहास में युग-परिवर्तनकारी सिद्ध हुई क्योंकि इसके पश्चात् हमारे-देश में अनेकता, पारस्परिक वैमनस्य, सामाजिक विशृंखलता, धार्मिक मतवैपरीत्य और आर्थिक पतन का प्रारम्भ हुआ। इसी समय भारतवर्ष की उत्तर-पश्चिमी सीमाओं पर इस्लामी सैनिकों के आक्रमण होने लगे। मुहम्मद बिनकासिम ने एक प्रबल सेना के साथ सिन्ध पर आक्रमण किया (वि० सं० ७६९,

---

१ – हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, वक्तव्य, पृ० २।

२ – वही, पृ० १।

छिज्जंत महग्गय गरुअ-गत्तु । णिवडंत समुद्धुय-धवल छत्तु ।
लोट्टत महारह-हय-रहंगु । घुम्मंत-पडंतमहातुरंगु ।
तुट्टत कवड तुट्टत खग्गु । णच्चंत कबंधउ असि-करग्गु ।
आयामेवि रणे रोसिय मणेण । अग्गेउ मुक्कु घणवाहणेण ।
आमेल्लिउ आयउ धगधगंतु । अंगार वरिसु णहे दक्खवंतु ।
वारुणु विमुक्कु भामंडलेण । णं गिरिहि बज्जु अखंडलेण ।
उल्हाविउ जलणु जलेण जं जे । सरू णागबासु पम्मुक्क तं जे ।
घत्ता- पुप्फवइ-सुउ दीहर-पवर महासरेहिं ।
परिवेढियउ मलयिंदुव विसहरेहि ॥ ६ ॥[1]

(२) महाकवि पुष्पदन्त

१९ : २ । महाकवि पुष्पदन्त के पिता का नाम केशव भट्ट और माता का नाम मुग्धादेवी था । इनके पिता प्रारम्भ में शैव थे किन्तु बाद में जैन मुनि से प्रभावित हो कर जैन धर्म में दीक्षित हो गये —

सिव भत्ताइं मि जिण सण्णासे वे वि मयाइं दुरियणि-ण्णासें ।
बंभणाइं कासवरिसी गोत्तइं गुरुवयणामिय पूरियसोत्तमं ॥[2]

पुष्पदन्त दीखने में सुन्दर नहीं थे[3] किन्तु पूरे आत्माभिमानी थे इसलिये उन्होंने अपने नाम के साथ 'अभिमानमेरु", "काव्यरत्नाकर" और "कविकुलतिलक" जैसे विरुद लगाये ।

२० : २ । पुष्पदन्त एक समय अपने आश्रयदाता से रुष्ट हो कर वन में चले गये और वहां निम्नलिखित छन्द की रचना की --

णउ दुज्जन भऊंहा वंकियाहं, दीसंतु कलुसभावंकियाइं ।
वर णरतरू धवलच्छिहे होहु म कुच्छिहे मरउ सोणिमुहणिग्गमे ।
खल कुच्छिय पहुवयणइं भिउडियण यणइं म णिहालउ सुरूग्गमे ॥

(गिरि-कन्दराओं में घास खा कर रहना उचित है किन्तु दुर्जनों की टेढ़ी भोंहें देखना उचित नहीं । मां के गर्भ से उत्पन्न होते ही मर जाना उत्तम है किन्तु राजा की टेढ़ी भृकुटि एवं नेत्र देखना तथा उसके दुर्वचन सुनना उचित नहीं ।)[4]

---

१ – पउमचरिउ, ६५। १–६, हि० का० धा०, पृ० ९२ ।
२ – णायकुमारचरिउ ।
३ – उत्तरपुराण, ११ ।
४ – वर्मा, हि० सा० आ० इ०, पृ० ८१ ।

कवि के प्रथम आश्रयदाता राष्ट्र-कूट-वंश के महाराजा कृष्ण के महामात्य भरत और द्वितीय आश्रयदाता भरत के पुत्र नन्न थे जो भरत के पश्चात् महामात्य हुए।

२१.२। महाकवि पुष्पदंत की निम्नलिखित रचनाएं उपलब्ध हो चुकी हैं —

(१) महापुराण— इस ग्रन्थ को "तिसट्ठि-महापुरिस-गुणालंकारु" भी कहा जाता है क्योंकि इसमें तिरसठ महापुरुषों के चरित्र वर्णित हैं। इस काव्य-ग्रन्थ के दो खण्ड हैं— आदिपुराण और उत्तरपुराण। आदिपुराण में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का और उत्तरपुराण में शेष तेबीस तीर्थंकरों और उनके समकालीन महापुरुषों के चरित्र वर्णित हैं, जिनमें श्रीकृष्ण का चरित्र भी है। महापुराण महामात्य भरत की प्रेरणा से रचा गया था।

(२) णायकुमार चरिउ— इस काव्य में नागकुमार-सम्बन्धी काव्य वर्णित है। यह काव्य महामात्य नन्न की प्रेरणा से रचा गया था।

(३) जसहर चरिउ— इस काव्य में यशोधरा का चरित्र है।

(४) कोष— यह देश-भाषा का कोष-ग्रन्थ है।

इनकी रचना का एक उदाहरण निम्नलिखित है —

श्रीकृष्ण - महिमा

कण्हेण समाणउ कोवि पुत्तु। संजणउं जणणि विद्दविय-सत्तु।
दुर्धर-भर-रण-धुर-दिण्ण-खंधु। उद्धरिय जेण णिबडत बंधु।
भंजिवि नियलइं गय-वर-गईह। सहु माणिणीइपोमावईह।
कइवय दियहहिं रइ-कोलिरीहिं। बोल्लाविउ पहु गोवालिणीहिं।[1]

(३) योगीन्दु

२२ : २। पं० राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार योगीन्दु का काल १००० ई० है।[2] ये जैन साधु थे और सम्भवतः राजस्थान के थे। इनकी रचनाएं—"परमात्म-प्रकाश दोहा" और "योगसार दोहा" हैं।[3] इनकी रचनाओं के उदाहरण इस प्रकार हैं —

---

१ – हि० का० धा०, पृ० २३०।

२ – वही, पृ० २४०।

३ – प्रका० श्री रायचन्द जैन-शास्त्र माला, बम्बई, (१९३० ई०), सम्पा० ए.एन. उपा

ज्ञान समाधि

जो जाया झाणग्गिए, कम्म-कलंक डहेवि ।
णिच्च-णिरंजण णाणमय, ते परमप्प णवेवि ॥१॥
ते हउं वंदउं सिद्ध-गण, अच्छहिं जे वि हवंत ।
परम-समाहि-महग्गियए, कम्मिं धणई हुणंत ॥३॥
भावि पणविवि पंचगुरु, सिरि जोइंदु जिणाउ ।
भट्टपहायरि विण्णविउ, विमलु करे विणु भाउ ॥८॥

— परमात्मप्रकाश

(४) आचार्य हरिभद्र सूरि

२३:२। आचार्य हरिभद्रसूरि का जन्म ब्राह्मणकुल में हुआ किन्तु बाद में ये श्रीचन्द्रसूरि से जैन-धर्म में दीक्षित हो गये। मुनि श्री जिनविजयजी के मतानुसार इनका जन्म-स्थान चित्तौड़ और जन्म-काल सं० ७५७ से ८२७ के मध्य है।[1] प्रो० हरमन याकोबी ने हरिभद्रसूरि का समय ईसा की नवीं शताब्दी माना है[2] और महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने इनका समय ११५९ ई० (वि० सं० १२१६) लिखा है।[3]

२४:२। हरिभद्र सूरि के अनेक ग्रन्थ हैं जिनमें ललितविस्तरा, धूर्ताख्यान, सम्बोधप्रकरण, जसहरचरिउ और णेमिणाहचरिउ मुख्य हैं। णेमिणाहचरिउ में से एक उदाहरण इस प्रकार है —

श्रीकृष्ण - सौन्दर्य

नील-कुंतल कमल-नयणिल्लु विवाहरु पियदंसणु,
कंबुग्गीवु पुर-अररि उरयलु।
जुय दोहर-भुय-जुयल वयण, ससि जिय कमल-उप्पल।
पडमदवारुण करचलणु तविय-कणय गोरंगु,
अट्ठ वरिस वउ पहु हुयउ, समहिय विजिय अणंगु ॥[4]

---

१ – हरिभद्रसूरि का समय-निर्णय, जैन साहित्य-संशोधक, पूना, भाग १, अंक १।
२ – हरिभद्रसूरि रचित "नेमिनाथ चरिउ" की सम्पादकीय भूमिका।
३ – हि० का० धा०, पृ० ३८४।
४ – वही, पृ० ३८८।

(५) हेमचन्द्र सूरि

२५:२ । कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र सूरि का जन्म-संवत् ११४५ वि० (१०८६ ई०) में कार्तिक शुक्ला १५ को और मृत्यु-संवत् १२२६ वि० माना गया है।[1] इनका जन्म–नाम अंगदेव था किन्तु दीक्षा के समय (वि० सं० ११५४) इनका नाम सोमचन्द्र और सूरि पद-प्राप्ति के समय (वि० सं० ११६६) इनका नाम हेमचन्द्र हुआ। गुजरात-नरेश सिद्धराज जयसिंह सोलंकी ने हेमचन्द्र की विशेष प्रतिष्ठा की। सिद्धराज जयसिंह शैव थे किन्तु अन्य धर्मों का भी आदर करते थे। इनकी प्रेरणा से हेमचन्द्र ने सुप्रसिद्ध "सिद्ध हेम–व्याकरण" का निर्माण किया।

२६:२ । सिद्धराज जयसिंह के पश्चात् इनका भतीजा कुमारपाल राज्य-सिंहासन पर आसीन हुआ जिसके शासन-काल में हेमचन्द्र की प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई। हेमचन्द्र के उपदेशों से प्रभावित होकर कुमारपाल ने शिकार और मांस–सेवन का त्याग कर दिया। साथ ही कुमारपाल ने २१ ज्ञानकोष अर्थात् ग्रन्थ–भण्डार स्थापित किये और ७०० लहियों (प्रतिलिपिकर्ताओं) की नियुक्ति की, जिनका कार्य विभिन्न विषयक ग्रन्थों की प्रतिलिपियां तैयार करना था।

२७:२ । आचार्य हेमचन्द्र रचित प्रधान ग्रन्थ इस प्रकार हैं–

अभिधानचिन्तामणि, काव्यानुशासन, छन्दोऽनुशासन, देशीनाममाला, द्वयाश्रयकाव्य, योगशास्त्र, धातुपारायण, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्, परिशिष्ट-पर्व और शब्दानुशासन (व्याकरण)।[2]

२८:२ । हेमचन्द्र ने कुमारपाल-चरित् में कतिपय स्वरचित काव्यात्मक रूप दिये हैं। जैसे –

अम्हे निन्दहु कोवि जण, अम्हई वण्णउ कोवि।
अम्हे निन्दहु कंवि नवि, न म्हई वण्णहुँ कंवि॥
रे मण करसि की आलडी, विसया अच्छहु दूरि।
करणई अच्छह रुन्धिअइं, कड्ढउं सिवकलु भूरि॥
काय कुडुल्ली निज अथिर, जिवियडउ चलु एहु।
ए जाणिवि भवदोसडा, ससुहउ भावु चलेहु॥[3]

---

१ – जैन गुर्जर कविओ, मोहनलाल दुलीचन्द देसाई, भाग १. पृ० ११३।

२ – हेमचन्द्राचार्य सम्बन्धी विशेष विवरण के लिए देखिए– फार्बस रचित 'रासमाला' प्रथम भाग (दो खण्डों में) अनु० श्री गोपालनारायण बहुरा एम. ए., मंगल प्रकाशन, जयपुर, उत्तरार्द्ध पृ० ६०–१६४।

३ – जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० १२५-१२७।

२९:२। आचार्य हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण में अपने पूर्व समय के प्रचलित अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। राजस्थानी काव्य की समस्त विशेषतायें इन उदाहरणों में पूर्ण रूप में वर्तमान हैं इसलिये इनका विशेष महत्व है—

भल्ला हुआ जु मारिआ, बहिणि महारा कन्तु।
लज्जेज्ज तु वयंसिअहु, जइ भग्गा घर एन्तु।
वायसु उड्डावन्तिअए, पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।
अद्धा वलया महिहि गय, अद्धा फुट्ट तडत्ति॥
पुत्तें जाएं कवणु गुणु, अवगुणु कवण मुएण।
जा बापी को भुंहडी, चम्पिज्जई अवरेण॥

३०:२। राजस्थानी साहित्य के प्रारम्भ-काल की कतिपय रचनायें ऐसी हैं जिनके विषय में अनेक प्रकार के मतभेद हैं। ऐसी रचनाओं में ढोला मारू रा दूहा, [illegible], बीसलदे रास और पृथ्वीराज रासो मुख्य हैं।

(६) ढोला मारू रा दूहा

हेमचन्द्राचार्य (११४५–१२२६) के समय में प्रचलित हो चुके थे, जिनके कतिपय उदाहर उन्होंने अपनी व्याकरण में दिये हैं—

ढोल्ला सामला, धण चम्पा बण्णी ।
णाइ सुबण्णरेह, कस-वट्टइ दिण्णी ।।८।।४।।३३०।।१
ढोल्ला मइ तुहुँ वारिया, मा कुरु दीहा माणु ।
निद्दए गमिही रत्तड़ी, दडबड होइ विहाणु ।। ८।४।३३०।२।
ढोल्ला सई परिहासडी, अइ भण-मण कवणहि देसि ।
हउ झिज्जउ तउ केहिं पिअ, तुहुं पुणु अन्नहि रेसि ।।८।४।४२५।३

३२:२ । उक्त दूहों से प्रकट होता है कि १२ वीं सदी वि० में ढोला-मारू सम्बन्धी प्रेमाख्यान प्रचलित था और इसके दूहे जनता में कहे-सुने जाते थे ।

३३:२ । निम्न दूहे में आये हुए "कल्लोल" शब्द के आधार पर "ढोला मारू रा दोहा" का कर्त्ता "कल्लोल" माना गया है —

गाहा गूढा गीत रस, कवित कथा कल्लोल ।
चतुर तणा मन रीझवै, कहिया कवि कल्लोल ।।[1]

इसके विपरीत सिवाणा (मारवाड़) के एक यति की प्रति में इसका कर्ता लूणकरण खिड़िया (चारण) लिखा है, ऐसा कहा जाता है[2] । सिवाणा की प्रति अभी सामने नहं आई है इसलिये इस विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता ।

३४:२ । "ढोला मारू रा दूहा" के सम्पादकों ने इस काव्य को "बेलेड" मानते हुए "बेलेड" का अर्थ लोक–गीत दिया है ।[3] बेलेड जनता में प्रचलित ऐसे कथा–काव्य को कहा जाता है जो गेय होता है और जिसका कर्ता प्रायः अज्ञात होता है । इसमें समय-समय पर परिवर्तन और परिवर्द्धन भी होते रहते हैं, यथा– आल्हा ।[4] लोक-गीत अंग्रेजी शब्द "फाक सोंग" का पर्याय है । लोकगीत लघु मुक्तक रचनाओं के रूप में जनता द्वारा गाये जाते हैं ।[5] यह काव्य वास्तव में ढोला–मारू कथा पर आधारित दूहों का संकलन

१ – क. डा० हीरालाल माहेश्वरी, राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २०१ ।
ख. पं० मोतीलाल जी मेनारिया, राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १०१ ।
ग. डा० गोवर्द्धन शर्मा, प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ६, राजस्थान विद्यापीठ, साहित्य-संस्थान, उदयपुर, पृ० ८३–८५ ।
२ – श्री सीताराम जी लालस, राजस्थानी शब्द कोष, प्रस्तावना, पृ० ९३ ।
३ – प्रकाशक, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, भूमिका ।
४ – हिन्दी साहित्य कोष, भाग १, पृ० ६८७–६८८ ।
५ – हिन्दी साहित्य-कोष, भाग १, पृ० ६८९ ।

है। इसमें एक ही भाव के अनेक दूहे हैं जिनसे ज्ञात होता है कि इस संकलन में समय-समय पर लिखे हुए अनेक कवियों के दूहे हैं। इस काव्य को हम कथा-मुक्तक कह सकते हैं। जैन यति कुशललाभ ने वि सं० १६१८ में जैसलमेर के तत्कालीन रावल हरराज की आज्ञा से इन दूहों का संकलन कर इनका कथ-सूत्र जोड़ने के लिये अनेक चौपाइयों की रचना की और लिखा —

" दूहा घणा पुराणा अछई। चउपई बंध कियो मइ पछई ॥ "

३५:२। ढोला-मारू रा दूहा एक शृंगारिक काव्य है, जिसमें संयोग-वियोग की अनेक अवस्थाओं का सरस और मार्मिक चित्रण देश-काल के अनुरूप हुआ है —

प्रीतम आयो है सखी, ज्यांरी जोती वाट।
घर नाचे थांभा हंसे, खेलण लागी खाट ॥
बीजळियां नीलज्जियां, जळहर तू ही लज्जि।
सूनी सेज विदेश प्रिय, मधुरइ मधुरइ गज्जि ॥

(७) ऊजळी जेठवे रा दूहा

३६:२। राजस्थान और गुजरात दोनों ही प्रदेशों में "ऊजळी जेठवे रा दूहा" प्रचलित हैं। इन दूहों का समय पं० श्री मोतीलालजी मेनारिया ने सं० ११०० के लगभग[1] और श्री झवेरचन्दजी मेघाणी ने सं० १४००-१५०० तक प्राचीन[2] बताया है। ऊजली-जेठवा की कथा श्री जगजीवन पाठक ने सन् १९१५ ई० में "गुजराती" के दीपावली अंक में और "मकरध्वज-वंशी महीपमाला" पुस्तक में प्रकाशित की है। इन दूहों में जेठवा अथवा मेहउत शब्द आता है। जेठवा १२ वीं सदी में पोरबन्दर का राजा माना गया है,[3] किन्तु इन दूहों की भाषा १२ वीं शताब्दी की नहीं प्रतीत होती। सम्भवतः मौखिक रहने से इन दूहों की भाषा परिवर्तित हो गई है। साथ ही ऊजली और जेठवा सम्बन्धी विभिन्न समयों में रचित दूहे भी प्राचीन दूहों में मिल गये हैं। उदाहरण स्वरूप मथानिया के चारण कवि जेतदानजी के सं० १९७४-७५ में रचित दूहे "जेठवे रा सोरठा" नामक परम्परा-प्रकाशन में सम्मिलित हैं —

---

१ – रा० सा० रूपरेखा, पृ० २१९।

२ – रा० सा० का आदिकाल, पृ० १९३।

३ – राजस्थान की रसधारा, पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, राजस्थान संस्कृति परिषद्, जयपुर, पृ० २०।

डहक्यो डंफर देख, वादळ थोथो नीर विन।
आई हाथ न एक, जळ री बूंद न जेठवा ।।
दरसण हुवा न देव, भेव बिहूणा भटकिया।
सूना मिंदर सेव, जनम गमायो जेठवा ।।

३७:२। "ऊजली जेठवे रा दूहा" ऊजली और जेठवा सम्बन्धी प्रेमाख्यान पर आधारित हैं।[1] जेठवा विशेष परिस्थिति में एक रात के सहवास के पश्चात् ऊजली को अपनी राजधानी में आमंत्रित करने का आश्वासन देता है। अभिज्ञानशाकुन्तल की नायिका शकुन्तला की भांति थोड़े समय की प्रतिक्षा के उपरान्त ऊजली स्वयं जेठवा की राजधानी पोरबन्दर पहुँचती है। ऊजली के चारण-पुत्री के रूप में पूज्य होने के कारण लोक-निन्दा के भय से जेठवा उसको रानी के रूप में स्वीकार नहीं कर पाता है। ऐसी अवस्था में ऊजली के उद्गार सोरठिया दूहों के रूप में प्रकट होते हैं। इन सोरठिया दूहों में ऊजली की विरह-जनित मर्मान्तक वेदना निहित है —

टीळी सूं टळियांह, हिरणां मन माठा हुवै।
वाला बीछडियांह, जीवै किण विध जेठवा ।।
जिण बिन घड़ी न जाय, जमवारो किम जावसी।
बिलखतड़ी बीहाय, जोगण कर गो जेठवा ।।
वै दीसै असवार, घुड़लांरी घूमर कियां।
अबला रो आधार, जको न दीसै जेठवा ।।
दुनियां जोड़ी दोय, सारस ने चकवा तणी।
मिली न तीजी मोय, जो जो हारी जेठवा ।।

(८) बीसलदे-रास

३८:२। बीसलदेरास अपर नाम बीसलदेव रासो एक प्रेमाख्यानक काव्य है, जिसमें अजमेर के बीसलदे चौहान और धाराधिपति राजा भोज परमार की पुत्री राजमती की कथा वर्णित है। यह काव्य चार भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में बीसलदे और राजमती का विवाह-वर्णन है। द्वितीय भाग में बीसलदे की राजमती के प्रति उदासीनता और उड़ीसा-यात्रा वर्णित है। तृतीय भाग में मुख्यतः राजमती का वियोग-वर्णन है। चतुर्थ भाग में बीसलदे और राजमती का पुनर्मिलन बताया गया है।

३९:२। काव्य के नाम से ही प्रकट है कि यह गेय है। बीसलदेरास का काव्य-सौन्दर्य इसकी सरल-स्वाभाविक भावाभिव्यक्ति और स्थानीय वातावरण की सुरम्य सृष्टि में निहित है।

---

१ – राजस्थान की रस-धारा, ले० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, पृ० २०-२५।

४०:२। काव्य में बीसलदे के रूठ कर उड़ीसा-प्रस्थान का मुख्य कारण इस प्रकार है —

गरब करि उभो छई सांभर्यो राव। मो सरीखा नहि ऊर भूआल ॥
म्हां घरि सांभर उग्गहइ। चिहुं दिसी थाण जेसलमेर ॥
गरबि न बोलो हो सांभरया राव। तो सरीखा घणा और भुआल ॥
एक उड़ीसा को धणी। बचन हमारइ तू मानि जु मानि ॥
ज्यूं थारइ सांभर उग्गहइ। राजा उणि घरि-उग्गहइ हीरा-खान ॥

× × ×

कड़वा बोल न बोलिस नारि। तू मो मेल्हसी चित्त बिसारि ॥
जीभ न जीभ बिगोयलो। दव का दाधा कुपली मेल्हइ ॥
जीभ का दाधा न पांगुरइ। नाल्ह कहइ सुणीजइ सब कोइ ॥[1]

काव्य में स्थानीय वातावरण —

परणवां चाल्यो बीसलराव। पंच सखी मिलि कलस बन्दावि।
मोती का आखा किया। कूं-कूं चंदन पाका पान ॥
अमली समली आरती। जाई बघेरइ दियो मिलांण ॥[2]

४१:२। बीसलदे के उड़ीसा-प्रस्थान पर राजमती कामना करती है कि मार्ग में अपशकुन हों और राजा लौट आवे —

चाल्यो उलीगांणो नग्र मंझारि। आड़ी आवज्यो ईंधण दार।
सांड तडूकज्यो जीमउइ अङ्ग। सांमइ जोगणी काल भुयंग।
बाट काटे मंजारड़ी। सांमहीं छींक हणाई कपाल ॥
आडी लुकडी आवज्यो। गोरडी कउ प्रीय पाछो हो वाल ॥[3]

४२:२। काव्य का प्रधान अंग राजमती का वियोग-वर्णन है —

स्त्री जनम कांई दीयो हो महेस। अवर जनम धारे घड़ा हो नरेस ॥
रानह न सिरजी हरिणली। सूरह न सिरजी धौंणु गाई ॥
बनखंड काली कोइली। बइसती अंब कइ चंप की डालि ॥
बइसती दाख बीजोरड़ी। इणि दुख भूरइ अबला बालि ॥[4]

× × ×

---

१ – बीसलदेव रासो, सं० सत्यजीवन वर्मा, का० ना० प्र० सं०, पृ० ३७।

२ – वही, पृ० १२।

३ – वही, पृ० ५९–६०।

४ – वही, पृ० ६५।

कुहणी फाटइ कांचुवउ। घोपरि फाटइ धन को चीर।
जांणे दव दाधी लाकड़ी। दूबली हुइ झूरइ ईम नाह॥
डावां हाथ को मूंदडउ। आवण लागो जीवणी वांह॥[1]

४३:२। वीसलदे रासो का कर्ता नरपति नाल्ह है; जिसके जन्म-काल और स्था आदि के विषय में विशेष इतिवृत्त ज्ञात नहीं है। नरपति के विषय में रासो से इतना प्रकट होता है कि वह व्यास ब्राह्मण था--

"व्यास बचन इम ऊचरई, दिन-दिन प्रतिपै वीसलराई।"
— छन्द ६६, भाग प्रथम।

"नरपति व्यास कहइ करि जोडि, तो तूठा तेंतिसों कोड़ि।"
— छन्द ८४, भाग प्रथम।

"चउरास्या सहू वर्णव्या अम्रत रसायण नरपति व्यास।"
— छन्द १०३, भाग तृतीय।

४४:२। बीसलदे रास के निर्माणकाल के विषय में अनेक मत प्रचलित हैं। रा की एक प्रति में रचना तिथि— ज्येष्ठ कृष्णा ६, बुधवार सं० १२७२ दी गई है --

बारह से बहोत्तरां हां मंझारि, जेठ वदी नवमी बुधवारि।
नाल्ह रसायण आरंभई, सारदा तूठि ब्रह्मकुमारी॥[2]

मिश्र बन्धुओं ने रासो के निर्माण-काल पर विचार करते हुए लिखा है कि ज्ये कृष्णा ६ को बुधवार वि० सं० १२७२ में नहीं आता, किन्तु शक संवत् १२२० आता है इसलिये रासो का निर्माणकाल शक संवत् १२२० अर्थात १३५४ वि संवत् मानना चाहिये। इस विषय में डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का मत है राजस्थान में इस समय शक संवत् नहीं, विक्रमी संवत् ह प्रचलित था। ड ओझा के मतानुसार 'बीसलदेव रासो' का निर्माणकाल सम्बन्धित प्रति के अनुस वि० सं० १२७२ ही सही है और इसका चरित्रनायक बीसलदेव विग्रहराज तृतीय जिसकी विद्यमानता का समय वि० सं० ११५० है। इस प्रकार विग्रहराज तृती के १२२ वर्ष पश्चात् इस रासो की रचना हुई।[3] श्री सत्यजीवन वर्मा ने बीस देव रासो का निर्माण-काल वि० सं० १२१२ लिखा है[4] और रामचन्द्र शुक्ल ने भी इस

---

१ -- वीसलदे रासो, सं० सत्यजीवन वर्मा, का० ना० प्र० स०, पृ० ७५।
२ -- वही, प्रथम सर्ग, ४।
३ -- ना० प्र० प०, वर्ष ४-५, अंक २, पृ० १६३-७१।
४ -- बीसलदे रासो, भूमिका, पृ० ५।

समर्थन किया है।[1] इन दोनों ने बहोत्तरा का अर्थ द्वादशोत्तर अर्थात् बारह माना है। बड़ा उपाश्रय, बीकानेर में प्राप्त बीसलदेव रासो की एक प्रति में रचनाकाल निम्नलिखित है—

"संवत् सहस तिहुतरइ जाणि। नाल्ह कवीसर सरसीय वाणि॥"[2]

डा० रामकुमार वर्मा ने भी उक्त उद्धरण के आधार पर बीसलदेव रासो का निर्माण-काल सं० १०७३ लिखा है।[3] इस विषय में डा० माताप्रसाद गुप्त का मत है कि रासो में वर्णित स्थान सं० १४०० तक बस गये थे इसलिये रासो का निर्माणकाल सं० १४०० मानना चाहिये।[4]

पं० मोतीलाल जी मेनारिया ने बीसलदेव रासो के निर्माणकाल के विषय में लिखा है कि रासो की प्राचीनतम प्रति सं० १६६९ की प्राप्त हुई है। गुजरात में नरपति नामक कवि की 'नन्दबत्तीसी' (सं० १५४५), 'विक्रमपंचदण्ड' (सं० १५६०) और 'स्नेह परिक्रम' नामक रचनाएं उपलब्ध हो चुकी हैं।[5] पं० मोतीलालजी मेनारिया ने बीसलदेव रासो का कर्ता और उक्त रचनाओं का कर्ता एक ही नरपति अनुमानित किया है[6] और रासो का निर्माणकाल सं० १५४५–६० अनुमानित किया है। श्री हजारीप्रसादजी द्विवेदी ने भी पं०मोतीलालजी के उक्त मत का ही समर्थन किया है।[7]

बीसलदेव रासो में बीसलदेव का विवाह राजा भोज परमार की पुत्री राजमती से होना लिखा गया है। राजा भोज विग्रहराज द्वितीय का समकालीन था, जिसका समय १०३० से १०५६ वि० सं० माना जाता है। ऐसी अवस्था में नरपति नायक का समकालीन सिद्ध नहीं होता जब कि उसने रासो में वर्तमान कालिक क्रियाओं का प्रयोग किया है। रासो में आना सागर का वर्णन भी है—

दीठउ आनासागर समंद तणी वहार। हंस – गवणी मृग–लोचणी नारि॥
एक भरइ बीजी कलिरव करइ। तीजी धरी पावजे ठण्डा नीर॥
चौथी घनसागर जूं घूलई। इसो हो समंद अजमेर को बीर॥[8]

---

१ – हि० सा० इ०, ७ वां सं०, पृ० ३४।
२ – ना० प्र० प०, भाग १४, अंक १, पृ० ९९।
३ – हि० सा० आ० इ०, पृ० १४७।
४ – बीसलदेव रास, सं० डा० मा० प्र० गुप्त और अ० च० नाहटा, हि० प० प्रयाग, भूमिका पृ० ५८।
५ – मो० द० दे०, जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० २१५१।
६ – रा० भा० सा०, हि० सा० स०, पृ० ८८।
७ – हि० सा० आ० का०, पृ० ५२।
८ – ना० प्र० स० सं०, छ० सं० २७, पृ० २७।

४५:२। आनासागर का निर्माण विग्रहराज चतुर्थ के पिता अर्णोराज द्वारा सम्पन्न हुआ था।[१] इस क्षेपक से बीसलदेव रासो का चरित्र नायक विग्रहराज चतुर्थ ज्ञात होता है और राजमती धाराधिपति भोज परमार की पुत्री न हो कर किसी अन्य भोज वंशीय अथवा भोज अवटंक धारी परमार की कन्या हो सकती है।

वास्तव में बीसलदेव रासो १३वीं सदी में गेय प्रेमाख्यान के रूप में नरपति द्वारा रचा गया था। अनेक वर्ष मौखिक रहने से इसमें अनेक प्रक्षिप्त अंश सम्मिलित हो गये और इसकी भाषा का मूल रूप भी सुरक्षित नहीं रह सका। १७ वी सदी वि० में यह लिपिबद्ध किया गया और इसी समय की भाषा का रूप-सौन्दर्य इसमें सुरक्षित है।

४६:२। बीसलदेव रासो की समीक्षा इतिहास की दृष्टि से न हो कर एक काव्य-ग्रन्थ के रूप में ही होनी चाहिये।

(६) प्रारम्भकाल के अन्य कवि-कोविद

(१) पूषी, वि० सं० ७००, दोहों में रचित अलंकार ग्रन्थ।
(२) ढेंढणपा, वि० सं० ६००, चतुर्योग भावना।
(३) गोरखनाथ, वि० सं० ६००, गोरखवाणी।
(४) खुमाण, वि० सं० ६००, खुमाण रासा।
(५) देवसेन, वि० सं० ६६०, १. सावय-धम्म-दोहा, २. दर्शन-सार।
(६) पुष्पदन्त, वि० सं० १०१५, १. महापुराण, २. जसहरचरिउ, ३. णायकुमार चरिउ।
(७) लाखा, वि० सं० १०३६, फुटकर दोहे।
(८) रामसिंह, वि० सं० १०५०, पाहुड़ दोहा।
(६) धनपाल, वि० सं० १०५०, भविस्सयत्तकहा।
(१०) मुञ्ज, वि० सं० १०५०, फुटकर दोहे।
(११) भोज, वि० सं० १०५०, फुटकर दोहे।
(१२) कनकामर मुनि, वि० सं० ११११६, करकंड चरिउ।
(१३) जिनवल्लभ सूरि, वि० सं० ११११६, वृद्धनवकार।
(१४) जिनदत्त सूरि, वि० सं० ११५०, १. चाचरि, २. उवएसरसायण, ३. काल - स्वरूप कुल।

(१५) आम भट्ट, वि० सं० ११५०, फुटकर छन्द ।
(१६) अज्ञात, वि० सं० १२०१, उपदेशतरंगिणी ।
(१७) महेश्वर सूरि, वि० सं० १२२०, समयजसमंजरी ।
(१८) जिनपति सूरि, वि० सं० १२३२ बधावणा गीत ।
(१९) वज्रसेन सूरि, वि० सं० १२२५, भरतेश्वर–बाहुबलि घोर ।
(२०) द्रमण चारण, उपदेश तरंगिणी में संकलित रचनाएं ।
(२१) रामचन्द्र चारण, पुरातनाचार्य प्रबन्ध में संकलित रचनाएं ।
(२२) वागण कवि, पुरातनाचार्य प्रबन्ध में संकलित रचनाएं ।
(२३) उदयसिंह चारण, प्रबन्ध चिंतामणी में संकलित रचनाएं ।

३. वीरगाथा काल

क. प्रारम्भिक परिचय

४७:२ । भारतवर्ष के अन्तिम हिन्दू–सम्राट पृथ्वीराज चौहान की वि० सं० १२५० (ई० सन् ११९३) में मुहम्मद गोरी से पराजय के फलस्वरूप विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं का आधिपत्य भारतवर्ष में स्थिर हो जाता है और देश में एक नवीन युग का प्रारम्भ होता है । इसी समय भारतीय इतिहास में मुस्लिम काल प्रारम्भ होता है । तत्पश्चात् भारतीय स्वाधीनता-संघर्ष की बागडोर मुख्यतः राजस्थान के राजपूत नरेशों के हाथों में रह जाती हैं और महाराणा कुम्भा, कान्हडदे चौहान, हमीर एवं महाराणा सांगा जैसे वीर नरेश भारतीय संस्कृति की रक्षा करते हुए विदेशी आक्रान्ताओं से तत्परतापूर्वक संघर्ष करते हैं । इन राजपूत-राजाओं द्वारा राजस्थानी साहित्य, संगीत, नृत्य, चित्र और शिल्प-स्थापत्यादि प्रवृत्तियों को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त होता है । राजस्थानी भाषा-साहित्य की विभिन्न विधाएं इस काल में स्पष्ट-रूपेण परिवर्द्धित हो जाती हैं । जैन पद्य, गद्य और चम्पू रचनाओं के साथ ही चारण रचनाएं इस काल की विशेष उपलब्धियां हैं ।

४८:२ । इस काल की जन–भावनाओं में भी विशेष परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं । जनता राजपूत शासकों और सेना-नायकों को अपना एक मात्र त्राता समझती है । इस काल में भारतीय स्वाधीनता संघर्ष के लिये राजस्थान एक विशेष केन्द्र बन जाता है । राजपूत सेना-नायक राजस्थान के विभिन्न सुरक्षित भागों में अपने शासन स्थापित करते हैं । गुहिलोत राजपूतों का शासन मेवाड़ में वि० सं० ७९०, (७३३ ई०) से ही स्थापित हो चुका था किन्तु राठोड़ों का जोधपुर और बीकानेर में, कछवाहों का ढूंढाड़ में तथा ;
का हाड़ौती प्रदेश में शासन इसी काल में स्थापित हुआ ।

पृथ्वीराज चौहान और मुहम्मद गौरी के मध्य हुए अन्तिम तराइन युद्ध में गौरी की विजय हुई, जिसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप जनता में प्रबल वीर भावना जागृत हुई। राजस्थान में वीरता पूर्ण धर्म-युद्ध, जौहर और बलिदान की ऐसी परम्पराएं प्रचलित हुई जिनके उदाहरण विश्व-इतिहास में अन्यत्र अप्राप्य हैं।

४९:२। वीरता के इस युग में अनेक जैन और अन्य प्रकार के सन्त कवियों ने भी वीररसात्मक रचनाएं लिखी और भक्ति का स्वरूप भी वीरता का आवरण ओढ़ कर सामने आया।

ख. वीरगाथा काल के प्रधान कवि और कृतियां

(१) शालिभद्र सूरि

५०:२। राजस्थानी साहित्य के वीरगाथाकाल के प्रथम कवि शालिभद्र सूरि हुए, जिन्होंने वि० सं० १२४१ में भरतेश्वर बाहुबलि रास काव्य लिख कर रास - परम्परा के अन्तर्गत वीर रसात्मक काव्यों का श्रीगणेश किया। मुहम्मद गौरी की पृथ्वीराज चौहान के विरुद्ध तराइन युद्ध (वि० सं० १२४०, ई० ११९३) की विजय से जनता में प्रबल प्रतिशोध की भावना उत्पन्न हुई और वीर-रस का संचार हुआ। फलस्वरूप शालिभद्र सूरि अहिंसा व्रत-धारि एक जैन साधु होते हुए भी अपने आप को समसामयिक वीर-भावना से वंचित न कर सके।

सामयिक वीर-भावना के परिणामस्वरूप जैन-साहित्य में भरतेश्वर और बाहुबलि युद्ध विषयक काव्य-निर्माण की परम्परा प्रचलित होती है। भरत और बाहुबली के मध्य हुए युद्ध के दृश्य अबुंदाचल के सुप्रसिद्ध जैन-मन्दिर विमल वसही में सुन्दरतापूर्वक उत्कीर्ण किये गये हैं।[1] यह रास वीर-रस पूर्ण होते हुए भी निर्वेदान्त है। इसमें उत्साह, दर्प और स्वाभिमान-पूर्ण उक्तियों की काव्यात्मक पंक्तियां विशेष पठनीय हैं। अनेक स्थल नाटकीय संलापों से अलंकृत हैं, यथा— मतिसागर–भरतेश्वर संवाद, दूत–बाहुबलि संवाद आदि। दूत-बाहुबलि-संवाद का एक उदाहरण निम्नलिखित है –

दूत पभणइ दूत पभणइ बाहुबलि राउ,
भरहेसर चक्क घरू कहि न कवणि दूहवण कीजिइ,
बेगि सुबेगि बोलिह संभलि वाहुवलि।
बिण बंधव सबि संपइ ऊणी, जिम बिण लवण रसोई अलूणी।
तुम वंसणि उत्कंठित राउ, नितु नितु वाट जोह भाउ॥

---

१ – भरतेश्वर बाहुबलि रास, सं० लालचन्द भगवानदास गांधी, प्राच्य - विद्या-मन्दिर, वड़ोदा; प्रस्तावना पृ० ५३–५६।

वाहुवलि दूत को वीरतापूर्वक उत्तर देते हैं —

राउ जंपइ राउ जंपइ सुणिन सुणि दूत।
जंविहि लिहींउ भालयलि तंजि लोह इह लोइ पामइ।
अरि रि! देव न दानव महिमंडलि मंडलैव मानव
काइ न लघइ लहीयालीह, लाभइ अधिक न ओभा दीह।[1]

५१:२। इस रास में सेना-वर्णन, दिग्विजय-वर्णन, हाथी, घोड़ों और सैनिकों के अनेक वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण हैं, किन्तु भाषा में सर्वत्र प्रवाह और अनुप्रासों की छटा वर्तमान है। वीर-रसात्मक काव्यों में सेना-यात्रा के प्रसंग अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। भरतेश्वर वाहुवलि रास में सेना-यात्रा का वर्णन इस प्रकार है —

ठवणि

अहि उग्गमि पूरव दिसिहिं, पहिलउं चालिय चक्क।
धूजिय धरयल थरहरए, चलिय कुलाचल-चक्क ॥१८॥
पूठि पियाणु तउ दियएं, भुयबलि भरह-नरिंदु तु।
पिडि पंचायण परदलहे, हलियलि अवर सुरिंद तु ॥१९॥
वज्जिय समहरि संचरिय, सेनापति सामंत।
मिलिय महाधर मंडलिय, गाढिम गुण गज्जंत ॥२०॥[2]

(२) शार्ङ्गधर

५२:२। कवि शार्ङ्गधर के हमीर रासो और हमीर काव्य नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं किन्तु ये पूर्ण रूप में अप्राप्य हैं। इनके संस्कृत ग्रन्थ शार्ङ्गधर संहिता (वैद्यक) और शार्ङ्गधर पद्धति (सुभाषित, र० का० १४२० वि०) अवश्य ही पूर्णरूप में प्राप्त होते हैं। इनके भाषा काव्यों के कतिपय उदाहरण प्राकृतपैंगलम में प्राप्त होते हैं, जिनसे ये कुशल कवि प्रतीत होते हैं —

पिधउ दिढ सण्णाह वाह उप्पर पक्खर दइ।
वंधु समदि रण धसउ हम्मीर बअण लइ।
उड्डल णाहपट्ट भमउ खग्ग रिउ सीसहि डारउ।
पक्खर पक्खर ठेल्लि पेल्लि पव्वअ अप्फालउ।

---

१ — आदिकाल के अज्ञात हिन्दी रासकाव्य, 'हरीश', मंगल प्रकाशन, जयपुर।

२ — क — हिन्दी काव्य-धारा, राहुल सांकृत्यायन, पृ० ४००।

ख — आदिकाल के अज्ञात हिन्दी रास काव्य, 'हरिश', मंगल प्रकाशन, जयपुर

हम्मीर कज्जु जज्जल भणइ, कोहाणल मुहमह जलउ ।
सुलताण सीस करमाल दइ-तज्जि कलेवर दिग्र चलउ ॥

उक्त पद्य में रणथम्भोर के राजा हमीर का सेनापति जज्जल प्रतिज्ञा करता है कि — मजबूत कवच पहन कर, घोड़े पर पाखर डालकर, बंधुजनों को ग्रश्वासन देकर और शाह हमीर के वचनों को ग्रहण कर मैं रण में उतरा हूं। मैं ग्रन्तरिक्ष एवं ग्राकाश-मार्ग में भ्रमण करता हूं। खड्ग से शत्रुग्रों के सिरों को काटता हूं। पाखर से पाखर ठेल-पेल कर मैं पर्वतों को कम्पायमान करता हूं। जज्जल कहता है कि हम्मीर के कार्य हेतु मैं बार-बार कोपाग्नि में जल रहा हूं और सुलतान के मस्तक पर तलवार का प्रहार कर देह को तज स्वर्ग में चलता हूं।[1]

(३) बारूजी सौदा

५३:२। बारूजी 'सौदा' नामक शाखा के चारण कवि थे और मेवाड़ के महाराणा हमीर के समकालीन थे। महाराणा हमीर के समयानुसार बारूजी का रचना काल सं० १४०८ से १४२१ के बीच निश्चित होता है। बारूजी रचित स्वतन्त्र काव्य ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता, किन्तु स्फुट रचनाएं ग्रवश्य मिलती हैं।[2] इनके एक गीत का उदाहरण इस प्रकार है —

एला चित्तोड़ा सहे घर ग्रासी, हूं थारा दोखिया हरूं ।
जरणी इसो कहूं नह जायो, कहवे देवी धीज करूं ॥१॥

रावळ बापा जसो रायगुर, रीझ खीझ सुरपंत री रूंस ।
दस सहंसा जेहो नह दूजो, सकती करे गला रा सूंस ॥२॥

मन साचे भाखे महमाया, रसरणा सहती बात रसाळ ।
सरज्यो ले ग्रड़सी सुत सरखो, पकड़े लाउं नाग पयाल ॥३॥

ग्रालम कलम नवे खंड एला, केल पुरारी मींढ किसो ।
देवी कहै सुण्यो नह दूजो, ग्रवर ठिकाणे भूप इसो ॥४॥

(४) श्रीधर व्यास

५४:२। श्रीधर व्यास कृत "रणमल छन्द" भी इसी काल की एक उत्कृष्ट रचना है। श्रीधर ईडर के राजा रणमल राठौड़ के समकालीन थे। रणमल और पाटण के सुबेदार

१ — राजस्थानी भाषा ग्रौर साहित्य, श्री मोतीलालजी मेनारिया, पृ० ७६।
२ — राजस्थानी शब्द कोष, श्री सीताराम लालस, रा० शो० सं०, जोधपुर, प्रस्तावना पृ० १०३।

मुजफ्फरशाह के मध्य सन् १३९७ (वि० सं० १४५४) में हुए युद्ध का वर्णन् कवि ने ओजस्वी शब्दावली में किया है। रणमल छन्द ७० छन्दों की एक लघु कृति है किन्तु प्राचीनता और रसपरिपाक के साथ ही ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसका एक उदाहरण निम्नलिखित है —

गोरीदल गाहवि दिट्ठ दहु दिसि गढ़ि मढ़ि गिरि गहरि गडिय।
हणहणि हवकन्तउ हुँहुँ हय हय हुंकारवि हयमरि चडियं॥
घडहडउ घडि कमवज्ज धरातलि घसि धगडायण घूंस-धरइ।
ईडर वइ पंडर वेस सरिसु रणि रांमायण रणमल्ल करइ॥[1]

(५) सिवदास गाडण

५५:२। सिवदास जाति के चारण थे और गाडण इनका गौत्र था। सिवदास ने "अचलदास खींची री वचनिका" नामक वीर रसात्मक चम्पू काव्य लिखा। इस काव्य में गागरौनगढ़ (कोटा) के खींची राजा अचलदास और मांडू के बादशाह हुशंग गोरी के युद्ध का वर्णन है। यह युद्ध वि०सं० १४८० (ई० सन् १४२३) में हुशंग गोरी के गागरौनगढ़ पर चढ़ाई करने पर हुआ था। डा० तेस्सीतोरी ने ग्रन्थकार को अचलदास का समकालीन बताते हुए युद्ध के समय ही काव्य का निर्मित होना सूचित किया है।[2] डा० हीरालाल माहेश्वरी के मतानुसार काव्य का निर्माण सं० १५०० के लगभग हुआ।[3] इस प्रकार काव्य ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण सिद्ध होता है। यह काव्य भाषा – सौष्ठव, उक्ति-वैचित्र्य और वीररस की दृष्टि से उत्तम काव्यों की श्रेणी में है। इस के उदाहरण इस प्रकार हैं —

"एकणि वंनि वसंतड़ा, एवड़ अंतर काइ।
सीह कबड्डी न लहै, गेवर लख्खि विकाइ॥ १॥
गैव्वर गलै गळथीयो, जहं खंचे तहं जाइ।
सीह गलथ्थण जे सहै, तो दह लख्ख विकाइ॥ २॥

वात

देस तो कोण-कोण। सत्यासी। नमीयाड़, आसेर, रायंगण, प्रोली, पट्टो सेलारपुर, माड़, सीहोर, हैसंगाबाद नगर का। इसा एक:ते कटक वन्य। देस-दे

---

१ – राजस्थानी शब्द कोष, श्री सीताराम लालस, भूमिका पृ० १०४।

२ – ए डिस्क्रिप्टिव केटलोग आफ बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मेन्युस्क्रिप्ट्स बीकानेर स्टेट, पृ० ४१।

३ – राजस्थानी [illegible] हित्य, पृ० ८४।

खंड-खंड का । नगर-नगर का । घर-घर का । खांन, मीर, उमराउ, चतुरंग द
चढ़ि चाल्या । पातसाहि पापाण पै पलाण घाल्यां । इसी हींद राजा कौण छै जि
का पातसाह के मनि रीस वसी । कुणे का माथा सं खिसी । कुणे देव रूठो । कु
की मांइ वियांणीं जो सांमहो रहे ।"

(६) बादर ढाढी

५६:२ । बादर अर्थात् बहादुर जाति का मुसलमान ढाढी था जिसने अपने आश्र
दाता दला जोईया और वीरमजी के बीच होने वाले संघर्ष का वर्णन वीरमायण काव्य
किया है । पं० रामकर्ण जी आसोपा ने वीरमायण के कर्ता का नाम रामचन्द्र लिखा है
स्व० आसोपाजी का यह मत समीचीन नहीं है क्योंकि काव्य में कर्ता का नाम बादर ह
ही मिलता है —

"बादर ढाढी बोलियो नीसाणी गलां ।"[2]

५७:२ । राजस्थान में ढाढ़ी हिन्दु और मुसलमान दोनों ही जातियों के होते
बादर मुसलमान ढाढ़ी था क्योंकि उसने अपने काव्य में हिन्दुओं के लिये "खाफर"
का प्रयोग किया है —

"खाफर माल कुरांण कुं लख बेर लगांणी ।[3]

५८ २ । वीरमायण के रचना-काल के विषय में अनेक मत हैं । पं० मोतीला
मेनारिया ने बादर को मारवाड़ के राव वीरमजी का आश्रित बताते हुए वीरमायण
रचना-काल राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा और डिंगल में वीर रस[4] में सं० १४४
आसपास बताया है । बाद में आपने अपना मत परिवर्तित करते हुए इस काव्य का र
काल अठारहवीं शताब्दी का मध्य लिखा है ।[5] डा० सुकुमार सेन ने राव वीरम क
कवि का आश्रयदाता मानते हुए वीरमायण का रचना-काल १५ वीं सदी लिखा है ।[6]

---

१ – मारवाड़ का मूल इतिहास, पृ० ८७ ।

२ – प्रका० राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, नीसाणी सं० ८०, ।

३ – वीरवांण (वीरमायण) सं० श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत, राजस्थान विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, छन्द संख्या ६५, पृ० सं० ३६ ।

४ – क – प्रकाशक– छात्र हितकारी पुस्तकमाला, प्रयाग, पृ० २२१ ।
ख – प्रकाशक– हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, भूमिका पृ० ३६ ।

५ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग पृ० २२६ ।

६ – ए डिस्क्रिप्टिव केटलाग, पार्ट १, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, पृ० ३ ।

५९:२। बादर ने वीरमजी और दला जोइया के मध्य होने वाले संघर्ष के कारणों र संघर्ष का वर्णन किया है जिसमें वीरमजी और उनके अनुयायियों को दोषी । जोइयों को निर्दोष बताते हुए जोइयों की प्रशंसा की है —

अला-अला उचार के चढ़ खेंगा चला।
जुडिया तेगा जोइया हुय बीरां हला।
वीरम मलां वीटीया बाजी गलबला।
भड़ वीरम मदु भिडे जाणे जम टीला।
वीरमदे जोयां बिचै भासे रिण भला।
सिह अचानक सांकड़े घड़ कुंजर घला।
केहर जाणक कोप कर उठिया गीर टीला।।[1]

ाह कृति जोईयों के ढाढ़ी बादर की (बहादुर की) है —

"हूं बादर ढाढ़ी जोया रो ही। सो मैं पूछ नै सुणी जिसी हगीगत सुं ाणावट करी।......... मैं जोइयां रे नंगारे माथै हो। हेत-वेर सारो निजरां देख्यो। ाछे धीरदेजी काम आया। जां पछे तेजमाल जोये मने कैयो के बादर सिरदार मारिजियां जिण तरै हुइ थे देखी जिसो सारी हगीगत बरण करो।"[2]

६०:२। ऐसी अवस्था में "वीरमायण" को "दलायण" भी कहा जा सकता है। सम्भव है प्रारम्भ में यह कृति "दलायण" के नाम से ही प्रचलित रही हो और कालान्तर में वीरमजी राठोड़ के पक्ष वालों ने इसमें वीरमजी का वर्णन देख कर इसको "वीरमायण" के नाम से प्रसिद्ध कर दिया हो।

(७) पद्मनाभ

६१:२। सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने राजस्थान में रणथंभोर, चित्तौ... जालोर आदि दुर्गों पर आक्रमण किये। राजपूत योद्धाओं ने वीरतापूर्वक ... और तथा राजपूत रमणियों ने जौहर व्रत का पालन किया, जिसके विषय में अ... ...तिकार किया वार्ताओं की रचनाएं हुई — ...नेक काव्यों और

चित्तौड़-युद्ध —

(२) हेमरतन – गोरा बादल पदमिणी चऊपई (र० का० १६४६ वि०),[1]
(३) लब्धोदय कृत – पद्मनी चरित् (र० का० १७०२ वि०),
(४) जटमल कृत – गोराबादल वार्ता (ले० का० १८२८ वि०),
(५) भाग्य विजय कृत – गोराबादल चौपाई (ले० का० १८०३ वि०),
(६) अज्ञात कर्तृक – गोराबादल कथा।

रणथंभीर युद्ध —

(१) नयचन्द्र कृत – हमीर महाकाव्य, सं० (ले० का० १५४२ वि०),
(२) जोधराज कृत – हमीर रासो, अपर नाम हमीरायण (र० का० १७८५ वि०),
(३) ग्वाल कवि कृत – हमीर हठ,
(४) चन्द्रशेखर कृत – हमीर हठ।

जालौर युद्ध —

(१) कवि पद्मनाभ कृत – कान्हड़दे प्रबन्ध (र० का० १५१२ वि०),
(२) अज्ञात कर्तृक – वीरम दे सोनीगरा री वात, (ले० का० १७६१ वि०)।

६२:२। अलाउद्दीन के आक्रमण के समय जालौर पर सोनीगरा चौहान कान्हड़दे का शासन था। कान्हड़दे ने अपने वीर राजपूत सैनिकों सहित अनेक वर्षों तक संघर्ष किया और अन्त में वीरगति प्राप्त की। कान्हडदे के साथ ही इसके पुत्र वीरमदे ने वीरतापूर्वक युद्ध किया। कवि ने वीरमदे और अल्लाउद्दीन की पुत्री का पूर्व जन्मों का सम्बन्ध बताते हुए प्रेम-प्रसंग भी काव्य में दिया है।

६३:२। कान्हड़दे प्रबन्ध प्राचीन राजस्थानी का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है जिसका [1]निर्माण-काल संवत् १५१२ है। काव्य की रचना जालोर के चौहान शासक अखैराज के ——— कवि पद्मनाभ ने युद्ध के १५० वर्ष पश्चात् की, जिससे इसका विशेष महत्व है।
१ – मारवाड़ क... पाठ पूर्ण रूपेण सुरक्षित रहा है।[2]

२ – प्रका० राजस... कान्हडदे प्रबन्ध चार खण्डों में विभाजित है। "वीरमदे सोनागरा री
– वीरवांण (वी...य पर आधारित है, जिसकी राजस्थान में अनेक प्रतियां प्राप्त होती
विद्या प्रतिष्ठा...

... – प्रकाशक– ...र, प्रधान सम्पादक — 'राजा बलदेवदास बिड़ला ग्रन्थमाला', नागरी
... – प्रकाशक– ... वाराणसी, ने इस कृति का र०का० १७६० वि० दिया है (द्विता...
पृ० २२)। यह कृति महाराणा प्रताप के दीवान भामाशाह के ल...
...स्थानी भाषा औ... कावड्या की आज्ञा से सावड़ी में वि०सं० १६४६ में रचित है
...प्टिव केटलाग, ...आलोचना, भाग १६, पृ० ६४, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

।[1] प्रबन्ध – दोहा, चौपाई और सवैयों की देशियों में लिखा गया है। इसमें पांच लौकिक शैली के गीत और दो गद्यांश भी दिये गये हैं।

६५:२। पद्मनाभ एक कुशल कवि था इसलिए कवि को इतिहास, कल्पना और काव्य-तत्वों के निर्वाह में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। डा० दशरथ शर्मा के मतानुसार- "पद्मनाभ कोरा ऐतिहासिक ही नहीं था, वह कवि भी था, अतः उसे ऐसी कथाओं की कल्पना और उसके समावेश का भी पूर्ण अधिकार था।"[2] कवि ने तत्कालीन भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों का भी यथातथ्य चित्रण अपने काव्य में किया है। काव्य के सम्पादक प्रो० के० वी० व्यास ने इसकी तुलना पृथ्वीराज रासो से करते हुए इसको समान रूप में महत्वपूर्ण बताया है।[3]

६६:२। कान्हडदे प्रबन्ध के कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं —

पदमनाभ पंडित भणइ, जनमेतरि जे रीति।
जाति हुई जूजूई, पूठि न छांडइ प्रीति ॥३, २०६

× × ×

पद्मनाभ पंडित भणइ, प्रीति परीक्षा एह।
अंग विहुं जण उल्हसइ, नर नारी नवनेह ॥३, २३०

× × ×

तीन्हा तुरी ऊडवइ गढत. नला वावरइ नाला।
माझिम राति म्लेच्छ मारता, वह दिसि हीडइ भूला ॥१, २०८॥
सपराणा सींगीणे गुण गाजइ तीन्हा तूर विछूटइ।
जरइ जीण आंगा वीव्यनिइ, अंगि मूं नरा फूटइ ॥१, २०३॥
अंगो अंगि परे अणीयाले, प्राणइ पाथर फोडइ।
पांडा तणे वाइ समराणे, सींचिइ मांचि विछोडइ ॥१, २१०॥

(८) महाकवि चन्द : पृथ्वीराज रासो

में उपलब्ध हुए[1] और इन छन्दों में से तीन छन्द काशी नागरी प्रचारिणि सभा से प्रकाशित संस्करण में भी परिवर्तित रूप में श्री मुनिजी ने खोज निकाले। उक्त छप्पय इस प्रकार हैं –

इक्कु बाणु पहुवीसु जु पई कईवासह मुक्कओ।
उर भितरि खडहडिउ धीर कक्खंतरि चुक्कउ।
बीअंकरि संधीउ भंमइ सूमेसरनंदण –
एहु सु गडि दाहिमओ खणइ खुद्दइ सइंभरिवणु।
फुड छंडि न जाई इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह।,
न जाणउं चंदबलद्दिउ किं न वि छुट्टइ इह फलह ॥[2]

एक बान पहुमी नरेस कैमासह मुक्यो।
उर उप्पर थरहर्‌यो बीर कष्षंतर चुक्यो॥
बियो बान संधान हन्यो सोमेसर नंदन।
गाढ़ो करि निग्रहयो पनिव गड्यो संभरि धन॥
थल छोरि न जाइ अभागरो गडयो गुन गहि अग्गरो।
इम जंपे चंदवरद्दिया कहा निघट्टै इन प्रलौ॥[3]

अगहु म गहि दाहिमओ रिपुरायखयंकरु।
कूडु मंत्रु मम ठवओ एहु जंबुय (य) मिलि जग्गरु।
सहनामा सिक्खवउं जइ सिक्खिवउं बुज्झाइं।
जंपइ चंदवलिद्दु मज्झ परमक्खर सुज्जइ।
पहु पहुविराय संइभरिधणी सयंमरि सउणइ संभरिसि।
कइंवास विआस विसट्ठविणु मच्छिवंधिबद्धओ मरिसि॥[4]

अगह मगह दाहिमो देव रिपुराई षयंकर।
कूरमत जिन करौ मिले जम्बू वै जंगर॥
मो सहनामा सुनौ एह परमारथ सुज्झै।
अज्जै चंद विरद्द वियो कोई एह न बुज्झै॥
पृथिराज सुनवि संभरि धनी इह संभलि संभारि रिस।
कैमास बलिष्ठ बसीठ विन म्लेच्छ बंध बंध्यो मरिस॥[5]

---

१ – सिंघी जैन ग्रन्थमाला, संख्या २, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, पृ० ८६, ८८ और ८९।

२ – पुरातन प्रबन्ध संग्रह, पृ० ८६, पद्य २७५।

३ – पृथ्वीराज रासो, पृ० १४६६, पद्य २३६।

४ – पु० प्र० सं०, पद्य २७६।

५ – पृ० रा०, पृ० २१८२, पद्य ४७५।

त्रिण्हि लक्ष तुषार सबल पाषरीभइं जसु हय,
चऊद सय मयमत्त दंति गज्जंति महामय।
बीस लक्ख पायक्क सफर फारक्क पणुद्धर,
ल्हूसडु अरु बलु यान सरवं कु जाणई ताहं पर।
छत्तीस लक्ष नरहिवई बिहि विनडिओ हो किम भयउ,
जइचद न जाणउ जल्हुकइ भयउ कि मुउ कि धरि गयउ, ॥[1]

असिय लष्ष तोषार सजउ पष्षर सायद्दल।
सहस हस्ति चवसट्ठि गरुअ गज्जंत महाबल॥
पंच कोटि पाइक्क सुफर पारक्क धनुद्धर।
जुध जुधान वर वीर तोन बंधन बद्धनभर॥
छतीस सहस रन नाइवों विहि त्रिम्मान ऐसो कियो।
जैचंद राइ कविचंद कहि उदधि बुड्डि कै घर लियो॥[2]

उक्त छप्पयों से सिद्ध होता है कि कवि चन्द ने पृथ्वीराज के विषय में छन्द लिखे थे और वे वि० सं० १५२८ तक लोकप्रिय हो चुके थे एवं इन छन्दों को संग्रह-ग्रन्थों में मान्यता मिलने लगी थी।

६८:२ । पृथ्वीराज रासो की लगभग ६० प्रतियां अब तक उपलब्ध हो चुकी हैं[3] और इन सब में आकार-प्रकार एवं रूप की दृष्टि से अनेक भेद हैं। पृथ्वीराज रासो के रूपान्तरों को ४ भागों में विभक्त किया गया है —

(१) वृहत् रूपांतर, (२) मध्यम रूपांतर, (३) लघु रूपांतर, (४) लघुत्तम रूपांतर।[4]

वृहत् रूपांतर की प्रतियां वि० सं० १७६० और उसके बाद की हैं और इसकी प्राचीनतम प्रति राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान की उदयपुर शाखा में सरस्वती भ[illegible] संग्रह में सुरक्षित है। वृहत् रूपान्तर महाराणा अमरसिंह द्वितीय (शासनकाल १७५५-१७६७) की आज्ञा से तैयार किया गया था। वृहत् रूपांतर की [illegible] में निम्नलिखित छप्पय भी प्राप्त होता है —

१ – पु०प्र० सं०, पृ० ८८, पद्य २८७।
२ – पृ० रा०, पृ० २५०२, पद्य२१६।
३ – राजस्थान का पिंगल साहित्य, पं० मोतीलालजी मेनारिया,
४ – पं० नरोत्तमदासजी स्वामी, राजस्थान भारती, शार्दूल रा[illegible]
बीकानेर, अप्रेल सन् १९४६, पृ० ३-४।

गुन मनियन रस पोइ, चन्द कवियन दिद्धिय ।
छन्द गुनी ते तुट्टि मन्द कवि भिन्न भिन्न किद्धिय ॥
देस देस विष्षरिय, मेल गुन पार न पावय ।
उद्दिम करि मेलवत, आस बिन आलय आवय ॥
चित्रकोट रांन अमरेस नृप, हित श्री मुख आयस दयौ ।
गुन बीन बीन करुना उदधि, लखि रासो उद्दिम कियौ ।

उक्त छप्पय से स्पष्ट होता है कि पृथ्वीराज रासो के छन्द मूल ग्रन्थ से अलग हो गये थे, जैसे कोई माला टूट कर उसकी मणियां बिखर जाती हैं। महाराणा अमरसिंह की आज्ञा से देश-देश में प्रचलित इन छन्दों को एकत्रित कर क्रमबद्ध किया गया। नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी से प्रकाशित संस्करण वृहद् रूपांतर पर आधारित है। अब आवश्यकता यह है कि प्राप्त समस्त प्रतियों के आधार पर पृथ्वीराज रासो का एक वृहत्तम् संस्करण तैयार किया जाय जिससे इस महान् कृति का यथोचित मूल्यांकन हो सके। सं० १७६० में किये गये उक्त संकलन में अनेक छन्दों का छूट जाना संभव है। पृथ्वीराज रासो का पूर्ण रूप सामने आना आवश्यक है। अवश्य ही इसमें प्राचीन काल में किये गये अनेक कवियों के क्षेपक होंगे किन्तु इन क्षेपकों को भी काव्य-सीमा से बाहर नहीं रखा जा सकता।

६९:२। पृथ्वीराज रासो के मध्यम रूपान्तर वि० सं० १७२३ और १७३९-१७४० में लिपिबद्ध हुए हैं। वृहत् रूपान्तरों में अध्यायों का नाम 'सम्यौ' है किन्तु मध्यम रूपान्तरों में इनको 'प्रस्ताव' कहा गया है।

७०:२। लघु और लघुत्तम रूपान्तरों की प्रतियां १७वीं शताब्दी में लिपिबद्ध हुई हैं। लघु रूपान्तरों में अध्यायों को 'खण्ड' कहा गया है और लघुत्तम रूपान्तर की प्रतियां में विभक्त नहीं हैं। पृथ्वीराज रासो की प्राचीनतम प्रति धारणोज में वि०सं०

७१:२। उक्त प्रति से और पुरातन प्रबन्ध-संग्रह से महाकवि चन्द द्वारा पृथ्वीराज रासो का १६वीं सदी से पहले रचा जाना सिद्ध होता है। लघुतम रूपांतर वृहत् पृथ्वीराज रासो का संक्षिप्त रूप भी हो सकता है। राजस्थान में विशाल काव्य-ग्रन्थों को संक्षिप्त रूप देने की परम्परा भी रही है; उदाहरण स्वरूप 'विड़दसिणगार' और 'जसवंतभूषण' नामक काव्यों को लिया जा सकता है। 'विड़दसिणगार' १२५ छन्दों का काव्य है और यह चारण कवि करणीदान कृत 'सूरजप्रकास' नामक साढ़े सात हजार छन्दों में रचित महाकाव्य का संक्षिप्त रूप है। इसी प्रकार जसवंतभूषण नामक काव्य कविराजा मुरारीदान कृत जसवंतजसोभूषण का संक्षिप्त रूप है।

७२:२। डा० माताप्रसाद गुप्त ने पृथ्वीराज रासो के लघुतम रूपान्तर को मूल के समीप अनुमानित करते हुए लिखा है —"मंगलाचरण और कथा की एक सक्षिप्त भूमिका के अनन्तर जयचन्द के राजसूय और संयोगिता के पृथ्वीराज सम्बन्धी प्रेमानुष्ठान विषयक विवरणों से रचना प्रारम्भ हुई होगी। तदनन्तर उसमें मंत्री कयमास के वध, पृथ्वीराज के कन्नोज-गमन में उसके प्राकट्य, संयोगिता परिणय, पृथ्वीराज जयचन्द-युद्ध और दिल्ली आकर पृथ्वीराज-संयोगिता के केलि-विलास की कथाएं उसके पूर्वार्द्ध की सृष्टि करती रही होंगी और उत्तरार्द्ध में उस केलि-विलास से चन्द के द्वारा किये गये पृथ्वीराज के उद्बोधन, शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के (द्वितीय) युद्ध तथा शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज के अन्त की कथाएं रही होंगी। इस मूल रूप का आकार लगभग ३६० रूपकों का रहा होगा।"[1]

७३:२। आचार्य पं० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी के मतानुसार — मूल रासो की रचना शुक-शुकी संवाद के रूप में होनी चाहिए अतएव शुक-शुकी सवादों से युक्त प्रसंग ही प्रचलित रासो की प्रतियों में प्रामाणिक हैं -- शुक-शुकी के संवाद-रूप में कथा कहने की योजना तत्कालीन प्रचलित नियमों के अनुकूल तो थी ही, इसलिए भी आवश्यक थी कि उसमें चंद कवि स्वयं एक पात्र है। किसी दूसरे के मुख से ही अपने बारे में कुछ कहलवाना कवि को उचित लगा होगा।[2]

७४:२। स्व० कविराव मोहनसिह के मतानुसार पृथ्वीराज रासो में संस्कृत वृत्तों के अतिरिक्त साटक, गाथा, दोहा. और कवित्त (छप्पय) का ही समावेश होना चाहिए क्योंकि कवि चन्द ने इन्हीं छन्दों के लेखन का संकेत किया है —

छन्द प्रबन्ध कवित्त जति, साटक, गाह, दुअत्थ।
लहु गुर मंडित खंडियहि, पिंगल अमर भरत्थ।।[3]

---

१ – हिन्दी साहित्यकोष, भाग २, ज्ञान मंडल वाराणसी, पृ०३२१।
२ – हिन्दी साहित्य का आदिकाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० ६५
३ – प्रथम समय।

७५:२। उक्त आधार पर स्व० कविराव जी ने पृथ्वीराज रासो का सम्पादन भी किया[1] किन्तु क्षेपक-कर्ताओं ने उक्त छन्द भी अवश्य रासो में जोड़े होंगे। अतएव कविरावजी द्वारा रासो-पाठ-ग्रहण एवं सम्पादन के लिए अपनाया गया आधार निर्दोष नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार आचार्य हजारीप्रसादजी द्विवेदी द्वारा बताये गये शुक-शुकी संवादों में भी क्षेपक जुड़ना स्वाभाविक है।

७६:२। पृथ्वीराज रासो का उल्लेख उदयपुर के निकट राजसमुद्र नामक विशाल सरोवर के बांध पर पच्चीस शिलाओं पर उत्कीर्ण "राजप्रशस्ति महाकाव्य" में इस प्रकार उपलब्ध होता है --

"भाषारासापुस्तकेस्य युद्धस्योक्तोस्तिन्निरतर:।"[2]

राजप्रशस्ति महाकाव्य का कर्ता रणछोड़ भट्ट था, जिसने इसका लेखन कार्य वि०सं० १७१८ में प्रारम्भ कर वि०सं० १७३२ में पूर्ण किया था।[3]

पृथ्वीराज रासो का उल्लेख वि०सं० १७४७ में लिखित "जसवन्तउद्योत" नामक काव्य में भी हुआ है —

चंद भाट की चाकरी, पृथ्वीराज विचारि।
संग सोरह सामंत ले, गयो गुपत अनुहारि।
संयोगिता कुमारिका, वर्‍यो जहां चौहानु।
तहीं पिथौरा कह दयो, राइ अभै जिय दानु।
रासो पृथ्वीराज को, तहां बहुत विस्तारु।
मैं वरन्यो संछेप ही, सकल कथा को सारु॥ — जसवन्त उद्योत[4]

तदुपरान्त कवि यदुनाथ कृत वृत्तविलास नामक काव्य में रासो का उल्लेख मिलता है —

एक लाख रासो कियो, सहस पंच परिमान।
पृथ्वीराज नृप को सुजसु, जाहर सकल जिहान॥[5]

वल्लभ कृत कुन्तीप्रसन्नाख्यान में रासो का उल्लेख इस प्रकार मिलता है —

---

१ — प्रकाशित, राजस्थान विद्यापीठ, साहित्य संस्थान, उदयपुर।
२ — सर्ग ३ — श्लोक २७।
३ — ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ५७०, ५७२, ५७७।
४ — अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर की प्रति।
५ — रचनाकाल सं० १८०० । डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा का निबन्ध, कोशोत्सव स्मारक संग्रह, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

भारत समु प्रमाण, रासा ना तमासा मालो।
कर्या भारत वेश्रण, ग्रारत उवेखिए ।।
पृथ्वीश प्रसंशा कथो, मानशे नु मोधु तेमां।
प्रेमानन्द नी कविता सविता सी पेखिए ।।
ब्राह्मण थी भाट थया, वंशज विधि ना ग्रा तो।
कवीश्वर ना पिता थी, चंद मंद देखिए ।।[1]

७७:२। पृथ्वीराज रासो के उक्त उल्लेख १८वीं शताब्दी विक्रमी के हैं। पृथ्वीराज रासो की प्राप्त ग्रधिकांश प्रतियां भी १८वीं शताब्दी विक्रमी की प्राप्त होती हैं। इस ग्राधार पर पं० मोतीलाल जी मेनारिया ने पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल १८वीं शताब्दी विक्रमी माना है। इनका मत है — "विक्रमी सं० १७०० से पूर्व की ग्रधिकांश प्रतियों में सम्वत् ग्रौर तिथि के साथ वार का उल्लेख नहीं है ग्रौर किसी प्रति में वार का उल्लेख है तो वह गणना के ग्रनुसार सही ज्ञात नहीं होता। इसलिए १७०० से पूर्व की प्रतियां जाली हैं। मेवाड़ के महाराणा राजसिंह ने राजसमुद्र के बांध पर शिलालेख के रूप में लगवाने के लिए राजप्रशस्ति महाकाव्य-का निर्माण प्रारम्भ करवाया तब चंद का कोई वंशज ग्रथवा उसकी जाति का कोई दूसरा व्यक्ति रासो लिखकर सामने लाया प्रतीत होता है। यदि यह व्यक्ति रासो को ग्रपने नाम से प्रचारित करता तो लोग उसे प्राचीन इतिहास के लिए ग्रनुपयोगी समझते ग्रौर उसमें वर्णित बातें उसे सप्रमाण सिद्ध भी करनी पड़ती ग्रतएव चंद रचित बतलाकर उसने इस सारे झगड़े का ग्रन्त कर दिया। चंद का नाम लोक-प्रचलित था ही। लोगों को उसकी बात पर विश्वास भी हो गया।"[2] पं० मोतीलालजी के मतानुसार पृथ्वीराज रासो की प्राचीनतम प्रति महाराणा ग्रमरसिंह द्वितीय (सं० १७५५-६६) के शासन काल में वि०सं० १७६० में लिखी गई। यह प्रति राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान की उदयपुर शाखा में सरस्वती भण्डार संग्रह में उपलब्ध है, इसका पुष्पिका-लेख निम्नलिखित है —

"सं० १७६० वर्षे शाके १६२५ प्रवर्त्तमाने उत्तरायण गते श्री सूर्य शिशिर ऋतौ सन्मांगलप्रद माघ मासे कृष्ण पक्षे ६ तिथौ सोमवासरे। श्री उदयपुर मध्ये हिन्दूपति पातिसाहि महाराजाधिराज महाराणा श्री ग्रमरसिंह जी विजय राज्ये। मेदपाट जातीय भट्ट गोवर्धन सुतेन रूपजी ना लिखितं चंद बरदाई कृत पुस्तकं।"

---

१ – रचनाकाल सं० १८३८, श्री कन्हैयालाल माणिकलाल लिटरेचर, पृ० २००।

२ – राजस्थान का पिंगल साहित्य, हितैषी पुस्तक भण्डार,

इसी प्रति के अन्त में एक छप्पय इस प्रकार लिखित है —

मिलि पकज गन उदधि करद कागद कातरनो ।
कोटि कवि काजलह कमल कटिक ते करनो ।
इहि तिथीं संख्या गुनित कहे कक्का कविया ने ।
इहि श्रम लेखनहार भेद भेदे सोइ जाने ।
इन कष्ट ग्रंथ पूरन करय, जन बड़ या दुख ना लहय ।
पालिये जतन पुस्तक पवित्र, लिखि लेखिक विनती करय ।।

उक्त छप्पय का अर्थ करते हुए डा० श्यामसुन्दर दास ने लिखा है — "यदि पंकज से पंकज नाल (१) गन को गुन (६) का अशुद्ध रूप, उदधि से समुद्र (४) और करद से कटार या चाकू (१) जिसका फल एक होता है, मान लें, तो सं० १६४१ बनता है। शेष शब्दों में मास, तिथि आदि होगी, पर यह स्पष्ट नहीं होता। यदि इस हिसाब से रासो का संकलन सं० १६४१ मान लिया जाय तो कुछ अनुचित नहीं होगा, इससे कई बातों का सामंजस्य हो जायगा।"[1]

७८:२। उक्त मत के विपरीत "मिली पंकज गन उदधि करद" का अर्थ उदधि को ७ और करद (खंग) को १ मानते हुए वि०सं० १७६० किया गया है और अमरेश नृप से अभिप्राय अमरसिंह द्वितीय लिया गया है जिनका शासनकाल १७६० था।[2] साथ ही "कातरनी" का अर्थ दो करते हुए रासो का निर्माणकाल १२०० के लगभग भी बताया गया है और महाराणा अमरसिंह के समय इसकी एक प्रति का लिपिबद्ध होना सूचित किया गया है।[3]

७९:२। वास्तव में उक्त छन्द लिपिकार के प्रति-लेखन में किये गये परिश्रम को भी सूचित करता है। "पंकज गन" से अर्थ हाथ की उंगलियां और उदधि से अर्थ दवात है। करद, कागद, कातरनी, काजल, कटि आदि के अर्थ स्पष्ट हैं। उक्त शब्द 'क' से प्रारम्भ होने वाले हैं और नागरी लिपि की वर्णमाला भी कक्का कही जाती है। लिपिकार कहता है कि यह प्रति कष्टपूर्वक लिखी गई है इसलिए इसकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए।

---

१ — ओरियंटल कान्फ्रेंस सं० १९९० के हिन्दी विभाग में दिया गया भाषण।

२ — पं० मोतीलाल जी मेनारिया, राजस्थान का पिंगल साहित्य, हितैषी पुस्तक भण्डार, उदयपुर, पृ० ४७।

३ — कविराव मोहनसिंह का निबन्ध, पृथ्वीराज रासो की विवेचना, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर।

८०:२। डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, कविराजा श्यामलदास और कविराजा मुरारीदान आदि ने पृथ्वीराज रासो में ऐतिहासिक दृष्टि से अनेक त्रुटियां बताते हुए इसको जाली लिखा है। इतिहासकारों में से सर्वप्रथम कर्नल जेम्स टॉड का ध्यान पृथ्वीराज रासो की ओर आकर्षित हुआ और उसने निम्नलिखित शब्दों में इस ग्रन्थ की प्रशंसा की —

"चंद का यह ग्रन्थ अपने समय का एक विश्वमुखीन इतिहास है। इसके ६४ सर्गों में पृथ्वीराज के पराक्रम-सम्बन्धी एक लाख छन्द हैं जिनमें राजस्थान के प्रत्येक प्रतिष्ठित घराने के पूर्व पुरुषों का कुछ न कुछ लेखा मिलता है। इसलिए राजपूत नाम का कुछ भी अभिमान रखने वाली जातियां इसे अपने संग्रहालयों में रखती हैं और इसके द्वारा अपने उन वीर पुरखाओं का पता लगाती हैं जिन्होंने किर्मान के दर्रों में जबकि युद्ध के बादल हिमालय से हिन्दुस्तान तक के मैदानों में गड़गड़ा रहे थे, युद्ध-तरंगों का जल-पान किया था। पृथ्वीराज के युद्धों, उनकी संधियों, उनके वंशवर्ती अनेक शक्तिशाली राजाओं, उनके निवासस्थानों तथा वंशावलियों ने चंद के इस काव्य को इतिहास एवं भूतत्व का एक अमूल्य ज्ञापन बना दिया है तथा देव-गाथाओं, रीतिव्यवहारों व मनुष्य के मन के इतिहासों का भी वह एक कोषागार है।"[1]

८१:२। जेम्स टॉड ने रासो के ३००० छन्दों का अंग्रेजी अनुवाद भी किया।[2] जेम्स टॉड के अनुसार फ्रांसीसी विद्वान गार्सादितासी ने भी अपने "इस्तवार द ला लितरात्यूर ऍंदुई ए,इंदुस्तानी" (सन् १८३९ ई०) नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में रासो की प्रशंसा करते हुए इसको १२वीं शताब्दी की प्रति बताया। रावर्ट लिज नामक रूसी विद्वान ने रासो के एक खण्ड का अनुवाद किया।[3] तदुपरान्त एफ० एस० ग्राउस, जॉन बीम्स और रुडाल्फ हार्नली प्रभृति विद्वानों ने जेम्स टॉड का समर्थन करते हुए अनेक लेख लिखे और उसका अंग्रेजी अनुवाद छपवाना प्रारम्भ किया।[4]

८२:२। ऐतिहासिकता की दृष्टि से रासो का सर्व प्रथम विरोध उदयपुर के कविराजा श्यामलदास ने किया और इस विषय में "पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता" नामक निबन्ध हिन्दी में सं० १९४२ में तथा अंग्रेजी में सन् १८८६ में प्रकाशित करवाया।[5]

१ – दि एनल्स एण्ड एंटिक्विटीज आव राजस्थान (प्रथम संस्करण) सन् १८२९ ई० पृ० २५४।
२ – वही, पृ० २५४।
३ – डा० जार्ज ग्रियर्सन, दि माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिन्दुस्तान, पृ० ४।
४ – सेंटिनरी रिव्यु आव दि एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल, सन् १७८४–१८८३, परिशिष्ट – सी०, पृ० १०५–१६७।
५ – जरनल आव दि एशियाटिक सोसाइटि आव बंगाल, संख्या १, भाग १।

(४) भाषा अनुस्वारांत शब्दों से भरी हुई है और उसमें कोई स्थिरता नहीं है। प्राकृत और अपभ्रंश की शब्द-रुपावली का कोई विचार नहीं है और शब्दों की रूपावली और नये पुराने ढंग की विभक्तियां बुरी तरह से मिली हुई हैं।

८७:२। डा० ओझा के विरोध में बाबू श्यामसुन्दर दास और मिश्र-बन्धुओं ने अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये, किन्तु ये तर्क की कसौटी पर खरे नही उतरते। डा० रामकुमार वर्मा ने भी सतर्क कारण बताते हुये पृथ्वीराज रासो को अप्रामाणिक लिखा है।[1]

८८:२। पृथ्वीराज रासो का मूल्यांकन इतिहास की दृष्टि से नहीं वरन् एक महाकाव्य की दृष्टि से ही किया जाना चाहिए। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण में पृथ्वीराज रासो के सर्ग निम्नलिखित हैं —

(१) आदि पर्व (मंगलाचरण, चौहान-वंश की उत्पत्ति आदि, पृथ्वीराज का जन्म)।
(२) दसम समय (विष्णु के दशावतारों का वर्णन)।
(३) दिल्ली कीली कथा।
(४) अजानबाहु समय।
(५) कन्हपट्टी समय (मूंछ ऐंठने पर प्रतापसिंह चालुक्य को कन्ह चौहान भरे दरबार में मार डालता है। पृथ्वीराज उसे दरबार में अपनी आंखों पर पट्टी बांधने के लिए बाध्य करता है)।
(६) आखेटक वीर समय (मृगया-वर्णन)।
(७) नाहर राय समय (नाहर राय से युद्ध)।
(८) मेवाती मुगल समय (मेवातियों से युद्ध)।
(९) हुसेन कथा-समय (शहाबुद्दीन से हुसेन के लिये युद्ध, जिसने पृथ्वीराज की शरण ली थी)।
(१०) आखेटक चूक-वर्णन (शहाबुद्दीन के द्वारा आखेट में पृथ्वीराज पर आक्रमण पर उसकी पराजय)।
(११) चित्ररेखा समय (गक्कर कुमारी जो शहाबुद्दीन की प्रियतमा थी और जिसे लेकर हुसेन पृथ्वीराज के समीप भाग आया)।
(१२) भोलाराय समय (गुजरात के भोलाराय से युद्ध)।
(१३) सलख युद्ध समय (सलख के द्वारा सुल्तान के बन्दी होने पर उसका उद्धार)।

---

१ – हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० १७०-१७२।

(१४) इछिनी ब्याह कथा (पृथ्वीराज का इछिनी से विवाह)।

(१५) मुगल युद्ध कथा (मुगलों से युद्ध)।

(१६) पुण्डीर दाहिमी ब्याह कथा (दाहिमी से ब्याह)।

(१७) भूमि स्वप्न प्रस्ताव।

(१८) दिल्ली का दान प्रस्ताव (अनंगपाल के द्वारा पृथ्वीराज को दिल्ली का उपहार)।

(१९) माधो भाट कथा (माधो भाट का आगमन, शहाबुद्दीन का पुनः आक्रमण, पर पराजय)।

(२०) पद्मावती ब्याह कथा (पद्मावती से विवाह)।

(२१) पृथा ब्याह कथा (चित्रकोट के राजा समरसी के साथ पृथ्वीराज की बहन पृथा का ब्याह)।

(२२) होली कथा (होलीकोत्सव का वर्णन)।

(२३) दीपमालिका कथा (दीपमालिकोत्सव का वर्णन)।

(२४) धन कथा (खत्त वन में पृथ्वीराज को खजाने की प्राप्ति)।

(२५) शशिव्रता वर्णन (देवगिरि के राजा की पुत्री का पृथ्वीराज द्वारा हरण और फलस्वरूप कन्नौज के राजा जयचन्द से युद्ध)।

(२६) देवगिरि समय (जयचन्द के द्वारा देवगिरि का घेरा, पृथ्वीराज के सेनापति चामुण्डराय द्वारा जयचन्द की हार)।

(२७) रेवातट समय (सुल्तान शहाबुद्दीन से रेवातट पर युद्ध)।

(२८) अनंगपाल समय (अनंगपाल का दिल्ली आगमन, फिर बद्रीनाथ गमन)।

(२९) घघ्घर नदी की लड़ाई (सुल्तान शहाबुद्दीन से घघ्घर नदी पर युद्ध)।

(३०) करनाटि पात्र गमन (पृथ्वीराज का करनाट गमन)।

(३१) पीपा युद्ध।

(३२) करहरा युद्ध।

(३३) इन्द्रावती ब्याह।

(३४) जैतराय युद्ध (जैतराय द्वारा सुल्तान की फिर पराजय, जिसने धोखे से मृगया करते समम पृथ्वीराज पर आक्रमण किया था)।

(३५) कांगुरा युद्ध प्रस्ताव (कांगुरा किले पर पृथ्वीराज की विजय)।

(३६) हंसवती नाम प्रस्ताव (हंसवती से ब्याह)

(३७) पहाड़ राय समय।

(३८) वरण कथा।

(३९) सोमेश्वर वध (गुजरात के भोला भीम के द्वारा पृथ्वीराज के पिता का वध)।

(४०) पज्जून धोगा नाम प्रस्ताव।

(४१) चालुक्य प्रस्ताव।

(४२) चन्द द्वारिका गमन (चन्द की द्वारिका की तीर्थयात्रा)।

(४३) कैमास युद्ध (पृथ्वीराज के सेनापति कैमास द्वारा फिर सुल्तान को पकड़ा जाना।

(४४) भीम वध (अपने पितृघाती भीम का पृथ्वीराज द्वारा वध)।

(४५) विनय मंगल नाम प्रस्ताव (संयोगिता के पूर्व जन्म की कथा, उसकी तपस्या)।

(४६) विनय मंगल।

(४७) सुक वर्णन।

(४८) बालुकराय वर्णन।

(४९) पंग जज्ञ विध्वंस समय।

(५०) संजोगिता नेम प्रस्ताव (संजोगिता का पृथ्वीराज से विवाह करने का प्रण)।

(५१) हंसीपुर प्रथम जुद्ध।

(५२) हंसीपुर द्वितीय जुद्ध।

(५३) पज्जून महोबा प्रस्ताव।

(५४) पज्जून पातसाह जुद्ध प्रस्ताव (दसवीं बार सुल्तान का फिर बन्दी होना, पर उसे फिर छोड़ देना)।

(५५) सामंत पंग जुद्ध प्रस्ताव।

(५६) समर पंग जुद्ध प्रस्ताव।

(५७) कैमास वध समय।

(५८) दुर्गा केदार समय।

(५९) दिल्ली वर्णन।

(६०) जंगम कथा।

(६१) कनवज्ज जुद्ध कथा (कन्नोज के राजा जयचन्द से युद्ध, सारे महाकाव्य में सबसे बड़ा 'समय')

(६२) शुक चरित्र।

(६३) आखेटाचार श्राप प्रस्ताव।

(६४) धीर पुण्डीर प्रस्ताव (पुंडीर का फिर सुल्तान को बन्दी करना पर उसे मुक्त कर देना)।

(६५) विवाह सम्यो (पृथ्वीराज की स्त्रियों की सूचि)।

(६६) बड़ी लड़ाई (पृथ्वीराज का सुल्तान से लड़ाई में पराजित और बन्दी होना)।

(६७) बान वेध सम्यो (युद्ध के बाद चंद का गजनी पहुँचना पृथ्वीराज का शब्द-वेधी बाण से सुल्तान को मारना)।

(६८) राजा रैनसी नाम प्रस्ताव (पृथ्वीराज के पुत्र नारायणसिंह का दिल्ली में राज्याभिषेक पर उसका वध और दिल्ली का पतन)।

(६९) महोवा जुद्ध प्रस्ताव।[1]

८६:२। रासो, रासा, और रासउ आदि शब्दों के मूल में 'रास' है जिसको ध्रुपद आदि रागों में गेय बताया गया है —

"तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्मै मानं च बहूदात्"[2]

संलग्न रासो, रासा और रासउ आदि से प्रकट होता है कि बीसलदे रास और अन्य अनेक रास परक काव्यों की भांति पृथ्वीराज रासो भी मूलतः एक गेय काव्य रहा और गेय होने से यह काव्य कालान्तर में विकसित होता गया। इस प्रकार "पृथ्वीराज रासो" वास्तव में एक विकसनशील महाकाव्य है।

९०:२। पृथ्वीराज रासो के आंशिक रूप में गेय होने का एक अन्य प्रमाण भी हमें उपलब्ध हुआ है। संगीत-ग्रन्थ 'राग कल्पद्रुम' के द्वितीय संस्करण[3] के सम्पादक श्री नगेन्द्रनाथ बसु ने राग कल्पद्रुम के निर्माता स्व० कृष्णानन्द व्यास "राग सागर" का परिचय देते हुए लिखा है —

"इस समय एक मात्र यही कवि चन्द का वह रायसा उपयुक्त रूप से गा सकते हैं। हमने बहुत डरते-डरते गुरु स्थानीय बसु महाशय से वही गान सुनने का आग्रह प्रकाश किया और 'राग-सागर' ने भी हंसते-हंसते बालक का मन रख दिया। उन्होंने कवि चन्द का गान सुनाने के लिए पहले अपना परिघृत परिच्छेद

---

१ – हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० १५४-१५७।

२ – श्री मद्भागवत्, स्कंध १०, अध्याय ३३, श्लोक १०।

३ – प्रकाशक-बंगीय साहित्य परिषद् २४३।१ अपर सरकुलर रोड़ कलकत्ता, प्रकाशन काल सं० १९७१। राग कल्पद्रुम का प्रथम संस्करण संवत् १९०० (सन् ई०) में स्वयं श्री कृष्णानन्द व्यास ने प्रकाशित किया था।

समस्त खोल खाल लंगोटा पहना। पीछे वीर रसात्मक कवि चन्द का एक पद गाया। वैसा हृदय उत्तेजक और वीर रसात्मक गान फिर हमें कभी सुन न पड़ा। जो लोग आनन्दकृष्ण बसु महाशय के पुस्तकागार में उस समय बैठे थे वे 'राग-सागर' महाशय का अपूर्व स्वरालाप सुन और हाव-भाव देख मानो मन्त्रमुग्ध हो गये।" [1]

६१:२। श्री नगेन्द्रनाथ वसु ने — श्रीकृष्णानन्द व्यास का जन्म सन् १७६४ ई० बताया है और इन्हें मेवाड़ के "जोहैनी" स्थान का निवासी लिखा है। श्री व्यास उदयपुर महाराणा के संगीताचार्य थे और उदयपुर महाराणा ने ही इन्हें "राग सागर" का सम्मान प्रदान किया था।[2]

६२:२। पृथ्वीराज रासो का निर्माण पृथ्वीराज चौहान की वीरता एवं अद्भुत चरित्र से प्रेरित होकर पृथ्वीराज के मृत्युकाल अर्थात् विक्रमी संवत् १२५० के लगभग ही सम्भवतः प्रारम्भ हुआ। विभिन्न कवियों द्वारा कालान्तर में पृथ्वीराज रासो का विकास होता रहा और रासो के मुलतः गेय होने से इसकी गान-परम्परा मौखिक रूप में चलती रही। वि० सं० १६६७ से पहले की इसकी कोई लिखित प्रति नहीं प्राप्त होती। मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह द्वितीय (शासनकाल वि०सं० १७५५-१७६६) ने पृथ्वीराज रासो के बिखरे हुए रूपों को एकत्रित करवाया जिसको वृहत रूपान्तर की संज्ञा दी गई है।

६३:२। पृथ्वीराज रासो हमारे साहित्य-भण्डार का एक अनुपम और अनमोल जगमगाता रत्न है। इसमें मूलकथा के साथ, अनेक उपकथाओं, रसों, छंदों और अलंकारादि काव्यांगों का सफलतापूर्वक समावेश हुआ है। अवश्य ही रासो मे अनेक क्षेपक हैं किन्तु उनका भी काव्य की दृष्टि से महत्व है। क्षेपक के आक्षेप से तो हमारे वाल्मिकीय रामायण, महाभारत और रामचरित मानस आदि भी वंचित नहीं हैं तो फिर क्षेपकों के कारण पृथ्वीराज रासो को साहित्यिक दृष्टि से महत्वहीन नहीं कहा जा सकता।

६४:२। पृथ्वीराज रासो की प्राप्त समस्त प्रतियों के आधार पर इस महाकाव्य के पूर्ण पाठ को वैज्ञानिक "वृहद्तम संस्करण" के रूप में सम्पादित करते हुए इसका अध्ययन और मुल्यांकन करना सर्वथा उचित होगा।

६५:२। वीरगाथा काल के कतिपय अन्य कवि —

(१) जिनपद्म सूरि, वि०सं० १२५०, थूलिभद्द फागु।

(२) विनयचन्द सूरि, वि०सं० १२५०, नेमिनाथ चतुष्पदि।

---

१ – राग कल्पद्रुम, द्वितीय संस्करण (सं० १९७१) में प्रकाशित वक्तव्य।

२ – वही।

(३) अजयपाल, वि०सं० १२५५, फुटकर छन्द।
(४) आसिगु, वि०सं० १२५७, (१) जीव दया रास, (२) चन्दनबाला रास।
(५) धर्म (धम्म) मुनि, वि०स० १२६६, जम्बूस्वामी रास।
(६) अभयदेव सूरि, वि०स० १२८५, जयंतविजय।
(७) विजयसेन सूरि, वि०सं० १२८७, रेवन्तगिरि रास।
(८) पल्हण, वि०सं० १२८६, (१) आबू रास, (२) नेमिनाथ बारहमासा।
(९) जिनभद्र सूरि, वि०सं० १२९०, वस्तुपाल तेजपाल प्रबन्धावली।
(१०) सुमतिगणि, वि०सं० १२९५, (१) नेमि रास, (२) गजधर सार्धशतक वृहद्वृत्ति।
(११) साधना, वि०सं० १३००, भक्ति के पद।
(१२) लक्खण, वि०सं० १३००, अणुवयरण।
(१३) अभयतिलक गणि, वि०सं० १३०७, महावीर रास।
(१४) लक्ष्मीतिलक उपाध्याय, वि०सं० १३११, (१) बुद्ध चरित्र, (२) श्रावकधर्म-प्रकरण वृहतवृति।
(१५) आणंद सूरि एवं प्रेम सूरि, वि०स० १३२३, द्वादश भाषा (ढ़ाल) निबद्ध तीर्थमाला रास।
(१६) रत्नप्रभ सूरि, वि०सं० १३२४, पद।
(१७) तिलोचन, वि सं० १३२४ रचनाएं अप्राप्य।
(१८) कवि सोममूर्ति, वि०सं० १३३१, जिनेश्वर सूरि दीक्षा विवाह वर्णन रास।
(१९) सोममूर्ति (?), वि०सं० १३३२, जिनप्रबोध सूरि चर्चरी।
(२०) मुनि राजतिलक, वि०सं० १३३२, शालिभद्र रास।
(२१) हेमभूषण मणि, वि०सं० १३४१, जिनचन्द्र सूरि चर्चरी।
(२२) जज्जल, वि०स० १३५०, हम्मीर की प्रशंसा में काव्य।
(२३) अज्ञात, वि०सं० १३५६, शलिभद्र कक्का।
(२४) मेरुतुङ्गाचार्य, वि०सं० १३६१, प्रबन्धचिन्तामणि संग्रह।
(२५) श्रावक कवि वस्तिम, वि०सं० १३६२, वीस विरह मान रास।
(२६) राजशेखर सूरि, वि०सं० १३७०, नेमिनाथ फागु।
(२७) गुणाकार सूरि, वि०स० १३७१, श्रावकविधि रास।
(२८) अम्बदेव सूरि, वि०सं० १३७१, समरा रास
(२९) मुनिधर्मकलश १३७७, जिनकुशलसूरि पट्ट।
(३०) छल्हु, (१) क्षेत्रपाल, (२) द्विपदिका।

(३१) सारमूर्ति, पद्मसूरिपट्टाभिषेक रास ।

(३२) जिनपद्म सूरि, स्थूलिभद्र रास ।

(३३) पउम, शालिभद्र काव्य ।

(३४) सोलणु, चर्चरिका ।

(३५) जिनप्रभ सूरि, वि०सं० १३८५, पद्मावती चौपाई ।

(३६) राजेश्वर सूरि, वि०सं० १४०५, (१) प्रबन्ध कोश, (२) नेमिनाथ फागु ।

(३७) हलराज, वि०सं० १४०६, स्थूलिभद्र फागु ।

(३८) मुनि शालिभद्र सूरि, वि०सं० १४१०, पांच पांडव रास ।

(३९) मुनि विनयप्रभ सूरि, वि०सं० १४१२, गौतमस्वामी रास ।

(४०) हरसेवक, वि०सं० १४१३, मयणरेहा रास ।

(४१) जैनमुनि ज्ञानकलश, वि०सं० १४१५, जिनोदय सूरि पट्टाभिषेक रास ।

(४२) प्रसन्नचन्द सूरि वि०सं० १४२२, पार्श्वनाथ फागु ।

(४३) कष्ठावर्पी जयसिंह सूरि, वि०सं० १४२२, (१) प्रथम नेमिनाथ फागु । (२) द्वितीय नेमिनाथ फागु ।

(४४) श्रावक विद्धणु, वि०सं० १४२३, ज्ञानपंचमी चौपाई ।

(४५) असाइत, वि०सं० १४२७, हंसाउलि ।

(४६) समुधर, वि०सं० १४३० नेमिनाथ फागु ।

(४७) मेरुनन्दणगणि वि०सं० १४३२, जिनोदय सूरि गच्छनायक विवाहलु ।

(४८) देवप्रभ गणि, कुमारपाल रास ।

(४९) कवि चंपा, वि०सं० १४४५, देवसुन्दर रास ।

(५०) साधु हंस, वि०सं० १४४५, शालिभद्र रास ।

(५१) जाखो मणिहार, वि०सं० १४५३, हरिचन्द पुराण ।

(५२) चरकानन्द, चरपट ।

(५३) जयशेखर सूरि, वि०सं० १४६२, (१) त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध, (२) नेमिनाथ फागु (३) अर्बुदाचल वीनती ।

(५४) अज्ञात, वि०सं० १४६२, प्रबोधचिन्तामणी ।

(५५) भीम, वि०सं १४६६, सदयवत्सचरित ।

(५६) धन्ना भगत, वि०सं० १४७२, पद ।

(५७) हीरा चन्द सूरि, वि०सं० १४८५, वस्तुपाल-तेजपाल रास ।

(५८) महाराणा कुंभा, वि०सं० १४९०, फुटकर रचनाएं ।

(५९) अज्ञात, वि०सं० १४६६ पांच पांडव फागु।

(६०) अज्ञात, भरतेश्वर चक्रवर्ती फाग।

(६१) समर, वि०सं० १४६३, नेमिनाथ फागु।

(६२) पद्म, वि०सं० १४६३, नेमिनाथ फागु।

(६३) चारण चौहत, वि०सं० १४६५, गीत।

(६४) अज्ञात, वि०सं० १४६६, राणापुरमण्डल चतुर्मुख, आदिनाथ फागु।

(६५) चानण खिड़ियो, वि०सं० १४६५ फुटकर रचनाएं तथा नाटक।

(६६) गुणवंत, वसंतविलास।

(६७) मांडण वि०सं० १४६८, सिद्धचक्र श्रीपाल रास।

(६८) मेहा कवि वि०सं० १४९९, (१) रणकपुरस्तवन। (२) तीर्थमाला स्तवन।

(६९) सोमसुन्दर सूरि, वि०सं० १४९९, नेमिनाथ नवरस फाग।

(७०) बारहठ दूदो, स्फुट छन्द।

(७१) धरमो कवियो, स्फुट छन्द।

(७२) खिड़ियो लूणकरण, स्फुट छन्द।

(७३) पसाइत, (१) राव रिणमल रो रूपक, (२) गुण जोधायण।

(७४) देववर्धन सं० १५००, नल दमयन्ती आख्यान।

(७५) अज्ञात, वि०सं० १५००, सामुद्रिक स्त्री-पुरुष शुभाशुभ।

(७६) जयसागर, जिनकुशल सूरि संप्रतिका।

(७७) अज्ञात, वि०सं० १५००, वसन्त विलास।

(७८) देपाल, जंबूस्वामी रास।

(७९) महर्षि वर्धन सूरि, १५१२, नलदमयन्ती रास।

(८०) दामो, वि०सं० १५१६, लक्ष्मणसेन-पद्मावती चउपई।

(८१) कवि भांडउ, वि०सं० १५३८, राय हमीर देव चोपाई।

(८२) हंस कवि, वि०सं० १५४०, चन्दकंवर री वार्ता।

(८३) सालभद्र, वि०सं० १५५० मुनिपति चरित।

(८४) धर्मसमुद्र गणि, (१) सुमित्रकुमार रास, (२) कुलध्वज कुमार रास, (भोजन रास, (४) शकुन्तला रास।

(८५) तत्ववेत्ता वि०सं० १५५०, कवित्त।

(८६) सिद्धसेन, वि०सं० १५५६, विक्रम पंचदण्ड चउपई।

(८७) चतुर्भुज, वि०सं० १५५६, भ्रमर गीता।

(८८) कील्ह, वि०सं० १५५६-८४, पद।

(८९) आसानन्द, वि०सं० १५६३-१६६०, (१) लक्ष्मणायण, (२) निरंजन पुराण, (३) गोगाजी री पेडी, (४) बाघा रा दूहा, (५) उमादे भटियाणी कवित्त, (६) फुटकर छन्द।

(९०) सौदा बारहठ जमनाजी, वि०सं० १५६६-८४, स्फुट रचनाएं।

(९१) हरिदास, वि०सं० १५६६, स्फुट रचनाएं।

(९२) केसरिया चारण, वि०सं० १५८४, स्फुट रचनाएं।

(९३) गणपति, वि०सं० १५७४, माधवानल कामकन्दला प्रबन्ध।

(९४) छीहल, सं० १५७५, पंचसहेली रा दूहा।

(९५) गोरा, (१) रावलूणकरणरा कवित्त, (२) रावजैतसी रा कवित्त।

६ – भक्तिकाल

क. सामान्य परिचय

६६:२। महाराणा सांगा की खानवा-युद्ध (सं० १५८४, सन् १५२७) में बाबर से पराजय और विशाल राजपूत-वाहिनी के विनाश तथा दूसरे ही वर्ष सांगा की मृत्यु से जनता की समस्त आशाओं पर तुषारापात हो गया। खानवा-युद्ध के परिणाम-स्वरूप भारतवर्ष में मुस्लिम शासन की जड़ें जम गई। खानवा-युद्ध के पश्चात् बाबर ने दिल्ली को अपनी राजधानी बना कर भारतवर्ष में मुगल साम्राज्य की नींव रखी। जनता में चारों ओर घोर निराशा का वातावरण छा गया और जन-भावनाएं जीवन संघर्ष से पलायन की ओर उन्मुख हुई। जनता ईश्वर को ही अपना एक मात्र त्राता समझती हुई भक्ति-भावना में डूब गई। अन्य मुस्लिम आक्रान्ताओं की भांति बाबर लूट-मार कर भारत से विदा नहीं हुआ, वरन् उसने स्वयं भारतीय शासन की बागडोर भारत में ही रहते हुए सम्हालने का दृढ़ निश्चय व्यक्त किया। इससे भारतीय जनता का अस्तित्व ही आपत्ति-ग्रस्त हो गया। हिन्दू जनता और हिन्दू राजा न तो बाबर जैसे मुस्लिम शासक का सफलतापूर्वक विरोध कर सकते थे और न अपने धर्म को ही सरलता-पूर्वक छोड़ सकते थे इसलिये परिस्थिति विषम हो गई। जनता में भय का संचार हुआ और भक्ति का प्रबल रूप में प्रादुर्भाव हुआ। दक्षिण-भारत में प्रारम्भ हुए भक्ति-आन्दोलन का प्रभाव उत्तरी भारत एवं राजस्थान में अधिकाधिक होता गया। रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, विष्णु स्वामी और निम्बाकाचार्य के भक्ति-पीठ अनेक केन्द्रों में स्थापित हुए और जनता के समक्ष भक्ति का आदर्श प्रस्तुत किया गया।

राजस्थान के राजपूत राजाओं ने वैष्णव धर्माचार्यों को विभिन्न धार्मिक प्रवृत्तियों को विशेष प्रोत्साहन प्रदान किया और अपनी-अपनी राजधानियों में उनकी गद्दीयां स्थापित की। परिणामस्वरूप जनता के समक्ष अवतार-रूप में परब्रह्म परमेश्वर का लोक-रक्षक और लोक-रंजक रूप आया तथा आशा का संचार हुआ।

९७:२। भक्ति आन्दोलन का प्रादुर्भाव मूलतः दक्षिण में वैष्णव धर्म के प्रभाव से हुआ -- "यह भक्ति-भावना उत्तरी भारत में पल्लवित होने के पूर्व दक्षिण में अपना निर्माण कर चुकी थी। यह भावना वैष्णव धर्म से उद्भूत हुई थी, जिसका सम्बन्ध भागवत या पंचरात्र धर्म से है। वैष्णव धर्म का आदि रूप हमें विष्णु के देवत्व में और देवत्व की प्रधानता में मिलता है।"[1] "विष्णु" शब्द की व्युत्पत्ति "विश" धातु से हुई है जिसका अर्थ "व्याप्त होना" है। विष्णु का सर्व प्रथम उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है —

अतो देवा अवंतु नो यतो विष्णु विचक्रमे पृथिव्याः सप्तधामभिः ॥ १६ ॥
इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदं समूलहमस्य पांसुरे ॥ १७ ॥
त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः अतो धर्माणि धारयन् ॥१८[2] ॥

९८:२। विष्णु की गणना ऋग्वेद में प्रधान देवताओं में नहीं की गई और वे सौर शक्ति के रूप में ही माने गये। किन्तु कालान्तर में विष्णु क्रमशः देवों में प्रधान एवं सर्व शक्तिमय विष्णुः हो गये। विष्णुपुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण और भागवत पुराण में उनको देवों में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त हो गया। विष्णु परब्रह्म, परमेश्वर, सच्चिदानन्द स्वरूप हो गये और राम तथा कृष्ण भी विष्णु के ही अवतार माने गये।

९९:२। भगवान् विष्णु के अवतार राम और कृष्ण के पावन चरित्रों के प्रकाश में मुस्लिम साम्राज्य रूपी घोर अन्धकार-युग में भी भारतीय जनता अपना श्रेय मार्ग ग्रहण कर सकी। राम और कृष्ण की लोकरक्षक और लोकानुरंजन-कारिणी लीलाओं से प्रभावित हो कर जनता ने सुख की सांस ली। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र में भारतीय जनता ने रावण और अन्य अत्याचारी दानवों का विनाश देखा। राम ने अपने पराक्रम से ऋषि-मुनियों की यज्ञादि प्रवृत्तियों को पुनः निर्विघ्नता पूर्वक सम्पादित करने की व्यवस्था कर जनता को निर्भय बना दिया था और अत्याचारी दानव रावण द्वारा हरी गई भारत-लक्ष्मी रूपी सीता को लाकर पुनः आर्यावर्त में प्रतिष्ठित किया था। इसी प्रकार श्री कृष्ण ने शकटासुर, वत्सासुर, कंसासुर, प्रलम्बासुर, शंखासुर भौमासुर, जरासंध और शिशुपाल आदि का

---

१ – डा० रामकुमार वर्मा, हि० सा० आ० इ०, पृ० २०२।

२ – ऋग्वेद संहिता-सायणाचार्य, प्रथमस्य द्वितीयं सप्तमो वर्ग, — डा० मेक्समू

वध कर पुनः धार्मिक व्यवस्था की थी। साथ ही श्रीकृष्ण ने रासलीलादि लोकरंजक प्रवृत्तियों द्वारा जनता में नवीन आशा, विश्वास और सुखों का संचार किया। राम और कृष्ण के चरित्र से प्रभावित हो कर भारतीय धर्मप्राण जनता ने घोर निराशा के वातावरण में भी सुख को सर्वदा समीप देखा।

१००:२। रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य वल्लभाचार्य और निम्वार्काचार्य प्रभृति धर्म-गुरुओं ने अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन संस्कृत ग्रन्थो में ही किया किन्तु इनके शिष्य-प्रशिष्य कवियों ने जनता तक सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से जन-भाषाओं का उपयोग किया। कवियों ने आचार्य-सिद्धान्तानुसार सर्वथा सरल और सरस भाषा का अपनी रचनाओं में प्रयोग कर अपना सन्देश सर्वत्र पहुँचा दिया।

१०१:२। इसी काल में अनेक सन्त ऐसे भी हुए जिन्होंने हिन्दु-मुस्लिम एकता का प्रतिपादन किया। हिन्दु-मुसलमानों को सम्पर्क में रहते हुए अनेक वर्ष व्यतीत हो गये थे और दोनों ही वर्ग एक दूसरे की विशेषताओं से परिचित हो चुके थे। ऐसी अवस्था में हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों का समन्वय अवश्यम्भावी था। ऐसे सन्त कवियों ने निर्गुण और ाकार ब्रह्म की उपासना का समर्थन किया तथा मूर्तिपूजा, व्रत, रोजा, नमाज आदि का रोध किया। सन्त कवियों पर रामानन्दाचार्य की विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट क्षत होता है, जिन्होने जातिवाद के बन्धनों को शिथिल कर तथाकथित निम्न वर्गों के लिए भी भक्ति का मार्ग खोल दिया। निर्गुणी सन्तों के सूफी सम्प्रदाय का प्रचार राजस्थान में अत्यल्प हुआ किन्तु ज्ञानमार्गी सम्प्रदायों का तो राजस्थान विशेष केन्द्र ही बन गया। दादू, रज्जब, रामस्नेही, जसनाथी आदि कतिपय सम्प्रदायों की जन्मभूमि होने का श्रेय भी राजस्थान को प्राप्त हुआ।

१०२:२। इस काल में राजस्थान विभिन्न जैन सम्प्रदायों का भी केन्द्र बन गया। राजपूत राजाओं के दीवान और प्रबन्धक बहुधा जैनमतावलम्वी होते थे, जिन्होंने राजस्थान में अनेक जैन मन्दिरों और उपाश्रयों का निर्माण कराया। राजस्थान में अनेक जैन साधुओं, साध्वियों और यतियों आदि ने अपने धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार प्रचुर मात्रा में विविध विषयक साहित्यिक रचनाएं प्रस्तुत की।

१०३:२। राजस्थानी साहित्य के वीरगाथा-काल में अहिंसा व्रतानुरागी अनेक जैन कवियों ने भी जन-भावनानुसार तत्कालीन अन्य कवियों के अनुकरण में वीररसात्मक रचनाएं प्रस्तुत की थीं किन्तु इस भक्तिकाल में ईसरदास जी, सांयांजी झूला और माधोदास जी जैसे चारण कवियों ने भी भक्तिपरक काव्य लिखे। इन कवियों ने महापुरुषों को देव-तुल्य मानते हुए उनकी वीरता का वर्णन भी भक्ति के अन्तर्गत किया।

ख. भक्तिकाल के प्रधान कवि

(१) मीरांबाई

१०४:२। राजस्थानी साहित्य में भक्तिकाल का प्रारम्भ मेवाड़-कोकिला सुप्रसिद्ध भक्त कवियित्री मीरांबाई की सरस भक्तिपरक रचनाओं से होता है। राठोड़ राज-कुल में उत्पन्न और मेवाड़ के सीसोदिया राजकुल में विवाहिता मीरां ने वास्तव में जन-भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते हुए अपने गेय पदों में भक्ति-मन्दाकिनी प्रवाहित की है।

१०५:२। मीरां के पद भारतीय जनता में इतने अधिक लोकप्रिय हुए कि राजस्थानी के अतिरिक्त गुजराती, ब्रज, पंजाबी आदि भाषाओं मे भी मीरां के नाम पर अनेक पद बन गये। आज मीरां के मूल और क्षेपक पदों को अलग करना तथा मूल पदों के आधार पर मीरां का जीवन-चरित्र निरूपित करना एक समस्या है। मीरां के जीवन सम्बन्धी तथ्यों के अभाव में जेम्स टॉड जैसे इतिहासकार भी भ्रान्ति में पड़ गये और उन्होंने मीरां को मेवाड़ के महाराणा कुम्भा की रानी लिख दिया।[1] यही भ्रान्त मत टॉड का अनुसरण करते हुए ग्रियर्सन[2] और शिवसिंह[3] जैसे विद्वानो ने व्यक्त किया है। यह भ्रान्ति सम्भवतः ऐसे पदों से हुई है जिनमें कुम्भाजी का नाम है और जिनको मीरां-रचित कहा जाता है —

राणा कुम्भाजी ओ जी, जीव रा संघाती जग में नांय मिले जी।
राणा कुम्भाजी ओ जी, एक तो मायड़ रे दोय डीकरा जी।
एक तो बैठो राज करे, दूजो भारो बेचण जाय ।। राणा कुम्भा जी०
राणा कुम्भाजी ओ जी, एक तो गायड़ रे दोय डीकरा जी।
एक तो शिवजी रे नांदियो, दूजो कसायां रे जाय ।। राणा कुम्भा जी०
राणा कुम्भाजी ओ जी, एक तो वेलड़ रे दोय तूमड़ा जी।
एक तो राणाजी खप्पर भरे जी, दूजो जमनाजी में जाय ।। राणा०
राणा कुम्भाजी ओ जी, एक तो कुम्भार हांडा दो घड़िया जी,
ज्यांरा न्यारा-न्यारा लेख, ज्यांरा न्यारा-न्यारा लेख,
एक तो महादेव जी रे जलेरी चढ़े, दूजो जूठण री कुण्डी ।। राणा०
मीरां जीव रा संघाती जुग में नायं मिले जी ।।[4]

---

१ – दी एनल्स एण्ड एंटिक्विटीज आफ राजस्थान, कुक्स संस्करण, लन्दन, पृ० २८९।

२ – दी माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान, पृ० १२।

३ – शिवसिंह सरोज, पृ० १०२।

४ – लेखक के निजी संग्रह का पद।

१०६:२। मीरांबाई को महाराणा कुम्भा की रानी लिखना वास्तव में इतिहास और अनुमान दोनों के विपरीत है। महाराणा कुम्भा के ६० शिला-लेख प्राप्त हुए हैं[1] किन्तु किसी में भी मीरां का नाम नहीं है। कुम्भा की अनेक राणियां थी। इनमें से रानी कुम्भलदेवी का नाम चित्तौड़ के कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति (सं० १५१७) में[2] और अपूर्व देवी का नाम गीत-गोविन्द की महाराणा कुम्भा कृत "रसिक प्रिया टीका" में[3] प्राप्त होता है। राणा कुम्भा की राणियों के नाम ख्यातों में भी दिये हुए हैं किन्तु इनमें कहीं मीरां का नाम नहीं है। मीरां का वर्णन नाभादास कृत भक्त-माल में भी उपलब्ध होता है किन्तु इसमें महाराणा कुम्भा का कोई उल्लेख नहीं है —

लोक लाज कुल शृंखला तजि मीरां गिरधर भजी ॥
सदृश गोपिका-प्रेम प्रकट कलियुगहिं दिखायो।
निर अंकुश अति निडर रसिक जसरसना गायो ॥
दुष्टनि दोष विचारि मृत्यु को उद्यम कीयो।
वार न वांको भयो, गरल अमृत ज्यों पीयो ॥
भक्ति निशान बजायकें, काहू ते नाहिन लजी।
लोक लाज कुल शृंखला, तजि मीरां गिरधर भजी ॥[4]

१०७:२। यदि मीरांबाई महाराणा कुम्भा जैसे प्रसिद्ध महाराणा की रानी होती तो रचनाओं में अवश्य ही उसका उल्लेख किया जाता। कुम्भा का देहान्त वास्तव में मीरां के जन्म से ३० वर्ष पूर्व सं० १५२५ में हो चुका था।[5]

१०८:२। मीरांबाई का जन्म वि०सं० १५५५ के लगभग मेड़ता के कुड़की नामक गांव में माना जाता है।[6] यह राव दूदाजी राठौड़ के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह की एक मात्र संतान थी। मीरां का विवाह महाराणा सांगा (सं १५६६-८४) के पाटवी कुंवर भोजराज के साथ सं० १५७३ में सम्पन्न हुआ किन्तु भोज का देहान्त थोड़े समय पश्चात् ही हो गया। खानवा युद्ध (सं० १५८४) में मीरां के पिता रत्नसिंह वीरगति को प्राप्त हुए और फिर राणा सांगा को भी विष दे दिया गया, जिससे मीरां का ध्यान पूर्णरूपेण श्रीकृष्ण-भक्ति में

---

१ – ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास पृ० ३१८।
२ – यस्यानकंकुतूहलक पदवी कुम्भल्लदेवी प्रिया। श्लोक सं० १८१।
३ – महाराज्ञी श्री अपूर्वदेवी हृदयाधिनाथेन महाराजाधिराज महाराज श्री कुम्भकर्ण महीमहेन्द्रेण। निर्णयसागर प्रेस, बम्बई का संस्करण, पृ० १७४।
४ – भक्तमाल, सटीक पृ० ६६४।
५ – ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ३२२।
६ – क – हरविलास सारदा, महाराणा सांगा, पृ० ६६।
ख – ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ३५६।

कितने और किस रूप में हैं ? पदावली के अतिरिक्त मीरां की अन्य रचनाएं भी सन्देहास्पद हैं और सामान्य कोटि की हैं।

११२:२। सरल, सरस भाषा में हार्दिक प्रेमाभिव्यक्ति ही मीरां-पदावली का प्रमुख आकर्षण है। मीरां की कला, कला के आडम्बर से सर्वथा शून्य है इसलिये रसिकों एवं भक्तों में विशेष प्रिय है। मीरां-पदावली में माधुर्यभाव से पूर्ण मीरां की भक्ति का उद्गार प्राप्त होता है।

(२) दुरसाजी आढ़ा

११३:२। चारण कवि दुरसाजी आढ़ा का जन्म वि० सं० १५९२ में जोधपुर के घूंधला नामक गांव में हुआ। इनके पिता का देहान्त इनके बचपन में ही हो गया था अतः इनका पालन-पोषण बगड़ी के ठाकुर प्रतापसिंहजी ने किया। श्री सीताराम लालस ने लिखा है कि निर्धनता के कारण इनके पिता ने सन्यास ग्रहण कर लिया था।[1] बगड़ी के ठाकुर के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए दुरसाजी ने लिखा —

माथे मावीतांह, जनम तणे वयावर जितो।
सोहड़ सुथ पातांह, पालणहार प्रतापसी॥

११४:२। एक निर्धन परिवार में जन्म लेते हुए भी दुरसाजी को अपनी काव्यात्मक प्रतिभा के कारण आगे चल कर अनेक राजदरबारों में पर्याप्त सम्मान और पुरस्कार प्राप्त हुआ। बीकानेर के राजा रायसिंहजी ने जोधपुर पर अधिकार करने पर चार गांव, एक हाथी और एक करोड़ रुपयों का पुरस्कार प्रदान किया।[2] सिरोही के राव सुरताण ने भी इस महाकवि को एक करोड़ का "पसाव" दे कर सम्मानित किया।[3]

११५:२। कहते हैं कि मुगल सम्राट अकबर के दरबार में भी दुरसाजी को ... सम्मान मिला और अकबर ने इनको एक करोड़ 'पसाव' प्रदान कि[illegible] ...र और ... के विषय में अनेक उपाख्यान प्रचलित हैं। यथा —

अकबर के दरबार में लक्खाजी नामक एक चारण कवि थे। लक्खाजी के सहयोग दुरसाजी भी दरबार में पहुँचे। तब लक्खाजी की प्रशंसा में दुरसाजी ने यह दूहा बनाया –

दिल्ली - दरगह अंब - तरु, ऊंचो फळद अपार।
चारण लक्खो चारणां, डाळ नमावणहार॥

एक समय की घटना है कि अकबर का अभिभावक वैरामखां कार्यवश अजमेर आया आ था और दुरसाजी भी पुष्कर - स्नान के लिये वहां पहुँचे हुए थे। दुरसाजी वैरामखां के रे पर उससे मिलने गये किन्तु वैरामखां के आदमियों ने नहीं मिलने दिया। तब वैरामखां बाहर भ्रमण के लिये जाने पर दुरसाजी ने उसको यह दूहा सुनाया –

आफताब अंधेर पर, अगनी पर ज्युं नीर।
दुरसा कवि का दुक्ख पर, है बहराम वजीर॥

वैरामखां ने दुरसाजी को निकट बुला कर बातचीत की। दुरसाजी ने वैरामखां को ये हे सुनाये –

तू बन्दा अल्लाह का, मैं बन्दा तेराह।
तेरा है मालिक खुदा, तु मालिक मेराह॥
पीर पराई मेटणां, एह पीर का काम।
मेरो पीड़ा मेट दे, बड़ा पीर बहराम॥
विभीषण कूं भेंटियो, लंका में एक राम।
आण मिल्या अजमेर में, दुरसा कूं बेराम॥

वैरामखां ने दुरसाजी की कष्ट - गाथा सुन कर दुरसाजी को दिल्ली बुलाया और कबर से मिला कर दुख दूर किया।

११६:२। पं० मोतीलालजी मेनारिया ने इस प्रकार की कथाओं को मुख्यतः इस धार पर कपोल-कल्पित बताया है कि दुरसाजी का नाम मुसलमान तवारीखों तथा जस्थान की प्राचीन ख्यातों में नहीं मिलता। इन्होंने लिखा है कि दुरसाजी के यश तथा पनी जाति के महत्व को बढ़ा कर बतलाने के लिये चारण लोगों ने इनको गढ़ लिया है।[1]

११७:२। वास्तव में ऐसी घटनाओं को निरी कपोल-कल्पित और गढ़ी हुई नहीं ताया जा सकता। दुरसाजी प्रारम्भ में जोधपुर के सरदारों और राजा के साथ थे जिन्होंने कबर की अधीनता ही नहीं स्वीकार की वरन् अकबर से विवाह-सम्बन्ध भी स्थापित कर लेये थे। ऐसी अवस्था में दुरसाजी का अकबर के सम्पर्क में आना और अकबर का दुरसाजी की काव्य-चातुरी से प्रसन्न होना असंभव नहीं ज्ञात होता। इन कथाओं में थोड़ा-बहुत सार

१ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १३८।

अवश्य है। दुरसाजी ने अपनी विरुद-छिहतरी नामक कृति में महाराणा प्रताप को मार्द- का रक्षक ही नहीं ईश्वर का अवतार भी बताया और अकबर के लिये 'अधम' एवं 'लाम' जैसे विशेषण प्रयुक्त किये। दुरसाजी जैसे स्वाभिमानी कवि के लिये ऐसा करना सर्व स्वाभाविक ही था और उस युग में ऐसा सम्भव भी था। महाराज पृथ्वीराज राठौड़ ने अकबरी दरबार में रहते हुए महाराणा प्रताप की प्रशंसा में अपनी काव्यात्मक रचन प्रस्तुत की। दुरसाजी के विषय में उक्त कथन के प्रमाण में पृथ्वीराज का उदाह पर्याप्त है।

११८:२। दुरसाजी कवि होने के साथ ही कुशल योद्धा भी थे। सं० १६४० सीसोदिया जगमाल की सहायता के लिये सिरोही के राव सुरताण के विरुद्ध अकबर द्व भेजी हुई सेना में दुरसाजी भी जोधपुर के रायसिंह चन्द्रसेनोत के साथ थे। दुरसाजी युद्ध में घायल हुए। युद्ध के अन्त में सिरोही के राव सुरताण और उनके साथी घायलो निरीक्षण के लिये रणक्षेत्र में पहुँचे तो दुरसाजी को घावों से लथपथ देखा। राव सुरत ने इनके बचने की संभावना नहीं जान कर इनको दूध देना (मारना) चाहा, तब दुरसा ने कहा मैं राजपूत नहीं, चारण हूं। तब सुरताण ने कहा "यदि वास्तव में चारण हो अभी युद्ध में मारे गये देवड़ा समरा की प्रशंसा में कविता कहो" दुरसाजी ने तब दूहा सुनाया —

धर रावां जस डूंगरां, व्रद पोता सत्र हाण।
समरे मरण सुधारियो, चहुं थोकां चहुवाण।

युद्ध में घायल हुए चारणों की सभी प्रकार से रक्षा की जाती थी, इसलिये सुरताण ने पालकी में ले जा कर दुरसाजी का उपचार करवाया और अपना "पोलपा बना कर इन्हें दो गांव "पेशुवो" और "साल" भेंट कर "क्रोड़ पसाव" भी प्रदान किा दुरसाजी का देहान्त ११७ वर्ष की अवस्था में वि०सं० १७१२ में माना जाता है।[1]

११६:२। दुरसाजी की रचनाएं निम्नलिखित हैं –

१ विरुद छिहत्तरी, २. किरतार बावनी, ३. श्रीकुमार अजाजीनी भ् मोरी नी गजगत, ४. राउ श्री सुरताण रा कवित, ५. झूलणा रावत मेघा ६. दूहा सोलंकी वीरमदेव रा, ७. गीत राजि श्री रोहितास जी रो, ८. झूल राव श्री अमरसिंघजी रा, और ६. स्फुट छन्द।

१२०:२। दुरसाजी अपने समय के एक राष्ट्रीय कवि थे क्योंकि इन्होंने रा महाराणा प्रताप को देवोपम मान कर उनकी भक्तिपूर्ण प्रशंसा करते हुए भारतीय सं तथा मान - मर्यादा की रक्षा हेतु अपनी वाणी को मुखरित किया था। दुरसाजी ने

१ – रा० भा० सा०, हि० सा० रू०, पृ० १३६।

समय के अन्य व्यक्तियों में भी गुण देखे तो उनका बिना संकोच अपनी रचनाओं में चित्रण किया। आबू पर्वत पर अचलेश्वर के मन्दिर में इनकी एक सर्वधातु की मूर्ति भी प्रतिष्ठित है जिससे इनकी देवोपम प्रतिष्ठा ज्ञात होती है।

(३) भक्त कवि ईसरदास

१२१:२। भक्त कवि ईसरदास का जन्म चारणों की बारहठ शाखा में हुआ। पिंगलसी भाई पाता भाई के मतानुसार ईसरदास जी का जन्म विक्रम संवत् १५१५ है। इन्होंने अपने मत के समर्थन में यह दोहा उद्धृत किया है –

संवत् पनर पनडोतरे, जनम्यां ईसरदास।
चारण वरण चकार मां, ईण दिन हुओ उजास॥[1]

उक्त मत के विपरीत किशोरसिंह बार्हस्पत्य ने ईसरदासजी के जन्म के सम्बन्ध में यह दोहा उद्धृत किया है –

पनरासो पिच्चाणवे, जनम्यां ईसरदास।
चारण वरण चकार में, उण दिन हुवो उजास॥[2]

उक्त मतों में से प्रथम मत का समर्थन मानदान जी बारहठ ने यह दोहा देते हुए किया है –

सर भुव सर शशी बीज, भृगु श्रावण सित पखवार।
समय प्रात सुरा धरे, ईसर भो अवतार॥ [3]

वास्तव में ईसरदास जी का जन्म सम्वत् इनकी मूल जन्म पत्रिका के आधार पर सम्वत् १५९५ ही सिद्ध होता है और जन्म सम्बन्धी दोहे का मूल रूप भी इस प्रकार प्राप्त होता है –

पनरासो पिच्चाणवे, जनम्यो ईसरदास।
चारण वरण चकार में, उण दिन हुवो उजास॥ [4]

१२२:२। ईसरदास जी के पिता का नाम सूजाजी और माता का नाम अमरबाई था। इनके काव्य-गुरु भक्त कवि आशानन्द थे। एक बार ईसरदास जी द्वारिका-यात्रा के

१ – ईसर बारोठ कृत हरिरस ग्रन्थ, द्वितीय संस्करण, सं० १९८०।
२ – हरिरस, राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता।
३ – श्री हरिरस, प्रथम संस्करण, जामनगर सं० १९९४।
४ – हरिरस, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता।

प्रसंग में जामनगर में ठहरे। जामनगर के रावल ने इनका अच्छा सत्कार किया और द्वारिका से लौटते समय ईसरदास जी को जामनगर में ही रोक लिया। जामनगर के रावल ने ईसरदास जी को "करोड़ पसाव" दिया। इनकी पहली पत्नी का देहान्त हो चुका था इसलिये रावल जी ने आग्रह कर इनका दूसरा विवाह जामनगर में ही किया। जामनगर रावल की सभा में पीताम्बर भट्ट नामक संस्कृत के पंडित थे, जिनसे इन्होंने भागवत् का अध्ययन किया –

लागूं हूं पहली लुले, पीताम्बर गुरु पाय।
भेद महारस भागवत्, प्रामू जास पसाय॥[1]

ईसरदास जी वृद्धावस्था में अपने जन्म-स्थान के निकट लूनी नदी के किनारे एक कुटिया में रहने लगे, जहां संवत् १६२२ के लगभग इनका देहान्त हो गया —

सम्वत् सोल बावीस बुध, शुदि नौमी मधुमास।
ईशाणंद कवि उद्धरे, विश्व करो विश्वास॥

कवि मावदान जी भीमजी भाई रतनु ने भी इसी मत का समर्थन किया है।[2] इसके विपरीत कतिपय इतिहासकारों ने इनका मृत्युकाल संवत् १६७५ लिखा है।[3]

१२३:२। ईसरदास जी रचित ग्रन्थ इस प्रकार हैं —

१. हरिरस. २. छोटो हरिरस, ३. बाल लीला, ४. गुण-भागवंत हंस, ५. गुरुड़ पुराण, ६. गुण आगम, ७. गुण निन्दा स्तुति, ८. देवियांण, ९. गुण वैराट १०. साखियां, ११. हालां झालां रा कुंडलिया, १२. रास कैलास, १३. दाण लीला, १४. गुण सभा पर्व, १५. गीत छन्द, १६ सामला रा दूहा, १७. भजन (पद और वाणियां)।

१२४:२। ईसरदास जी राजस्थान और गुजरात में "ईसरा सो परमेसरा" के नाम से प्रसिद्ध हैं और इनकी कृति हरिरस का एक धार्मिक ग्रन्थ के रूप में नित्य पाठ का प्रचलन है जिससे इनकी महत्ता प्रकट होती है। ईसरदास जी की रचनाओं में "हरिरस" और "हाला झालां रा कुंडलिया" श्रेष्ठ मानी गई हैं। हरिरस में ईश्वर के सगुण रूप के साथ ही निर्गुण रूप का समर्थन भी किया गया है।

१२५:२। हालां झालां रा कुंडलिया राजस्थानी भाषा का वीररस पूर्ण श्रेष्ठ ग्रन्थ है। इसमें हाला और झाला क्षत्रियों के बीच होने वाले युद्ध का सरस वर्णन है।

---

१ – वही, दोहा सं० १।
२ – यदुवंस प्रकाश अने जामनगर नो इतिहास, प्रथम संस्करण, सं० १९९१।
३ – रा० मा० सा, हि० सा० स०, पृ० ११६।

इनकी रचनाओं के उदाहरण इस प्रकार हैं —

जनम-पीड़ जगदीश, ईस अवतार म आंणे ।
छल बल करि छोडवण, जनम आपण कर जांणे ।
भणे नाम हूं भणिस जोति जगतो जगदीसै ।
कृपा साधना करण, तवन कोड तेतीसै ।
द्रगदेव दिनंकर ससि हुवै, त्रिगुण नाथ तारण–तरण ।
" ईसरो " कहे असरण-सरण किसु तूझ कारण करण । — हरिरस

ऊठि अचूंका बोलणा नारि पयंपै नाह ।
घोड़ा पाखर धमधमी, सींधू राग हुवाह ।।
हुवौ अति सीधंवो राग बागो हकां ।
थाट आया पिसण घाट लागै थकां ।।
अखाड़ा जीति खग अरि घडा खोलणा ।
ऊठि हरधवल सुन अचूंका बोलणा ।। — हालां झालां रा कुंडळिया ।

(४) महाराजा पृथ्वीराज राठौड़

१२६:२। पृथ्वीराज का जन्म बीकानेर राज-परिवार में विक्रमी संवत १६०६ में माना जाता है । पृथ्वीराज बीकानेर नरेश राव कल्याणमल के द्वितीय पुत्र थे । इनका अकबर के दरबार में सेनापति और मनसबदार के रूप में उच्च स्थान था । अकबर के दरबार में रहते हुए भी इन्होंने भारतीय स्वाधीनता संग्राम के परम प्रेरक महाराणा प्रताप की प्रशंसा में अनेक गीत और दूहे लिखे । साहित्य-जगत में पृथ्वीराज 'पीथल' के नाम से प्रसिद्ध हैं । महाराणा प्रताप को लिखा गया पृथ्वीराज का पत्र साहित्य-जगत में प्रसिद्ध है और कहा जाता है कि इस पत्र के द्वारा ही महाराणा प्रताप को अकबर से संघर्ष करते रहने की प्रेरणा मिली । इतिहासकारों ने अवश्य ही पृथ्वीराज के इस पत्र को अप्रामाणिक माना है ।[1] पृथ्वीराज का पत्र महाराणा के उतर सहित इस प्रकार है --

पातळ जो पतसाह, बोलै मुख हूंता वयण ।
मिहर पिछम दिस मांह, ऊगै कासपराव–उत ।। १ ।।
पटकूं मूछां पाण, कै पटकूं निज तन करद ।
दीजै लिख दीवाण, इण दो महली वात इक ।। २ ।।

महाराणा प्रताप का उत्तर —

तुरक कहासी मुख पते, इण तनसूं, इकलंग ।
ऊगै ज्यांहीं ऊगसी, प्राची बीच पतंग ।। ३ ।।

---

१ – ओझा निबन्ध संग्रह, भाग ३-४, पृ० ५४ ।

खुसी-हूंत पीथळ कमध, पटको मूंछां पाण।
पछटण है जैते पतो, कलमां सिर कैंवाण ॥ ४ ॥
सांग मूंड सहसी सको, सम–जस जहर सवाद।
भड़ पीथळ जीतो भलां, वैंण तुरक सूं वाद ॥ ५ ॥[1]

पृथ्वीराज के लिखे हुए चार काव्य-ग्रन्थ हैं —

१. वेलि क्रिसन रुक्मणी री, २. ठाकुरजी रा दूहा, ३. गंगाजी रा दूहा, ४. फुटकर दोहे व गीत[2] और छप्पय।[3] पं० मोतीलालजी मेनारिया[4] और श्री सीतारामजी लालस[5] के अनुसार पृथ्वीराज की रचनाएं इस प्रकार हैं —

१. वेलि क्रिसन रुक्मणी री, २. दसम भागवत रा दूहा, ३. गंगा लहरी, ४. वसदे रावउत, ५. दसरथ रावउत।

रचनाओं के नामों में उक्त अन्तर वसदे रावउत और दशरथ रावउत को ठाकुर जी रा दूहा मानने से और गंगालहरी को गंगाजी रा दूहा मानने से तथा कवि पीथल के अनेक स्फुट गीत और दूहे मिलने से हुआ है। कवि पीथल ने दशरथ रावउत में श्रीराम का और वसदेरावउत में श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन किया है। शान्त रस विषयक इनके एक गीत का उदाहरण इस प्रकार है –

हरि जेम हलाड़ो जिम हालीजै, काये धणियां सूं जोर क्रपाल।
मोली दिवौ दिवौ छत्र माथे, देवौ सो लेऊं स दयाल ॥ १ ॥
रीस करौ भावै रलियावत, गज भावै खर चाढ़ गुलाम।
माहरै सदा ताहरी माहव, रजासजा सिर ऊपर राम ॥ २ ॥
मूझ उमेद वड़ी महमैंहण, सिन्धुर पापै केम सरै।
चोतारौ खर सोस चित्र दे, किसूं पुतलियां पांण करै ॥ ३ ॥
तूं स्वामी पृथुराज ताहरो, वलि वीजां को करै विलाग।
रूडौ जिको प्रताप रावलो, भूंडो जीको हमीणो भाग[6] ॥ ४ ॥

---

१ – श्री नरोत्तमदास स्वामी द्वारा संपादित राजस्थान रा दूहा, भाग पहलड़ो, प्रथम संस्करण, १९३५ ई०, पृ० ६८ व ६९।

२ – श्री हीरालाल माहेश्वरी, राजस्थानी भाषा और साहित्य, १९६० ई०, पृ० १५५।

३ – श्री सौभाग्यसिंह शेखावत का निवन्ध 'पृथ्वीसिंह राठोड़ के छप्पय', शोध-पत्रिका, वर्ष १९६३।

४ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १२२।

५ – राजस्थानी शब्दकोष, राजस्थानी शोध-संस्थान, चोपासनी, भूमिका, पृ० १३८।

६ – वेलि (हिन्दुस्तानी एकेडेमी), भूमिका, पृ० ४४।

१२७:२ । कवि पृथ्वीराज की रचना वेलि क्रिसन रुक्मणी री राजस्थानी काव्यों में एक श्रेष्ठ रचना मानी जाती है।

(५) सांयां जी झूला

१२८:२ । भक्त कवि सांयां जी का जन्म चारणों की झूला शाखा[1] में विक्रमी सं० १६३२ में माना जाता है। सांयां जी ईडर राज्यान्तर्गत लीलछा[2] नामक गांव के जागीरदार स्वामीदास जी के दूसरे पुत्र थे। सांयां जी के बड़े भाई का नाम भाया जी था। सांयां जी का देहान्त विक्रमी संवत् १७०३ माना जाता है। सांयां जी ईडर नरेश राव वीरमदेव जी और इनकी मृत्यु के पश्चात् राव कल्याणमलजी के आश्रित थे। दोनों ही नरेशों ने सांयां जी को एक-एक लख पसाव भेंट किया था। राव कल्याणमल जी ने लाख पसाव के साथ ही इनको कुवावा नामक ग्राम भी भेंट किया, जहां इनके वंशज आज भी रहते हैं।[3]

१२९:२ । राज्याश्रय में रहकर और राज्य-सम्मान प्राप्त कर सांयां जी ने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा न करते हुये केवल मात्र श्रीकृष्ण के गुणगान में ही अपनी रचनाएं लिखीं।

१३०:२ । सांयां जी रचित कतिपय फुटकर पद्य और 'नागदमण' तथा 'रुक्मणी-हरण' नामक काव्य उपलब्ध होते हैं। 'नागदमण' में श्रीमद्भागवत के आधार पर कालिय-दमन की कथा और 'रुक्मणी-हरण' में कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह की कथा वर्णित है।

(६) कविराजा बांकीदास

१३१:२ । कविराजा बांकीदास का जन्म जोधपुर राज्य में पचपदरा परगने में ...वास में वि० सं० १८२८ में माना जाता है। बांकीदास जी आसिया शाखा के चारण ...र इनके पिता का नाम फतहसिंह था। अपने गांव में सामान्य शिक्षा प्राप्त कर ...दास जी जोधपुर आये जहां रायपुर के ठाकुर अर्जुनसिंह जी ने इनकी प्रतिभा से प्रसन्न ...र इन्हें विभिन्न गुरुओं से काव्य, व्याकरण, इतिहास आदि की शिक्षा दिलवाई।[4]

- चारणों की १२० शाखाओं में से "देद" शाखा के अन्तर्गत "झूला" एक उपशाखा मानी गई है। महाकवि सूर्यमल कृत वंशभास्कर, भाग १, सं० पं० रामकर्ण जी आसोपा, प्रताप प्रेस, जोधपुर, सं० १९५९, पृ० ८४।
- लीलछा गांव गुर्जर नरेश सिद्धराज जयसिंह ने आलाजी झूला को प्रदान किया था। सांयांजी के पिता स्वामीदासजी आलाजी की नवीं पीढ़ी में हुए थे। नागदमण सं०, राज कवि दुर्गादानजी — प्रकाशक राजकवि लाखाजी कानजी, सिद्धपुर..., ...पुर, भूमिका, पृ० १-२।
- रुक्मणी-हरण, सम्पादक-पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सम्पादकीय प्रस्तावना, पृ० २५-२६।
- राजस्थानी भाषा और साहित्य, डॉ० मो० म०, पृ० १९९।

जोधपुर में बांकीदास जी महाराजा मानसिंह के गुरु आयस देवनाथ जी से मिले तो आयस देवनाथ जी इनकी कविता से बहुत प्रसन्न हुए और इन्हें महाराजा से मिलाया। महाराजा मानसिंह ने बांकीदास जी को अपना काव्य-गुरु बना कर सम्मानित किया और कागजों पर गुरु-शिष्य सम्बन्ध की सूचक मोहर लगाने की स्वीकृति प्रदान की। मोहर पर यह छन्द उत्कीर्ण करवाया गया —

श्रीमन् मान धरणिपति, बहु गुन रास।
जिन भाषा - गुरु कीनो, बांकीदास ॥ [1]

१३२:२। कविराजा बांकीदास जी संस्कृत, व्रज, राजस्थानी और फारसी के सुज्ञाता होने के साथ ही इतिहासज्ञ भी थे। बांकीदास जी भारत में अंग्रेजी - शासन के प्रबल विरोधी और हिन्दु - मुस्लिम एकता के समर्थक थे।

१३३:२। कविराजा आशुकवि होने के साथ ही काव्यशास्त्र के अध्येता थे और पद्य के साथ ही गद्य - लेखन में भी कुशल थे। इनकी राजस्थानी भाषा सरल होने के साथ ही प्रौढ़ और प्रसादगुणयुक्त है। कविराजाजी अनेक छन्दों के लेखन में सिद्धहस्त थे, किन्तु आपके दोहों और गीतों का चमत्कार विशेष प्रभावशाली है। कविराजाजी की रचनाएं इस प्रकार हैं—

१ सूर छत्तीसी, २. सींह छत्तीसी, ३. वीर - विनोद, ४. धवल पचीसी, ५. दातार बावनी, ६ नीतिमंजरी, ७. सुपहछत्तीसी, ८. वैसकवारता, ९. मावड़िया मिजाज, १०. कायरदरपण, ११. मोहमरदन, १२. चुगलमुख-चपेटिका, १३. वेस-वारता, १४ कुकवि बत्तीसी, १५. विदुर बत्तीसी, १६. भुरजाल भूसण, १७ गंगालहरी, १८ जेहल जस जड़ाव, १९. कायर बावनी, २०. क्रमाल नखसिख, २१. सुजस छत्तीसी, २२ संतोष बावनी, २३ सिद्धराव छत्तीसी, २४. वचन विवेक, २५ कृपण पच्चीसी, २६. हमरोट छत्तीसी, २७. स्फुट संग्रह, २८. कृष्ण चंद्रिका, २९. विरहचंद्रिका, ३०. चमत्कारचंद्रिका, ३१. मान जसो मंडन, ३२. चंद्रदूषण-दर्पण, ३३ वैसाख वार्ता संग्रह, ३४. श्री दरबार री कविता, ३५. रसालंकार ग्रन्थ, ३६. व्रत्तरत्नाकर भासा व्याख्या, ३७. महाभारत छंदोऽनुवाद, ३८. अंतर-लापिका, ३९. थलवट पच्चीसी, ४०. गीत नै छन्द - संग्रह और, ४१. बांकीदास री ख्यात।

१३४:२। बांकीदास का देहान्त जोधपुर में वि० सं० १८९० श्रावण शुक्ला ३ को हुआ। इनके देहान्त पर महाराजा मानसिंह बहुत दुखी हुए और अपने शोकोद्गार इन छन्दों में प्रकट किये —

---

१ — यह मोहर बांकीदासजी के वंशजों के पास अभी तक सुरक्षित है।

सद् विद्या बहु साज , बांकी थी बांका वसु ।
कर सुधी कवराज , आज कठी गो आसिया ॥
विद्या - कुल विख्यात , राज काज हर रहस री ।
बांका तो बिण बात , किण आगल मनरी कहां ॥

बांकीदास जी की काव्यात्मक रचनाओं के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं –

सुर न पूछे टीपणों , सुकन न देखे सूर ।
मरणां नूं मंगळ गिणें , समर चढे मुख नूर ॥ १ ॥
दामोदर दीजै मती , कायर कांठै वास ।
सरणें राखै सूर रै , तेथ न व्यापै त्रास ॥ २ ॥
कै सूरा धर कज्ज है , कै सूरा पर कज्ज ।
सुर-पुर दोहूं संचरे , रूकां व्है रज - रज्ज ॥ ३ ॥
सूर भरोसै आपरै , आप भरोसै सींह ।
भिड़ दोहूं भाजै नहीं , नहीं मरण री बींह ॥ ४ ॥
सखी अमीणा कंथ री , पूरी एह प्रतीत ।
कै जासी सुर द्रंगड़ै , कै आसी रणजीत ॥ ५ ॥
फबै सवा मण मुकत फळ , मैंगळ कुम्भ मझार ।
पिण हाथळ बळ सूं हुवौ , सींह बड़ो सिरदार ॥ ६ ॥
सींहा देस विदेस सम , सींहा किसा उतन्न ।
सींह जिकै बन संचरै , सो सींहा री वन्न ॥ ७ ॥
चमर ढुलै नहँ सींह सिर , छत्र न धारै सींह ।
हाथळ रा बळ सूं हुवौ , औ मृगराज अबीह ॥ ८ ॥
तूं क्यूं गणपत नाम ले , जोतै धवळो भार ।
गणपत हंदा बाप री , धवळ उठावैं भार ॥ ९ ॥
धवळा सूं राजे धणी , चंगी दीसै ग्वाड़ ।
नारायण मत नांखजे , धवळां उपर धाड़ ॥ १० ॥

ग. राजस्थान के संत–सम्प्रदाय

(अ) सामान्य परिचय

१३५:२। संसार में ऐसे व्यक्तियों का अभाव नहीं होता जो सदा ही दूसरों की सुख - सुविधाओं का ध्यान रखते हुए परोपकार में संलग्न रहते हैं। ऐसे व्यक्ति परोपकार के लिए किसी भी प्रकार का कष्ट सहर्ष सहन कर सकते हैं। इनका हृदय उदार होता है

और इनकी भावना "वसुधैव कुटुम्बकं" [1] की होती है। उदारता, कष्ट-सहिष्णुता और परोपकार से परिवार - विशेष में ही नहीं, समस्त समाज और देश में सुख-शांति की स्थापना होती है। परिवार और बाहर यदि सभी लोग अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए एक दूसरे के सहयोगी बनकर रहें और उदार दृष्टिकोण से कार्य करते रहें तो सभी प्रकार की सुख - सुविधाएँ और शान्ति उपलब्ध हो सकती है। अपनी आवश्यकताएं न्यूनतम रखते हुए जो दूसरों को अधिकाधिक लाभ पहुंचाते हैं वही वास्तव मे सन्त कहे जा सकते है। सन्त ही समाज के मार्ग - द्रष्टा होते हैं। यद्यपि सन्तों को अपनी प्रतिष्ठा-अप्रतिष्ठा और मानापमान का ध्यान नहीं रहता, किन्तु समाज में सन्तों की प्रतिष्ठा सर्वोच्च होती है।

१३६:२। वास्तव में सन्तों के कारण ही हमारी संस्कृति का विकास होता है। "सम्यक करणं संस्कृति" अर्थात् संस्कृति द्वारा ही प्राकृतिक देन को सुधार कर उपयोगी बनाया जाता है। मुख्यतः सन्तों ने ही मानव-समाज को पशु-कोटि से सुधार कर उन्नति की ओर अग्रसर किया है। सन्तों ने पारस्परिक व्यवहारों को सात्विक रूप दिया है।

१३७:२। भारतीय साहित्य में संत शब्द की व्याख्या कई रूपों में की गई है। ऋग्वेद में "सत्" का वर्णन करने वाले क्रान्तिदर्शी "विप्रों" का उल्लेख हुआ है।[2] छान्दोग्य उपनिषद में कहा गया है कि प्रारम्भ में ब्रह्म अथवा परमात्मा के रूप में सत् ही वर्तमान था।[3] महाकवि भवभूति ने बुद्धिमान व्यक्ति को ही सन्त माना है।[4] श्रीमद्भागवत में पवित्रात्मा को सन्त माना है।[5] भृतृहरि ने परोपकारी को ही सन्त के रूप में स्वीकार किया है।[6] [illegible] तुलसीदास ने सन्त शब्द की व्याख्या सज्जन के रूप में की है।[7] महाभारतकार ने सदाचारी को ही सन्त माना है।[8]

अंग्रेजी के "सेन्ट" शब्द को भी सन्त का पर्यायवाची कहा जा सकता है, क्योंकि अंग्रेजी सेन्ट शब्द की उत्पति "सेन्सिओ" नामक लेटिन शब्द से हुई है, जिसका अर्थ पवित्र करना होता है। इसीलिए कई ईसाई सन्तों को पवित्रात्मा के रूप में भी सम्बोधित किया

१ – पंचतंत्र - अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

२ – सुपर्णं विप्राः कवियो वयोविरेकं सन्त बहुधा कल्पयंति। १०-११४।

३ – छान्दोग्य उपनिषद, खण्ड १।

४ – सन्तः परीक्ष्यान्तरद् भजन्ते मूढः पर प्रयत्य् नैव बुद्धि ते सन्तः जोतुमर्हन्ति मद्-मद् व्यक्ति हेतवः —उत्तर रामचरित्।

५ – भागवत, प्रथम स्कन्ध। अ०१, श्लोक ८।

६ – सन्तः स्वयं परहिते विहिताभि योगाः। —शतकत्रयम्।

७ – रामचरित-मानस, बालकाण्ड २-४।

८ – आचार लक्षणं धर्मः सन्तस्याचार लक्षणाः।

गया है। सन्त शब्द वास्तव में "सन्" नामक संस्कृत शब्द का बहुवचन है। "सन्" शब्द "अस" अर्थात् होना शब्द से सम्बन्धित है। इस प्रकार सन्त शब्द के मूल में -- होने वाला, रहने वाला, जन्म-मरण से परे, अजर-अमर, सत्य ब्रह्म अर्थात् परमात्मा का स्वरूप है। भारतीय शास्त्रों में "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" कहा गया है। सन्त शब्द के मूल में सत्य ही मानना चाहिये। श्रीमद्भागवत गीता के " ॐ तत्सत् " में निहित " सत् " शब्द भी ब्रह्म अर्थात् सत्य के लिये व्यवहृत हुआ है।

१३८:२। भारत के प्रत्येक भू - भाग में सन्तों की अवतारणा होती रही है और भारत को प्राचीनकाल से ही सन्तों की भूमि कहा जाता है। सन्तों के कारण ही भारतीय सामाजिक जीवन में धर्म को उच्च स्थान प्राप्त हो सका है और भारतीय संस्कृति एक धर्म-प्रधान संस्कृति बन गई है। वास्तव में भारतीय संस्कृति के मूल में धर्म के निम्नलिखित लक्षण ही हैं –

धृतिःक्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्म-लक्षणम् ॥

१३९:२। नगरी, चित्तौड़, अर्बुदाचल, भिन्नमाल, आहड, नागद्रहा, वैराट, अजयमेरु, चन्द्रावती आदि ऐतिहासिक स्थानों में प्राप्त धार्मिक अवशेषों से सिद्ध होता है कि राजस्थान में प्राचीनकाल के समस्त भारतीय धर्मो जैसे वैष्णव, शैव, शाक्त, बौद्ध, जैन आदि का विशेष प्रचार रहा है।[1] राजस्थान में अनेक प्रकार के धार्मिक स्थानों, जैसे – देव - मन्दिरों, स्तूपों और विहारों का निर्माण हुआ है। विभिन्न मत - मतान्तरों और देवी-देवताओं से सम्बन्धित मूर्तियां भी राजस्थान में प्रचुर मात्रा में निर्मित एवं प्रतिष्ठित हुई हैं।

१४०:२। राजस्थान निवासियों ने धार्मिक कार्यों में भी सदा से रुचि प्रकट की है। राजस्थानी शूरवीरों तथा वीरांगनाओं ने मुख्यतः अपनी धार्मिक वृत्तियों के कारण ही अनूठा त्याग कर भारतीय इतिहास में अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

१४१:२। इस प्रकार राजस्थान सन्तों के लिए प्रचार - प्रसार का उत्तम क्षेत्र बन गया और प्रमुख भारतीय सन्त - सम्प्रदायों को राजस्थान में विशेष आश्रय प्राप्त हुआ। ऐसे सम्प्रदायों में – गोरखनाथ, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, कबीर आदि के सम्प्रदायों को लिया जा सकता है। राजस्थान में अनेक सन्त - सम्प्रदायों का जन्म भी हुआ। दादू, राम-स्नेही, चरणदासी, विष्णोई और जैन - धर्म के अन्तर्गत कई मत राजस्थान में आविर्भूत हुए और उनका राजस्थान के बाहर भी प्रचार हुआ।

---

१ – मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, डा० गौरीशंकर ओझा कृत, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग।

१४२:२। राजस्थान के सन्त - साहित्य पर इस्लाम का भी यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। मुसलमानों का आगमन भारत में आठवीं सदी से ही प्रारम्भ हो गया था। मुसलमानों के भारत आगमन का उद्देश्य अपने धर्म का प्रचार, व्यापार व शासन-सत्ता स्थापित करना था। अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मुसलमानों को भारतवासियों से संघर्ष करना पड़ा। मुसलमानों की विजय के साथ ही भारत में बड़ी संख्या में सूफी संत व फकीर भी आए। इन्होंने अपने विचारों को प्रचारित करने के लिए प्रेम का मार्ग अपनाया। ऐसे मुस्लिम सन्तों का एकेश्वरवाद (वहदानियत) भारतीय धर्म के भी अनुकूल हुआ। भारतीय परम्परानुसार आत्मा और परमात्मा के मिलन को मोक्ष की संज्ञा दी गई है। आत्मा अजर अमर है व नाना शरीरों में प्रवेश करती हुई परमात्मा में लीन होना चाहती है। मोक्ष-प्राप्ति में गुरु की सहायता परम आवश्यक होती है। आत्मा और परमात्मा के बीच माया का आवरण रहता है। इस्लाम मत में आत्मा के स्थान पर बन्दा है जो शरियत, तरीकत, हकीकत और मारिफत नामक अवस्थाओं को पार करता हुआ खुदा के नजदीक बका होकर फना के लिए पहुँचता है। माया का स्थान इस्लाम में शैतान ने ग्रहण किया है, जो बन्दे को मार्ग-भ्रष्ट कर खुदा के नजदीक नहीं पहुँचने देता है। बौद्ध और जैन धर्म में भी मोक्ष को ही प्रधानता दी गई है। इस प्रकार सन्त - मत के उद्‌भव से सर्व मतैक्य का अनूठा प्रतिपादन होता है।

आ. संत कवि

(१) संत दादूदयालजी

१४३:२। स्वामी दादू दयाल जी दादू-पंथ के प्रवर्तक माने जाते हैं। दादू-पंथ का प्रभाव राजस्थान में विशेष रूप से है जिसके फलस्वरूप राजस्थान के सैंकड़ों ही स्थानों में दादूजी के स्थानक मिलते हैं। दादू-पंथी निराकार परब्रह्म की उपासना करते हैं। राजस्थान में जयपुर के निकट ' नारायणा ' नामक स्थान दादूपंथियों का मुख्य केन्द्र है।

१४४:२। दादूजी का जन्म अहमदाबाद में वि० १६०१ में माना जाता है। दादूजी की जाति के विषय में मतभेद है। " दादू जन्म लीला परची " में दादूजी के शिष्य जन - गोपाल ने दादूजी के जीवन - वृत्त पर लिखा है। कहते हैं कि साबरमती में सन्दूक में बहते हुए अहमदाबाद के एक ब्राह्मण को एक बालक मिला जो बाद में दादूजी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। दादूजी ने राजस्थान में अपने धर्म का विशेष प्रचार किया और 'आमेर', 'सांभर', 'नारायणा' आदि स्थानों में अपने धर्मप्रचार के केन्द्र स्थापित किये। दादूजी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र गरीबदास को अपना उत्तराधिकारी बनाया। दादूजी का देहान्त १६६० वि० में नारायणा नामक स्थान में हुआ जहां इनके वस्त्रों और पुस्तकों की पूजा आज भी की जाती है।

१४५:२। दादूजी की रचनाओं का संग्रह "वाणी" के नाम से प्रसिद्ध है। दादूजी

की रचनाओं में ज्ञान, गुरुभक्ति, सत्संग, वैराग्य, माया, जीव, और ब्रह्म आदि विषयों के बारे में चर्चा है।

१४६:२। अपनी रचनाओं में दादूजी ने दुरूहता को सदा ही दूर रखा है। धर्म सम्बन्धी दुरूह विचारों को सरलता से व्यक्त किया गया है। साहित्यक दृष्टि से भी स्वामी दादूदयाल जी की रचनाएं उत्कृष्ट कही जा सकती हैं। दादू-सम्प्रदाय का जयपुर-क्षेत्र में विशेष प्रचार है। क्योंकि सन्त दादूजी का निवास मुख्यतः इसी क्षेत्र में रहा है। दादूजी ने अहं भाव को छोड़कर निर्गुणोपासना पर अधिक बल दिया है। दादू-सम्प्रदाय में इस समय चार दल हैं, जिनके नाम हैं— खालसा, विरक्त, उतराधा और नागा।

खालसा :— दादूजी के देहावसान के बाद उनके बड़े पुत्र गरीबदास गद्दी के अधिकारी बने और उन्होंने अपनी आचार्य-परम्परा चलाई। इसी आचार्य-परम्परा वाले खालसा कहे जाते हैं। खालसा शाखा का मुख्य केन्द्र जयपुर के पश्चिम की ओर नाराणा नामक स्थान है। नाराणा में ही दादूजी का देहान्त हुआ और यहीं इनकी मुख्य गद्दी स्थापित हुई।

उतराधा :— राजस्थान से हरियाना, हिसार, रोहतक, दिल्ली, भटिंडा, नाभा, पटियाला आदि उत्तरदिशा के स्थानों में चले जाने के कारण दादूजी के शिष्य उतराधा कहे गये। उक्त क्षेत्रों में भी कई दादू-द्वारों की स्थापनाएं हुईं, जिनसे दादू पंथ के प्रचार में सहायता मिली।

विरक्त :— दादू-पंथी विरक्त साधु स्थान-स्थान पर घूमते रहते हैं और लोगों को दादूवाणी का उपदेश देते हैं। विरक्त साधु अपना निर्वाह गृहस्थों द्वारा दी गई भिक्षा से करते हैं। वर्षा ऋतु मे किसी उपयुक्त स्थान पर ठहरकर ऐसे साधु चातुर्मास करते हैं और वही नित्य प्रति अपने सम्प्रदाय का प्रचार करते हैं।

नागा :— दादूपथी नागा साधुओं की जयपुर में सात जमातें प्रसिद्ध हैं। नागा-साधु शस्त्र-संचालन और मल्लविद्या में बड़े प्रवीण रहे हैं। जयपुर सेना के अन्तर्गत नागा साधुओं की भी एक टुकड़ी रही, जिसने कई युद्धों में भाग लिया।

१४७:२। **दादू सम्प्रदाय में सन्त**— दादू के अतिरिक्त गरीबदास (सं० १६३२–१६९३), बखनाजी (रचनाकाल सं० १६४०–१६७०), जगजीवन (सं० १६४०), जनगोपाल (सं० १६५०), रज्जब जी पठान (ज० सं० १६२४ लगभग), जगन्नाथदास (सं० १६५०), भीखजन (सं० १६८५), माधोदास (सं० १६६१), सन्तदास (सं० १६६६), वाजिद (सं० १६६० लगभग), सुन्दरदास (सं० १६५३–१७४६), खेमदास (सं० १७००), राघवदास (सं० १७१७), चारण कवि स्वरूपदास

(६) श्री जसनाथ जी

१५८:२। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो घाटी की खुदाई में प्राप्त योगी की मूर्ति से सिद्ध होता है कि योग की परम्परा भारत में प्राचीन है। यौगिक क्रियाओं का महत्त्व वेदों में भी प्रतिपादित किया गया है।[1] उपनिषद् - काल में तो योग का विशेष प्रचार हो गया था जिसके परिणामस्वरूप योगोपनिषद् जैसी रचनाओं का निर्माण हुआ।[2] तदुपरान्त महर्षि पातंजलि ने विक्रमी पूर्व दूसरी सदी में योग - सूत्रों की रचना कर योगविद्या का महत्व प्रतिपादित किया। सिकन्दर, बुद्ध और महावीर के काल में भी भारत में योग का प्रचार पाया जाता है। नाथ सम्प्रदाय भी मुख्यतः योगियों का सम्प्रदाय है और इसके प्रवर्तक योगीश्वर आदिनाथ[3] शिव माने जाते हैं। कहते हैं कि एक समय शिवजी क्षीर समुद्र के किनारे पार्वती को योग - विद्या बता रहे थे। उसी समय पानी में मत्स्य रूप में निवास करने वाले मत्स्येन्द्रनाथ ने शिवजी से योग - विद्या सुन ली। तदुपरान्त योग - विद्या मत्स्येन्द्रनाथ से गोरखनाथ को प्राप्त हुई और आगे क्रमशः शिष्य-परम्परानुसार गैनीनाथ और निवृत्तिनाथ को यह विद्या प्राप्त हुई।

१५९:२। नाथ पन्थ के प्रधान नेता गुरु गोरखनाथ माने जाते हैं, जिनका प्रभाव सारे भारत में पूर्व से पश्चिम तक और उत्तर से सिंहलद्वीप तक है। गोरखनाथ [illegible] २२ शिष्य-परम्पराएँ स्थापित हुईं। इनमें से माननाथी पंथ अथवा पावनाथी पंथ [illegible]धपुर में विद्यमान है। कई नाथ योगी राजस्थान के राठोड़, सिसोदिया व कछवाहा [illegible]जपूतों के गुरु रहे हैं। आज भी राजस्थान में नाथ पंथी साधुओं के कई केन्द्र हैं। नाथ पंथी साधुओं को कनफड़ा योगी भी कहा जाता है क्योंकि ऐसे योगी कानों में बड़ी - बड़ी बालियां पहनते हैं। राजस्थान में योगी भर्तृहरी और गोपीचंद से सम्बन्धित कई गाथाएं भी प्रचलित हैं जिनसे नाथ पन्थ के व्यापक प्रचार का पता चलता है। मेवाड़ राज्य के संस्थापक बापा रावल के गुरु भी नाथ सम्प्रदाय से सम्बन्धित ज्ञात होते हैं और मेवाड़ राजकुल के उपास्य भगवान एकलिंग की पूजा का कार्य भी सैंकड़ों वर्षों तक नाथ योगियों की अधीनता में रहा।[4]

१६०:२। संत श्री जसनाथ जी का जन्म वि० सं० १५३९ में बीकानेर के कतरियासर ग्राम में हुआ। आपका देहावसान वि० सं० १५६३ में हुआ।

---

१ – तम आसीत्तमसा गूढ़ मग्रे प्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम ।
तुच्छ्येनाम्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिम जायते कम ॥
— ऋग्वेद, मं० १०, सूक्त १२९।

२ - सम्पादक पं० महादेव शास्त्री, अद्यार लाईब्रेरी, अदयार, मद्रास।

३ – आदिनाथ को जलंधर नाथ भी माना जाता है। — गंगा का पुरातत्वांक, पृ० २२०।

४ – उदयपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, गौरीशंकर हीराचंद ओझा।

१६१:२। जसनाथ का इस क्षण - भंगुर भौतिकता के प्रति अपना एक दृष्टिकोण था जो उनकी रचनाओं में दृष्टिगत होता है। यद्यपि आप की रचनाएँ अधिक मात्रा में उपलब्ध नहीं होती फिर भी जो कुछ प्राप्त होती है उनमे उनके दृष्टिकोण, जीवन - दर्शन, कवित्वशक्ति और वैराग्य के दर्शन होते हैं –

अठे ऊंचा पोल चिणाया, आगे पोल उसारे।
ऊंचा अजब झरोखा राख्या, वे पूगा नेवारे॥
पाछे घिरने जोइयो, सब जुग रहियो लारे।
गुरु परसादे गोरख वचने, सिध जसनाथ विचारे॥
इन जिवड़े के कारणें, हर हर नाव चितारे।
ओ धन तो है ढलती छाया, ज्यूं धुंवे री धारे॥
लाड हुए सायब री दरगा, खरची वस्तु पियारे।
गुरु परसादे गोरख बचने, सिध जसनाथ उचारे॥
बैठे जिवड़ो, थर थर कांप्यो, उवरू किसी उधारे।
का उवरै कोइ सुकृत कीया, का करणी इदकारे॥

(७) रामस्नेही सम्प्रदाय के कवि

१६२:२। रामस्नेही सम्प्रदाय वाले श्री रामानुज को अपना प्रथम आचार्य मानते हैं और रामानुजाचार्य से ही अपनी गुरु - परम्परा को स्थिर करते है। रामस्नेही सम्प्रदाय में ब्रह्मज्ञान पर विशेष बल दिया गया है। निराकारोपासना, आप्तवाक्य में विश्वास और सदाचार रामस्नेही मत के मुख्य सिद्धान्त माने गए हैं।

१६३:२। राजस्थान में शाहपुरा, खेड़ापा और रेण नामक स्थानों में रामस्नेहियों की तीन शाखायें है। रामस्नेही संत रामद्वारे में रहते हुए भिक्षान्न से अपना निर्वाह करते हैं। सादगी से रहना व शास्त्र चर्चा करना इनका प्रधान कार्य माना गया है। रामस्नेही सन्तों का मुख्य केन्द्र शाहपुरा है, जहां फाल्गुन शुक्ला ६ से चैत्र कृष्ण ६ तक मेला लगता है।

१६४:२। रामस्नेही सन्तों में शाहपुरा शाखा के प्रवर्त्तक रामचरणजी (सं० १७७६–१८५५) के अतिरिक्त रामजन (सं० १८३६), जगन्नाथ (१८५५), हरिराम दास (सं० १८००–१८३५), रामदास (सं० १७८३–१८५५), दयालदास (सं० १८१६-१८८५), दरियावजी (सं० १७३३–१८०५ आदि कवि हुए हैं। जोधपुर, बीकानेर, अजमेर, उदयपुर, जयपुर आदि क्षेत्रों में कई रामद्वारे स्थापित हुए हैं। इस सम्प्रदाय से सम्बन्धित प्राचीन ग्रन्थ भी सुरक्षित हैं।

(८) जांभोजी

१६५:२। विश्नोई सम्प्रदाय के प्रवर्तक सन्त जांभोजी माने जाते हैं जिनका जन्म जोधपुर के अन्तर्गत पीपासर गांव में भाद्रपद कृष्णाष्टमी सं० १५०८ में हुआ था। जांभोजी के पिता का नाम लोहित व माता का नाम हांसावाई था। ये जाति के पंवार राजपूत थे। बचपन में जांभोजी गायें चराया करते थे। एक समय इन्होंने जोधपुर के राव दूदाजी को भी आशीर्वाद दिया। यह आशीर्वाद सफल हुआ तबसे इनकी प्रतिष्ठा बढ़ने लगी व कई लोग इनके अनुयायी हो गये।

१६६:२। जांभोजी का सम्प्रदाय विश्नोई सम्प्रदाय कहा जाता है क्योंकि इसके २० और ६ सिद्धान्त हैं। जांभोजी ने निर्गुणोपासना, योगाभ्यास, अहिंसा और सिद्धि पर विशेष बल दिया है। सन्त जांभोजी ने तालवा बीकानेर में समाधि ली। इस कारण से यहां विश्नोईयों का मेला लगता है।

(९) जैन सन्त कवि

१६७:२। जैन धर्म के प्रवर्त्तक भगवान ऋषभदेव माने जाते हैं। ऋषभदेव के पश्चात २३ अन्य तीर्थंकर हुए जिनमें से अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर हैं। भगवान महावीर का समय ५२१-४६६ वि० पूर्व का माना जाता है। भगवान महावीर ने १२ वर्ष तक घोर तपस्या की तदुपरान्त अपने उपदेशों में वैदिक कर्मकांड का विरोध किया।

१६८:२। जैन सिद्धान्त के अनुसार जीव का स्वभाव— शुद्ध, बुद्ध एवं सच्चिदानन्द माना गया है किन्तु कर्मों के कारण कलुपता का आवरण छा जाता है। उसको हटाये बिना मोक्ष की उच्च स्थिति प्राप्त करना असम्भव है। इसलिए मन, वचन, और कर्म से किसी प्राणी को दुख न देना, संयम से रहना, सदाचार पालन, बिना अधिकार कोई वस्तु ग्रहण न करना, मनको विषय-वासना से अलग करने के लिए व्रत उपवास करना आदि सिद्धान्त माने गए हैं। इसके लिए सम्यक् दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक चरित्र की आवश्यकता होती है।

१६९:२। जैन मूर्तियों और मन्दिरों का निर्माण पौराणिक युग में ही भारत में होने लगा था। जैन मूर्तियों को वस्त्रादि से सज्जित करने के विषय को लेकर जैन मतानुयायियों में मतभेद हो गया तब श्वेताम्बर और दिगम्बर दो दल हो गये। श्वेताम्बर जैन अपनी मूर्तियों को वस्त्र पहिनाने लगे और दिगम्बर जैन नग्न मूर्तियों की उपासना करने लगे। श्वेताम्बर साधु श्वेत वस्त्र पहिनते हैं व दिगम्बर साधु वस्त्र-हीन रहते हैं।

१७०:२। राजस्थान में जैन सम्प्रदाय का अन्य किसी भू-भाग से अधिक प्रचार हुआ। राजस्थान के हिन्दू नरेशों के व्यवस्थापक मुख्यतः जैन धर्मानुयायी हुए, जिन्होंने राजस्थान में सुविशाल और कलापूर्ण जैन मन्दिरों का निर्माण करवाया। राजस्थान जैन

सन्तो और साधुओं का मुख्य केन्द्र बन गया। और राजस्थान में कई पुस्तक-भण्डारों की स्थापनाएं हुई जिसमे से जैसलमेर के जैन-ग्रन्थ-भण्डार अपनी गौरव-गरिमा को आज भी सुरक्षित किये हुए है। जैन साधु-साध्वियों, यतियों और गृहस्थों ने राजस्थानी में हजारों विविध विषयक रचनाएं की।

१७१:२। राजस्थान मे आबू, आघाटपुर, ओसियां, नागदा, चित्तौड़, सांगानेर आदि जैन धर्म प्राचीन केन्द्र हैं। यहाँ विशाल जैन मन्दिर भी मिलते हैं।

१७२:२। राजस्थान से संलग्न प्रदेश दिल्ली, मालवा, पंजाब, सिंध और गुजरात में भी जैन धर्म का विशेष प्रचार हुआ जिसके परिणाम-स्वरूप इन क्षेत्रों से राजस्थान का सांस्कृतिक सम्पर्क स्थापित हुआ। जैन साधु-साध्वियां और श्रावक-श्राविकायें उक्त क्षेत्रों मे यात्रा करते रहे। राजस्थान की ही भांति उपरोक्त क्षेत्रों में भी धार्मिक भवनों का निर्माण हुआ और बहुत से ग्रन्थ-भण्डार स्थापित किये गये।

१७३:२। कालान्तर में श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदाय के अन्दर भी कई मत-मतान्तर हो गये जिन्हें स्थानकवासी, तेरहपंथी आदि कहा जाता है। मतमतान्तरों के कारण ही जैन धर्म के अन्तर्गत विभिन्न गच्छों की स्थापना हुई।

१७४:२। भारतीय साहित्य में जैन साहित्य का विशेष महत्व है क्योंकि इसके प्रणेता परम तपस्वी और अनुभवी व्यक्ति रहे हैं और यह गद्य-पद्यात्मक अनेक रूपों में उपलब्ध होता है। मध्यकालीन कतिपय जैन साहित्यकार निम्न-लिखित हैं —

विनय समुद्र बीकानेर के उपकेशगच्छीय वाचक हरसमुद्र के शिष्य थे। जिनका समय वि०सं० १५८३ से १६१४ तक है। इनकी रचनाओं के नाम — (१) विक्रम पंचदंड चौपाई, (२) अम्बड चौपाई (वि०सं० १५९९,) (३) आराम शोभा चौपाई (१५८३), (४) मृगावती चौपाई (१६०२), (५) चित्रसेन पद्मावती रास (१६०४), (६) पद्म चरित्र (१६०४), (७) शीलरास (१६०४), (८) रोहिणेय रास (१६०५), (९) सिंहासन बत्तीसी चौपाई (१६११), (१०) नल दमयंती रास (१६१४), (११) संग्राम सूरि चौपाई, (१२) चंदनबाला रास, (१३) नमि राजर्षि संधि, (१४) साधु वंदना, (१५) ब्रह्मचरि, (१६) श्रीमंधर स्वामी स्तवन, (१७) शत्रुन्जय गिरि मंडण श्री आदीश्वर स्तवन, (१८) स्तम्भन पार्श्वनाथ स्तवन, (१९) पार्श्वनाथ स्तवन और (२०) इलापुत्र रास हैं।

इनकी रचना का एक उदाहरण इस प्रकार है —

ताहरइ दरसण दुरित बुझाई, नव निधि सवि मंदिर थाई जाई रोग सवि दूरो।
समरण संकट सगला नासइ, वाध संग चुण नावइ पासइ, आपइ आणंद पूरो।

वामेय वसुहानंद दायक, तेज तिहुयण नायको।
धरणेन्द्र सेवत चरण अनुदन, सयल वंछिय दायको।
थमणाधीश जिणेश प्रभु तूं, पास जिणवर साभिया।
वीनती विना पयोध जंपइ, सयल पूरवि कामिया।

१७५:२। हीरकलस खरतरगच्छीय सागरचन्द्र सूरि शाखा के कवि हो गये हैं जिनका जन्म सं० १५९५ माना जाता है। हीरकलश ज्योतिष के विशेष ज्ञाता थे। इनका साहित्य २८ रचनाओं में उपलब्ध हो चुका है। इनके मोती कपासिया संवाद का उदाहरण इस प्रकार है —

मोती — देव पूजउ गुरुत्त गति जिहां, मंगल काजि विवाह।
आदर दीजइ थम्हां तणी, सविज करइ उछाह।

कपासिया — संभलि तवइ कपासीउ, मोती म हूय गमार।
गरव न कीजइ वापड़ा, भला भली संसार।

मोती — कहि मोती सुन कांकड़ा, मह तइ केहो साथ ?
हुँ साव्हुँ कंचण सरिस, तइ खल कूंके स बाथ।
मइ सुर नरवर भेटिया, कीधां जीहां सिंगार।
तइ भेटीया गोधण वलद, जिहां कीया आहार।

कपासिया — उत्तर दीयइ कपासियउ, अस्ह आहार जोइ।
गायां गोरस नीपजइ, वलदे करसण होइ।
गोधण जदि वाटउं न हुइ. वदि वरतइ कंतार।
धान वडइ तव वेचीयइ, सोवन मोती हार।

१७६:२। हेमरत्न सूरि का समय अनुमानतः सं० १६१६ से १६७३ है। इनकी सं० १६४५ में रचित "गोरावादल पद्मिणी चऊपई" विशेष प्रसिद्ध है। इस रचना में अलाउद्दीन के चितौड़-आक्रमण और गोरावादल की वीरता का वर्णन है। इस कृति में कवि ने विभिन्न रसों का समावेश किया है —

वीरा रस सिणगार रस, हासा रस हित हेज।
सामधरम रस सांभलउ, जिम होवइ तन तेज ॥

इनकी रचना का उदाहरण इस प्रकार है —

पांन पदारथ सुघड नर, अणतोलीया विकाई।
जिम जिम पर भुइ संचरइ, मो[illegible] थाइ।
हंसा नइं सरवर घणा, कुसुम के[illegible]
सपुरिसां नइं सज्जन घणा, दू[illegible]

१७७:२। सत्रहवीं सदी के जैन-साहित्यकारों में समयसुन्दर (सं० १६२० से १७०२) का स्थान महत्वपूर्ण है। इनकी रचनाएं अनेक हैं, जिनका प्रकाशन समयसुन्दर कृत 'कुसुमांजलि' में श्री अगरचन्द जी नाहटा द्वारा संपादित रूप में हो चुका है ।

१७८:२। 'समयसुन्दर' के गीतों के विषय में प्रसिद्ध है —

"समयसुन्दर रा गीतड़ा, कुम्भें राणे रा भींतडा" अर्थात् जिस प्रकार महाराणा कुम्भा द्वारा बनवाये हुए चितौड़-कीर्तिस्तम्भ, कुम्भश्याम का मंदिर व कुम्भलगढ़ प्रसिद्ध हैं इसी प्रकार समयसुन्दर के गीत प्रसिद्ध हैं।

कवि उदयराज जोधपुर-नरेश उदयसिंह के समकालीन थे व इनका जन्म संवत् १६३१ माना जाता है। इनकी रचनाओं में "भजन छत्तीसी" और "गुणबावनी" महत्वपूर्ण हैं।

१७९:२। जिन हर्ष का अपर नाम जसराज था। इनकी रचनाओं में "जसराज बावनी" (सं० १७३८ वि० में रचित) और "नन्दबहोत्तरी" (सं० १७१४ में रचित) प्रसिद्ध हैं।

१८०:२। १८वीं शताब्दी में आनन्दघन नामक कवि ने "चौबीसी" नामक रचना में तीर्थंकरों के स्तवन लिखे। इनका देहान्त मारवाड़ में सं० १७३० वि० में हुआ। इनका आध्यात्मिक चिन्तन उच्चकोटि का था —

राम कहो रहमान कहो, कोउ कान कहो महादेव री।
पारसनाथ कहो कोउ ब्रह्मा, सकल ब्रह्मा स्वयमेव री।
भाजन-भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री ।
तैसें खण्ड कलपना रोपित, आप अखण्ड सरूप री ।
निज पद रमे राम सो कहिए, रहिम करे रेहमान री ।
कर से करम कान से कहिए, महादेव निर्वाण री ॥
परसे रूप पारस सो कहिए, ब्रह्म चीन्हें सो ब्रह्म री।
इस विधि साधो आप आनन्दघन चेतन मय निःकर्म री ॥

१८१:२। उत्तमचन्द और उदयचन्द भंडारी जोधपुर के महाराजा मानसिंह के मंत्री थे। इनका रचनाकाल सं० १८३३ से १८८६ तक है। दोनों ही भंडारी-बन्धुओं ने अनेक रचनाएं की, जिनसे इनके काव्यशास्त्रीय और आध्यात्मिक ज्ञान का परिचय मिलता है।

जैन साहित्यकारों की संख्या सैकड़ों ही नहीं हजारों तक पहुँचती है। प्रत्येक काल में जैन साहित्यकारों की रचनाएं विकसित अवस्था में और विविध रूपों में प्राप्त हो

राजस्थानी जैन साहित्य मुख्यतः राजस्थान और गुजरात में रचा गया क्योंकि प्राचीन का में जैन धर्म का प्रचार भी मुख्यतः इन्हीं प्रदेशों में हुआ।

१८२:२। भक्तिकाल के कतिपय फुटकर कवि —

(१) बोठू सूजो, वि०स १५९१-१५९८, राउ जैतसीरो छन्द।
(२) कायस्थ केशवदास, वि०स० १५९२, वसन्तविलास फाग।
(३) कुशल लाभ —
(१) माधवानल चौपाई, (२) तेजसार रास, (३) अगड़दत्त रास,
(४) दुर्गा सप्तसती, (५) जिनपालित जिनरक्षित संधि,
(६) भवानी छन्द, और (७) ढोला मारू रा दूहा-चऊपई।
(४) मालदेव —
(१) मन भमरा गीत, (२) महावीर पारणा, (३) माल-शिक्षा चौपाई,
(४) शील बावनी।
(५) बीठू सूरो, वि०स० १५१५-१५२५।
(६) मुनि मतिशेखर, वि०स० १५१४-३७।
(७) लालूजी महडू, वि०स० १५६१-८३।
(८) सहज समुद्र, वि०स० १५७०-१६००।
(९) राजशील, वि०स० १५६३-१५९४।
(१०) हरिराम केसरिया।
(११) पुण्यरत्न, वि०स० १५९६, नेमिनाथ रास।
(१२) बीठू मेहा —
(१) पाबूजी रा छन्द और (२) गोगाजी रा रसावला।
(१३) केशवदास गाडण, वि०स० १६१०-९७,
(१) गुण रूपक, (२) राव अमरसिंह रा दूहा,
(३) विवेक वार्ता, और (४) गजगुण चरित्र।
(१४) नारायण ब्राह्मण, वि०स० १६१५-४०, हितोपदेश।
(१५) जयवंतसूरि, वि०स० १६१५, स्थूलिभद्रकोश, प्रेमविलास फाग,
(१६) रतनो खाती, वि०स० १६१६, नरसी मेहता रो माहरो।
(१७) दयाल सागर, वि०स० १६१७, मदन नरिंद चरित्र।
(१८) अल्लूजी, वि०स० १६२०, फुटकर।
(१९) जल्ह, वि०स० १६२५, बुद्धिरासो।
(२०) रामा सांदू, वि०स० १६२८, वेलि राणा उदयसिंह री।
(२१) पीथा आशिया, १६२८-५३।

(२२) अखो भ गावत, वेलि देईदास जैतावत री।

(२३) देवो, वि०स० १६३२, फुटकर।

(२४) अग्रदास, वि०स० १६३२ —
(१) श्रीराम भजन मंजरी, (२) कुंडलिया, (३) हितोपदेश भाषा,
(४) उपासना बावनी, (५) ध्यान मंजरी, (६) पद
(७) विश्व ब्रह्म ज्ञान, (८) रागावली, (९) रामचरित,
(१०) अष्टयाम, (११) अग्रसार, (१२) रहस्यत्रय।

(२५) गरीबदास, वि०स० १६३२-९३ —
(१) अनभै प्रबोध, (२) साखी, (३) चौबोली, (४) पद।

(२६) गोरधन बोगसो, स्फुट छन्द।

(२७) सूरा टापरिया, स्फुट छन्द।

(२८) कनक सोम, वि०स० १६२५-५५, आषाढ़ भूति चौपाई।

(२९) रंगरेलो बीठू, राठोड़ महाराजा रायसिंह-कल्याणमलोत रो गीत।

(३०) दूदा आसिया, १६३३-१६४४।

(३१) माला सांदू।

(३२) बारहठ शंकर, दातार सूर रो संवाद।

(३३) देवीदास, वि०स० १६३३, सिंहासन बत्तीसी, हितोपदेश।

(३४) पद्मा सांदु वि०स० १६४०।

(३५) चतुर्भुज दास, वि०स० १६४०, भागवत एकादश स्कन्ध।

(३६) चतुर्भुज दास निगम, वि०स० १६४०, मधुमालती चउपई।

(३७) हेमरतन, वि० स० १६४५ —
१. महिपाल चउपई, २. अभयकुमार चउपई, ३. गोरावादल पद्मिणी चउपई,
४, शीलवती कथा, ५. लीलावती, ६. सीताचरित्र, ७. राम रासो,
८. जगदंबा बावनी, ९. शनिश्चर छन्द।

(३८) लखोजी, पाबू रासो।

(३९) माधोदास दधवाड़िया, १. राम रासो, २. भासा दसम स्कन्ध, ६. गजमोख।

(४०) नरहरिदास, वि० स० १६४८ —
१. अवतार चरित, २. दशमस्कन्ध, ३. रामचरित, ४. अहल्या प्रसंग,
५. अमरसिंह रा दूहा।

(४१) मलूकोनदास, वि० स० १६५०, वाणी।

(४२) टीलाजी, वि० स० १६५०, वाणी।

(४३) प्रयागदास वि० स० १६५० वाणी।

(४४) मोहनदास, १६५०, १. आदिवोव, २. साधमहिमा, और ३. नाममाला।

(४५) जैमल जोगी, वि० स० १६५०, वाणी।

(४६) जैमल चौहाण, वि० स० १६५० —
१. वाणी, २. गुणगंजनामा, ३. गीतसार और योगवाशिष्ठ सार।

(४७) परशुराम देव, वि० स० १६७७ —
१. विप्रवतोसी, २. परशुराम सागर, ३. साखी का जोड़ा, ४. छन्द का जोड़ा, ५. सवैया रास अवतार, ६. रघुनाथ चरित, ७. सिंगार सुदामा चरित, ८. द्रोपदी का जोड़ा, ९. छप्पय गज-ग्राह को, १०. श्रीकृष्ण चरित, ११, प्रहलाद चरित, १२. अमरवोध लीला, १३. नामनिधि लीला, १४. शौच निषेध लीला, १५. नाथ लीला १६. निजरुप लीला, ३७. श्री हरी लीला, १८. नंद लीला, १९. नक्षत्र लीला, २० निर्वाण लीला, २१. तिथि लीला, २२. श्री वावनी लीला।

(४८) दयाल दास, वि० स० १६८०, राणा रासो।

(४९) नारायण वैरागी, वि० स० १६८२।

(५०) केहरी, वि० स० १६८८ - १७१०, रसिक विलास।

(५१) हेम सामोर, वि० स० १६८५, गुण भाषा चरित्र।

(५२) कल्याण दास मेहडू, वि० स० १६८५, राव रतन री वेलि।

(५३) सुमतिहंस, वि० स० १६९१, विनोदास।

(५४) हरिदास भाट, वि० स० १७००, १. अजीतसिंह चरित, २. अमर बत्तीसी।

(५५) दीनदयाल, वि० स० १७००, छन्द प्रकाश।

(५६) लब्धोदय, वि० स० १७०६ - ७, पद्मिनी चरित्र।

(५७) किसन कवि, वि० स० १७०८, उपदेश बावनी।

(५८) रामकवि, वि० स० १७१०, जयसिंह चरित्र।

(५९) सांईदास चारण, वि० स० १७०६, समंतसार।

(६०) श्रीधर, वि० स० १६१०, भवानी छंद।

(६१) जग्गो, वि० स० १७१५, वचनिका राठौर रतनसिंह री महेसदासोत री।

(६२) किशोरदास, वि० स० १७१८, राजप्रकाश।

(६३) गिरधर आसिया, वि० स० १७२०, सगतरासो।

(६४) नरहरिदास, १. अवतारचरित्र, और २. अमरसिंह रो दूहा।

(६५) जय सोम, बारह भावना वेलि।

(६६) धर्मवर्द्धन, श्रेणिक चौपाई।

(६७) लधराज, १. देवविलास, २. कालिका जी रा दूहा, ३. पाबूजी रा दूहा, ४. प्रबोध माला, ५. देव विलास, ६. लखमल सतक दूहा, ७. रुक्मांगद चरित. ८. सीख बत्तीसी, ९. भजन पच्चीसी, १०. महादेवजी री नीसांणी और ११. गणेशजी री नीसांणी।

(६८) जंगोदास, वि० स० १७२१, हरिपिंगल प्रबन्ध।

(६९) उपाध्याय लाभवर्धन, वि० स० १७२३, १. विक्रम ९०० कन्या चौपाई, वि० स० १७२८, २. लीलावती रास, वि० स० १७३३, ३. विक्रम पंचदंड चौपाई वि० स० १७४२, ४. धर्मबुद्धि पापबुद्धि रास, वि० स० १७६३, ५. नीसांणी महाराज अजीतसींघरी, वि० स० १७६७, ६. पांडव चरित चौपाई, वि० सं० १७७०; ७. शकुन दीपिका चौपाई।

(७०) मतिसुन्दर, वि० स० १७२४, विक्रम वेलि।

(७१) संतदास, वि० स० १७२५ - १८०८, अणभैवाणी।

(७२) दौलतविजय, वि० स० १७२५ - ६० खुमाणरासो।

(७३) सूरविजय, वि० स० १७२३, रत्नपाल रत्नावती रास।

(७४) कुंभकरण, वि० स० १७२३, १. रतन रासो २. जयचन्द रासो।

(७५) मान जती, राजविलास।

(७६) वृन्द, वचनिका आदि।

(७७) रूपजी, वि० स० १७३७, रसरूप।

(७८) अजीतसिंह, वि० स० १७३५, १. गुणसागर, और २. भावविरही।

(७९) कीर्तिसुन्दर, १. वाग्विलास, २. माकड़रास, ३. अभयकुमारादि, ४. ज्ञान छतीसी, ५. कौतुक पच्चीसी. ६. साधुरास, ७. चौबोली चौपाई, ८. अवति सकुमार चौढलिया।

(८०) हरिनाम, वि० स० १७४०–१७५०, केसरीसिंह समर।

(८१) वीरभाण चारण, वि० स० १७४५–९२, राजरूपक।

(८२) वल्लभ, वि० स० १७५०, १. वल्लभ-विलास. और २. वल्लभ मुक्तावली।

(८३) शिवराम, वि० स० १७५०, दसकुमार प्रबन्ध।

(८४) मुरली, वि० स० १७५५–६३, १ अश्वमेध कथा, और २. त्रिया-विनोद।

(८५) हमीरदान रतनू, वि० स० १७७४, १. हमीर नाम माला, २. लखपत पिंगल, ३. पिंगल प्रकास, ४. जदुवंस वंसावली, ५. देसलजी री वचनिका, ६. जोतिस

(६५) जय सोम, बारह भावना वेलि।

(६६) धर्मवर्द्धन, श्रेणिक चौपाई।

(६७) लधराज, १. देवविलास, २. कालिका जी रा दूहा, ३. पाबूजी रा दूहा, ४. प्रबोध माला, ५. देव विलास, ६. लधमल सतक दूहा, ७. रुक्मांगद चरित, ८. सीख बत्तीसी, ९. भजन पच्चीसी, १०. महादेवजी री नीसांणी और ११. गणेसजी री नीसांणी।

(६८) जंगोदास, वि० स० १७२१, हरिपिंगल प्रबन्ध।

(६९) उपाध्याय लाभवर्धन, वि० स० १७२३, १. विक्रम ९०० कन्या चौपाई, वि० स० १७२८, २. लीलावती रास, वि० स० १७३३, ३. विक्रम पंचदंड चौपाई वि० स० १७४२, ४. धर्मबुद्धि पापबुद्धि रास, वि० स० १७६३, ५. नीसांणी महाराज अजीतसींघरी, वि० स० १७६७, ६. पांडव चरित चौपाई, वि० सं० १७७०; ७. शकुन दीपिका चौपाई।

(७०) मतिसुन्दर, वि० स० १७२४, विक्रम वेलि।

(७१) संतदास, वि० स० १७२५ - १८०८, अणभैवाणी।

(७२) दौलतविजय, वि० स० १७२५ - ६० खुमाणरासो।

(७३) सूरविजय, वि० स० १७२३, रत्नपाल रत्नावती रास।

(७४) कुंभकरण, वि० स० १७२३, १. रतन रासो २. जयचन्द रासो।

(७५) मान जती, राजविलास।

(७६) वृन्द, वचनिका आदि।

(७७) रूपजी, वि० स० १७३७, रसरूप।

(७८) अजीतसिंह, वि० स० १७३५, १. गुणसागर, और २. भावविरही।

(७९) कीर्तिसुन्दर, १. वाग्विलास, २. माकड़रास, ३. अभयकुमारादि, ४. ज्ञान छतीसी, ५. कौतुक पच्चीसी, ६. साधुरास, ७. चौबीली चौपाई, ८. अवंति सकुमार चोढलिया।

(८०) हरिनाम, वि० स० १७४०–१७५०, केसरीसिंह समर।

(८१) वीरभाण चारण, वि० स० १७४५–९२, राजरूपक।

(८२) वल्लभ, वि० स० १७५०, १. वल्लभ-विलास, और २. वल्लभ मुक्तावली।

(८३) शिवराम, वि० स० १७५०, दसकुमार प्रबन्ध।

(८४) मुरली, वि० स० १७५५–६३, १ अश्वमेध कथा, और २.

(८५) हमीरदान रतनू, वि० स० १७७४, १. हमीर नाम ...
३. पिंगल प्रकास, ४. जदुवंस वंसावली, ५. देसलजी

१८७:२। इस प्रकार राजस्थानी साहित्य पर आधुनिकता का प्रभाव मुख्यतः इन राजनैतिक और ऐतिहासिक घटनाओं द्वारा होता है —

(१) वि०सं० १६१४ (१८५७ई०) का स्वाधीनता - संग्राम,
(२) भारत में ब्रिटिश शासन का सुदृढ़ होना,
(३) युरोपीय महायुद्ध,
(४) महात्मा गांधी के निर्देशन में असहयोग आन्दोलन,
(५) सन् १६४७ ई० में भारतीय स्वाधीनता का उदय,
(६) राजस्थान का एकीकरण और जनप्रतिनिधियों द्वारा नव-निर्माण एवं विकास-कार्यों का प्रारम्भ होना, और
(७) भारत पर विदेशियों के आक्रमण।

१८८:२। राजस्थान अनेक रूपों में प्राचीन परम्पराओं का प्रेमी आधुनिक काल में भी बना रहा है अतएव आधुनिकता से प्रभावित होते हुए भी अनेक प्राचीन साहित्यिक परम्पराएं राजस्थान में प्रचलित रही हैं। राजस्थान में पश्चिमी शैली से प्रभावित रचनाओं के साथ ही प्राचीन शैली के दूहे और गीत आज तक रचे जाते हैं। साहित्यिक क्षेत्र में नवीन उपादानों के साथ ही महाराणा प्रताप, पद्मनी और हाड़ी रानी जैसे चरित्र प्रिय रहे हैं। स्वाधीनता-संघर्ष सम्बन्धी घटनाओं से युक्त राजस्थान का इतिहास स्वाधीनता-प्राप्ति में ही नहीं, स्वाधीनता की सुरक्षा में भी हमारे लिए प्रेरक बना हुआ है।

१८९:२। आधुनिक काल में राजस्थानी साहित्य मुख्यतः तीन रूपों में प्राप्त होता है –

(१) पद्य साहित्य,
(२) गद्य साहित्य और
(३) लोक साहित्य।

पद्य और गद्य दोनों रूपों में प्राचीन और नवीन शैलियां वर्तमान हैं। विषय और रचना-शैली की दृष्टि से आधुनिक राजस्थानी साहित्य में प्राचीनता और नवीनता का समन्वय एक विशेषता है। जनता से मौखिक रूप में प्राप्त होने वाला लोक-साहित्य आधुनिकता से प्रभावित है और नवीन राजस्थानी पद्य एवं गद्य के लिए एक आधार बना हुआ है।

अनेक राजस्थानी कवि लोक-गीतों की शैली में अपने गीत लिखते हैं और ऐसे गीत जनता में विशेष प्रिय होते हैं। सर्व श्री गजानन वर्मा,[१] मेघराज मुकुल,[२] रेवतदान चारण[३] और कल्याणसिंह राजावत[४] आदि के राजस्थानी गीत जनता में विशेष रुचि से सुने जाते हैं।

१ – "सोनो निपजै रेत में" और "बारहमासा" आदि गीत संग्रह।
२ – "उमंग" (गीत संग्रह)।
३ – "चेत मानखा" (गीत संग्रह)।
४ – "रामतिया मत तोड़" (गीत संग्रह)।

(४) महाकवि सूर्यमल

१९१८। सन् १८५७ के स्वाधीनता-संघर्ष से प्रभावित होकर जिन राजस्थानी कवियों ने अपनी रचनाओं से स्वाधीनता-प्रेमी वीरों को प्रेरित किया उनमें महाकवि सूर्यमल मिश्रण प्रमुख है। सूर्यमल ने जात्योचित स्वाभिमान, स्वातन्त्र्य प्रेम, बहुमुखी प्रतिभा और ओजमयी वाणी से शिथिल राजपूत राजाओं को प्रताड़ित कर राजस्थानी जन-शक्ति को स्वाधीनता-संग्राम के लिए प्रेरित करने का सुप्रयत्न किया। सूर्यमल का जन्म कार्तिक कृष्णा १ संवत् १८७२ में हुआ। सूर्यमल बूंदी के राज्य-कवि थे किन्तु बाहर के अनेक राजा और जागीरदार भी इनकी काव्य-प्रतिभा से प्रभावित होकर इनके स्वागत-सम्मान को अपना सौभाग्य मानते थे। सूर्यमल ने सन् १८५७ के स्वाधीनता-संग्राम में रुचि लेते हुए वीर-सतसई का निर्माण प्रारम्भ किया। स्वाधीनता-संग्राम के प्रति राजस्थानी राजाओं की उदासीनता देखकर इन्होंने पीपल्या के ठाकुर फूलसिंह जी को पोष शुक्ला प्रतिपदा संवत् १९१४ के पत्र में लिखा —

"अर वे राजा लोग तो देशपति जमी का ठाकर छै, जे सारा ही हिमालय का गल्या ही नीसर्‌या सो चालीस सों लेर साठ सत्तर वरस तांई पाछे पटक्या छै तो भी .... गुलामी करै छै परन्तु यो म्हारो वचन राज्य याद राखोगा कि जे अबके (अंग्रेज) रह्यो तो इको गायो ही पूरो करसी। जमी को ठाकर कोई भी न

रहसी । सब ईसाई हो जासी । तीनो दूरन्देसी विचारै तो फायदो कोई के भी नहीं परन्तु आपणां आछा दिन होय तो विचारै और राज्य जसो मुहुत म्हारे होय तो बड़ाई तरीके लिखी जाव तीसूं थोड़ा में बहुत जाण लेसी । किंबहुना अलमिति पौष शुक्ला प्रतिपदा १ ज्यकुर्वेदाङ्कः भू १९१४ मित नरेन्द्र विक्रमार्क शक संवतयां लिपिरियम् ।"[1]

१९२:२ । स्वाधीनता संग्राम में महाकवि सूर्यमल अपने साथियों सहित स्वयं भाग लेने के लिये तैयार हुए और इस विषय में इन्दोर सामन्त ठाकुर बख्तावरसिंह जी को अपने चैत्र शुक्ला नवमी, वि० सं० १९१५ के पत्र में लिखा —

"म्लेच्छां को इरादो अस्यो दीसै छै कि अबके रह्या तो ई आर्यावर्त हैं परतन्त्र करि ही देसी अर ठिकाणो कोई भी हिन्दू को न रहसी परन्तु परमेश्वर की इच्छा आर्य न राखवा की दीसै छै क्योंकि अठार क्षत्रियां ने प्रतिकूल बातां छै जे सब अनुकूल दीस रही छै तीसो भावी विपरीत ही जाण्यां पड़े छै और अठी का तरफ को वर्तमान जाणज्यो कि इंगरेज की फोज अजमेर सूं कोटे लड़ाई पर आई छै । गोरा तो सांतासै छै अर काला हजार च्यार के अनुमान छै परन्तु मन में बदल्या हुवा दीसै छै और ऊंट आठ हजार के अनुमान छै और छकड़ा, किरांच्या पेट्यां वगैरे हजार आठ सै के अनुमान छै बड़ी तोपां च्यारि छै छोटी तोपां तथा गुबारा असी के अनुमान छै सो चैत सुदी छठ के दिन चामल सों दोई कोस ओली तरफ जाय पड़ी छै अब होनी सो जाणी जावसी ।"[2]

१९३:२ । महाकवि सूर्यमल की काव्य-कृतियां इस प्रकार है :—

१. वंश-भास्कर, २. वीर सतसई (अपूर्ण) ३. बलवन्त विलास, ४. छन्दो मयूख, ५. बलवद्विलास, ६. रामरंजाट, ७. सती रासो, ८. धातु रूपावली और ९. फुटकर छन्द ।

इन कृतियों में वंश-भास्कर और वीर-सतसई मुख्य हैं । वंश-भास्कर में राजस्थान का और मुख्यतः बूंदी का इतिहास काव्यबद्ध किया गया है । कवि ने चारणोचित स्वाभिमान के साथ निष्पक्ष रहते हुए वंश-भास्कर की रचना की इसलिये ऐतिहासिक दृष्टि से इसका विशेष महत्व है ।

---

१ – वीर सतसई, सं० डा० कन्हैयालाल सहल, पतराम गौड़ और डा० ईश्वरदान आशिया, बंगाल हिन्दी मण्डल, ८ रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता । भूमिका पृ० ७६ ।

२ – वही, पृ० ७९ ।

१६४:२ । वीर सतसई अपने ढंग की अद्वितीय रचना है। ब्रिटिश शासनकाल में वीर सतसई का पुस्तक रूप में प्रकाशन नहीं हो सका किन्तु इसके दोहे राजस्थानी जनता में चाव-पूर्वक कहे और सुने जाते रहे। सन् १८५७ के भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के वातावरण में वीर सतसई की रचना हुई। इस स्वाधीनता-संग्राम के शीघ्र ही समाप्त हो जाने से ही सम्भवतः सूर्यमल की वीर-सतसई पूर्ण नहीं हो सकी। वीर-सतसई अद्भुत आलंकारिक चमत्कारों के साथ ही कवि-कल्पना की अनूठी उड़ान और ठेठ-ठेठ राजस्थानी भाषा की दृष्टि से एक उत्कृष्ट रचना है।

१६५:२ । राजस्थान के गौरवमयी इतिहास में सतियों का विशेष स्थान है और हमारे कवि ने भी सतियों के गुणगान में किसी प्रकार कमी नहीं की है। सती होने के लिये उत्सुक वीरांगना के लिए महाकवि ने अनेक दूहों में अपने हृदयोद्गार प्रकट किये हैं। वीर-सतसई के उदाहरण इस प्रकार है —

नायण आज न मांड पग, काल सुणीजै जंग ।
धारां लागीजै धणी, तो दीजै धण रंग ॥
हूं पाछै आगई हुवे, आणी नाह सनेह ।
जे वाल्हो धण जीवऊ, आगे दूण करेह ॥
काळी छूड़ो की तजे, मंगळ वेळां गाय ।
रावत जाई डीकरी, सदा सुहागण होय ॥
आज घरे सासू कहै, हरख अचाणक काय ।
बहू बळेवा हूळसे, पूत मरेवा जाय ॥
बाला चाल म वीसरे, मो थण जहर समाण ।
रीत मरतां डील की, ऊ पियो धनमाण ॥
और जहर मुख आवियां, झट भेजे परवान ।
अतरो अंतर दूध में, मारे पड़ियां काम ॥
भोळा की डर भागियो, अन्त न पीड़े एण ।
बीजी दीठां कुळ बहू, नाचा करसी नेण ॥
पूत महा दुख पावियो, वय जोवण थण पाय ।
एम न जाण्यों आवही, जामण [illegible] व लजाय ॥
हूं बलिहारी राणियां, भ्रूण सिखावण भाव ।
नाळो बाढ़ [illegible] छुरी, माथे जणियो साव ॥

सूर्यमल ने अनेक गीतों की रचना की। इनके एक गीत का उदाहरण इस प्रकार है —

दगो विचारे फेरियो. अंगरेजां लोगां चौगड़द्दो,
तासा बंबी भड़ंदा, तेड़ियो नाग ताय।
भाळ धांचो फेरियो खेह री हूंत छायो भांण
बाघलो केहरी चैन घेरियो बलाय ॥१॥

मांचे खाग भाटां राचे तंवाई छ खंडा माथे,
रथां आट पाटां नदी बहाई रोसाग।
पाय थाटां जंग रूपी कुबाणा नवाई पांणा,
सत्राटां वेढियो थाटां सवाई सौभाग ॥२॥

सुणे घोर तासां आसमांण लागियो सीस,
सत्रां धू चैन रो खाग बागियो समूल।
कोपै 'हण' आसुरां विभाड़वा आगियो किनां
सिधुर पाडेवा सूतो जागियो सादूळ ॥३॥

देखतां एहवो जग धडक्के आगरो दिल्ली,
वंबी जैत माग रा रड़क्के बारंबार।
भड़क्के खाग रा बाढ़ भड़क्के कायरां झुण्ड,
हमल्लां नाग रा माथा रड़क्के हजार ॥४॥[1]

१९६:२। स्वाधीनता-संग्राम के असफल हो जाने से और उसके प्रति क्षत्रिय नरेशों की उदासीनता से सूर्यमल जी उदास रहने लगे। इनका देहान्त वि०सं० १९२० में हुआ।

(२) चारण कवि केसरीसिंहजी

१९७:२। चारण कवि केसरीसिंह जी बारहठ (सं १९२९-१९९८) राजस्थान में क्रांतिकारी दल के नेता थे, जिन्होंने मातृभूमि की सेवा में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था। इनके पुत्र प्रतापसिंह को भी ब्रिटिश शासन की कोपाग्नि का शिकार होना पड़ा। केसरीसिंह जी ने उदयपुर के महाराणा फतेहसिंह को "चेतावणी रा चूंगट्या" के रूप में राजस्थानी दोहे लिख कर सन् १९१२ के प्रसिद्ध दिल्ली - दरबार में जाने से रोक दिया था —

---

१ – राजस्थानी शब्द कोष, सं० श्री सीताराम लालस, रा० शो० सं
पृ० १५७।

पग पग भम्या पहाड़, धरा छांड़ राख्यौ धरम ।
(ईसूं) महाराणा र मेवाड़, हिरदे बसिया हिन्द रै ॥१॥
घण घलिया घमसांण, (तोई) राण सदा रहिया निडर ।
(अब) पेखतां फुरमाण, हलचल किम फतमल हुवै ॥२॥
गिरद गजां घमसाण, नहचें धर माई नहीं ।
(ऊ) मावै किम महारांण, गज दो सै रा गिरद में ॥३॥
ओरां ने आसाण, हाकां हरवळ हालणों ।
(पण) किम हाले कुल रांण, (जिम) हरवळ साहां हंकिया ॥४॥
नरियंद सह नजरांण, झुक करसी सरसी जिकां ।
(पण) पसरेलो किम पांण, पांण छतां थारो फता ॥५॥
सिर झुकिया सह साह, सींहासण जिण साम्हनै ।
(अब) रळणो पंगत राह, फाबे किम तोने 'फता' ॥६॥
सकळ चढावे सीस, दांन धरम जिणरो दियो ।
सो खिताब बख्सीस, लेवण किम ललचावसी ॥७॥
देखेला हिंदवाण, निज सूरज दिस नेह सूं ।
पण तारा परमांण, निरख निसासां न्हाकसी ॥८॥
देखे अंजस दीह, मुळकेलो मन ही मनां ।
दंभी गढ़ दिल्लीह, सीस नमंतां सीसवद ॥९॥
अंत बेर आखीह, 'पातळ' जो बातां पहल ।
(वे) रांण ! सह राखीह, जिण री साखी सिर जटा ॥१०॥
कठिन जमानो कौल, बांधे नर हीमत बिना ।
(यो) बीरां हंदो बोल, 'पातल' 'सांगे' पेखियो ॥११॥
अब लग सारां आस, रांण रीत कुळ राखसी ।
रहो साहि सुखरास, एकलिंग प्रभु आपरै ॥१२॥
मांन मोद सीसोद, राजनीत बळ राखणों ।
(ई) गवरमिंट री गोद, फळ मीठा दीठा फता ॥१३॥[1]

(३) महाराज चतुरसिंह जी

१९८:२ । महाराज चतुरसिंह जी (वि० सं० १९३६ – १९८६) का जन्म मेवाड़ के राजवंश में हुआ । इनके पिता का नाम महाराज सूरतसिंह जी था । महाराज सूरतसिंह जी बड़े विद्या-प्रेमी और भगवद्भक्त थे जिनका प्रभाव बचपन में ही चतुरसिंह जी पर हुआ ।

---

१ – राजस्थानी शब्द कोष, सं० श्री सीताराम जी लालस, प्रस्तावना, पृ० १७४ ।

अठारह वर्ष की आयु में चतुरसिंह जी का विवाह हुआ किन्तु दो कन्याओं के जन्म के पश्चात् इनकी पत्नी का देहान्त हो गया। तदुपरान्त ये उदयपुर के निकट कैलाशपुरी के मार्ग पर गुमेर गांव में एक झोंपड़ी बना कर रहने लगे।[१] चतुरसिंह जी अन्तिम समय तक सादगी से इसी झोंपड़ी में रहे और इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन योगाभ्यास, चिन्तन और राजस्थानी भाषा में जनोपयोगी साहित्य-निर्माण हेतु अर्पित कर दिया।

१९९:२। चतुरसिंह जी संस्कृत, हिन्दी और राजस्थानी भाषाओं के मर्मज्ञ थे। आपके लिखे पद मेवाड़ में रुचि पूर्वक गाये जाते हैं। इन्होंने अनेक विषयों पर लिखा, जिनमें राजस्थानी अनुवाद और राजस्थानी प्राइमर भी है। इनके रचित ग्रन्थ इस प्रकार हैं –

(१) भगवद्गीता की गंगाजली टीका, (२) परमार्थ विचार, (३) योग सूत्र की टीका, (४) सांख्य तत्व की टीका, (५) सांख्य कारिका की टीका, (६) मानव मित्र रामचरित्र, (७) शेष चरित्र (८) अलख पचीसी, (९) तुंही अष्टक, (१०) अनुभव प्रकाश, (११) चतुर चिंतामणी, (१२) महिम्नस्तोत्र, (१३) चन्द्रशेखराष्टक, (१४) हनुमान पंचक, (१५) समान बत्तीसी, और (१६) चतुर प्रकाश।[२]

२००:२। उक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त इनकी दो रचनाएं और भी हैं –

(१) मेवाड़ी प्राइमर[३] और (२) बालकां री बार।[४] इनका एक पद इस प्रकार है –

रे मन छन ही में उठ जाणो।
ईं रो नी है ठोड़ ठिकाणो, अरे मन छन ही में उठ जाणो॥
साथै कई नी लायो पेली, नी साथै अब आणो॥
वी वी आय मलेगा आगे, जी जो करम कमाणो॥ १॥

सो सो जतन करे ईं तन रा, आखर नी आपांणो।
करणो वे सो झट करलै, पछै पड़े पछताणो॥ २॥

दो दन रा जीवा रे खातर, क्यों अतरो ऐंठाणो।
हाथां में तो कई नी आयो, वातां में वेकाणो॥ ३॥

---

१ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, पं० मोतीलाल जी मेनारिया, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, पृ० २५८–२५९।

२ – वही।

३ – प्रकाशक – कपूरचन्द अग्रवाल, उदयपुर।

४ – प्रकाशक – हितैषी पुस्तक भंडार, उदयपुर।

कणी सीम पै गाम बसावै, कणी नीम कमठाणो ।
ई तो पवन पुरुप रा मेळा, "चातुर" भेद पिछाणो ॥ ४ ॥[1]

(४) नाथूदानजी महियारिया (जन्म सं० १९४८, वर्तमान)

२०१:२। कविवर नाथूदान जी महियारिया का जन्म चारणों की महियारिया शाखा मे हुआ। इनकी रचित अनेक काव्यात्मक रचनाएं हैं जिनमें "वीर सतसई" मुख्य है। वीर सतसई में वीर-वीरांगनाओं के मनोभाव सजीव रूप में चित्रित किये गये हैं।[2] वर्तमान में वीर-रस-निरूपण करने वाले कवियों मे नाथूदान जी अग्रणी हैं। इनके दोहों के कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं —

रण कर-कर रज-रज रंगै, रवि ढंकै रज हूंत ।
रज जेती धर नह दियै, रज-रज व्है रजपूत ॥ १ ॥

भड़ बांका बांकी खगां, बांको हाथ कबांण ।
तिहुं बांका आगळ रहै, जग सूधो सब जाण ॥ २ ॥

देख सखी मोटां गढ़ां, गोळा री झड़ियांह ।
कोय न वावै काकरो, भड़ री झूंपड़ियांह ॥ ३ ॥

सुत मरियो हित देस रै, हरख्यो बन्धु समाज ।
मां नहं हरखी जनम दे, जतरी हरखी आज ॥ ४ ॥

सुत आयो घावां सहित, अंजस थायो माय ।
पय पायो धोळै वरण, रातो वरण दिखाय ॥ ५ ॥

धव आयो घावां वहै, पावां रकत अतोल ।
मंग वळियां ही चूकसी, पग मंडणा रो मोल ॥ ६ ॥

चन्द उजाळै एक पख बीजै पख अंधियार ।
वळ दुहुं पक्ख उजाळिया. चन्दमुखी वळिहार ॥ ७ ॥

पिव केसरिया पट किया, हूं केसरिया चीर ।
नाहक लायो चूनड़ी, वळतो वेळां वीर ॥ ८ ॥

पड़ियो जोड़े वाप रे, पाग कसूमल सेत ।
बेटो घर आयो नहीं, घोळी बांधण हेत ॥ ९ ॥

खग तो अरियां सीम लो पिव घर आया आज ।
जिण खूंटी खग टांगता, उण पर टांगो लाज ॥ १० ॥

---

१ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, पं० मोतीलालजी मेनारिया, पृ० २५९ ।

२ - कविवर नाथूदानजी महियारिया, ले० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, राजस्थानी सा[हित्य]
राजस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलन की पत्रिका, १९४२ ई०, वर्ष १, अंक २ ।

ग. कतिपय अन्य उल्लेखनीय कवि

७.२.२। आधुनिक राजस्थानी काव्य को दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है — (१) परम्परागत शैली का आधुनिक राजस्थानी काव्य और (२) नवीन शैली का राजस्थानी काव्य। परम्परागत शैली के राजस्थानी काव्य में वीरता, भक्ति और श्रृंगार आदि विषयों में दोहे और गीत आदि लिखे जाते हैं। परम्परागत शैली में लिखने वाले कवि मुख्यतः प्राचीन राजस्थानी साहित्य के प्रेमी राजपूत चारणादि हैं। ऐसे कवियों की संख्या बड़ी है जो गांवों में निवास करते हुए स्वान्तःसुखाय अथवा जनरंजन हेतु परम्परागत शैली में राजस्थानी काव्यात्मक रचनाएं प्रस्तुत करते हैं। ऐसे कवियों में परम्परागत काव्यशास्त्रीय ज्ञान की कमी नहीं है। इन कवियों ने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्य लिखे हैं। मुक्तक लेखकों में चारण गीत लिखने वाले कवि भी हैं, जिन्होंने अनेक प्रकार के गीतों की रचनाएं काव्यशास्त्रीय नियमों के अनुसार सफलतापूर्वक की हैं। प्राचीन परम्परा के कवियों में — हिंगलाजदान कविया, उदयराज उज्जवल[1], रावल नरेन्द्रसिंह[2], चण्डीदान, पाबूदान, जोगीदान, रामनाथसिंह 'राही', रामसिंह सोलंकी, बलवन्तसिंह, कान्हीदान, ठाकुर नाहरसिंह, (आऊवा), देवकरणसिंह राठौड़, अजयदान बारहठ, रामसिंह तंवर, लक्ष्मणसिंह चांपावत[3], जुहारदान (पांचोटिया), रणवीरसिंह, बद्रीदान, अन्नदेवदान, हनुमन्तसिंह[4], राजा फतेहसिंह (आसोप) मुरारीदान, सांवलदान आसिया, केसरीसिंह, नाथूदान (मालाणी), नारायणसिंह भाटी[5], मनोहर शर्मा[6], केसरीसिंह[7], नानूराम[8], रेवतसिंह भाटी[9], सौभाग्यसिंह शेखावत[10], देवकरण बारहठ, मुकंदसिंह बीदावत[11], कविराव मोहनसिंह,[12] श्रीमती मानकुंवरी राव, रिडमलसिंह (जान्हवी), कविया मानदान, कविया कल्याणदान, मुकुन्ददान (बिरमी), शक्तिदान कविया, स्वरूपसिंह चूण्डावत आदि अनेक नाम उल्लेखनीय हैं।

---

१ – पूरसार, मानिया रा दूहा, ऊजल सन्देश, राजस्थानी शतक।

२ – वीरपूजा सतसई।

३ – रसाल।

४ – चिड़ियाळीड़ा गीत, सुरसत शतक।

५ – सांझ, मेघदूत, ओलूं।

६ – अरावली की आतमा, उमर खैयाम, गीत कथा, मेघदूत।

७ – दुर्गादास।

८ – कलायण, दसदेव, समय बायरो, बटोही, ग्योही।

९ – क्षत्रिय भजनावली, राम रहस्य, गोहिल-गौरवप्रकाश, बांका चरित्र, कल्मल चरित्र, छत्रसाल दसक, चंद्रसेन सतसई।

१० – रणरोल, मूंघा मोती, बादू रा बेटा, कह चकवा बात।

११ – बेलि भाटी संतानसिंघ री।

१२ – मृगया बावनी, रामशतक, नृपाल-पच्चीसी, जयमलोतां री नीसाणी, दुर्गा दुर्गाबावनी आदि।

२०३:२। नवीन शैली के राजस्थानी कवियों ने छायावादी, रहस्यवादी, प्रगतिवादी और प्रयोगवादी शैलियों मे भी अपनी रचनाएं प्रस्तुत की है। ऐसे कवियों ने अपनी रचनाओं में राजस्थानी प्रकृति का बहुविध रूप भी सफलतापूर्वक चित्रित किया है। अनेक कवियों ने संस्कृत, अंग्रेजी और हिन्दी कविताओं के सफल राजस्थानी पद्यानुवाद भी प्रस्तुत किये हैं। इतिहास-प्रेम और राष्ट्र-प्रेम भी अनेक कवियों ने अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। नवीन शैली में अनेक राजस्थानी गीत भी इन कवियों ने लिखे, जिन्हें रुचिपूर्वक गाया और सुना जाता है।

२०४:२। नवीन शैली के राजस्थानी कवियों में निम्नलिखित नाम विशेष उल्लेखनीय हैं–

मनोहर शर्मा[1], नारायणसिंह भाटी[2], भरत व्यास[3], श्रीमंत कुमार व्यास, नानुराम संस्कर्ता[4], चन्द्रसिंह[5], मेघराज मुकुल[6], कन्हैयालाल सेठिया[7], विश्वनाथ शर्मा विमलेश[8], मनोहर प्रभाकर[9], रेवतदान चारण[10], गणेशीलाल व्यास[11], गजानन वर्मा[12], गणपतिचन्द्र भण्डारी[13], रावत सारस्वत[14], किशोर कल्पनाकांत[15], सीताराम महर्षि, भीम पण्डया[16], रामनिवास हारीत,

१ – गात कथा, अनुवादित काव्य–मेघदूत, उमर खय्याम, अन्योक्तिसतक, गीता, और धम्मपद।

२ – दुर्गादास, परमवीर, और मेघदूत (अनुवाद)।

३ – रजपूत, दिवाली, ऊंट सुजान, चंदरण।

४ – दिवले री जोत, बादल दसदेव, कलायण, सर्म वायरो, बटोही।

५ – गीत, लू, बादली, कहमुकरणी।

६ – माटी मुलकी बीज पसीज्या, छियां तावड़ो, चंवरी, सेनाणी।

७ – रमणियें रा सोरठा, मींझर।

८ – सत पकवानी, छेड़खानी, गीता।

९ – मेघदूत, भरतरी सतक।

१० – चेत मानखा।

११ – अल्पबचत।

१२ – धरती रा गीत, सोनो नीपजे रेत में, धरती री धुन और बारामासा।

१३ – रत्नदीप।

१४ – स्फुट गीत

१५ – अनुवादित– कुमार सभव, ऋतुसंहार, धरती रा गीत।

१६ – हाथ सूं कतर लीनो बोरलो।

कृष्णगोपाल कल्ला[1], मदनगोपाल शर्मा[2] मनोहर मृदुल, मांगीलाल व्यास[3], शान्तिलाल भारद्वाज[4], रामनाथ व्यास[5], रतनलाल दाधीच, सत्यप्रकाश जोशी[6], कल्याणसिंह राजावत[7], रामदेव आचार्य, भगवान सहाय त्रिवेदी, कमलाकर, नन्दकिशोर पारीक, श्रीमता राजलक्ष्मी, जगमोहनदास मूंदड़ा, गंगाप्रसाद शास्त्री, अम्बु शर्मा, इन्दुबाला पुरी, गणपति स्वामी, कैप्टिन मोतीसिंह, धोंकलसिंह, सुमेरसिंह शेखावत[8], गंगाराम पथिक, आज्ञाचंद भण्डारी, लक्ष्मणसिंह रसवंत, रघुनाथसिंह, भिक्षुदान, वृद्धिशंकर त्रिवेदी, अश्विनीकुमार चित्तौड़ा, बुद्धिप्रकाश, गणपतलाल डांगी, भगवतीलाल व्यास, ब्रजमोहन शर्मा आदि।

घ. आधुनिक काव्य की प्रधान प्रवृत्तियां

२०५:२। आधुनिक राजस्थानी काव्य की प्रधान प्रवृत्तियां इस प्रकार हैं —

(१) स्वाधीनता-प्रेमी और अपनी मान-मर्यादा की रक्षा हेतु मर मिटने वाले वीरों और वीरांगनाओं की गाथाएँ युग के अनुसार नवीन रूप में प्रस्तुत करना आधुनिक काल की प्रधान प्रवृत्ति रही है। वीरों मे महाराणा प्रताप, राजसिंह, अमरसिंह राठोड़, दुर्गादास राठोड़, सुजानसिंह शेखावत, पाबूजी राठोड़, बल्लूजी चांपावत, जगदेव पंवार, सांगा गौड़, ऊडणो पिरथीराज, संगमराव, मानसिंह झाला, मूंडाजी, भारत-चीन युद्ध मे वीरगति प्राप्त करने वाले परमवीर शैतानसिंह और परम वीर पं.हरसिंह, महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, और सुभाषचन्द्र बोस आदि के उदात्त चरित्र आधुनिक कवियों के लिये विशेष आकर्षण रहे है। वीरांगनाओं मे पद्मिनी, करणावती, पन्ना धाय, हाड़ी रानी, झांसी की रानी लक्ष्मी बाई आदि के चरित्र रुचिपूर्वक चित्रित किये गये है।

(२) पौराणिक देवी-देवताओं में राम, कृष्ण, सीता, राधा, रुक्मिणी, हनुमान, दुर्गा, शिव, पार्वती और गणेश आदि के चरित्र लिखे गये हैं। राजस्थानी कवियों ने अनेक प्रसंगों मे नवीन भावों का आरोपण भी पौराणिक चरित्रों में किया है।

---

१ – झांझरको।

२ – कुमारसंभव का अनुवाद।

३ – भैरों बावनी।

४ – स्फुट गीत

५ – हिवड़ै रा बोल, अनुवाद गीतांजलि।

६ – राधा, दीवा कांपे क्यूं।

७ – रामतिया मत तोड़।

८ – चांदणी, दिरखा, देवल, कंकाली।

२०३:२। नवीन शैली के राजस्थानी कवियों ने छायावादी, रहस्यवादी, प्रगतिवादी और प्रयोगवादी शैलियों में भी अपनी रचनाएं प्रस्तुत की है। ऐसे कवियों ने अपनी रचनाओं में राजस्थानी प्रकृति का बहुविध रूप भी सफलतापूर्वक चित्रित किया है। अनेक कवियों ने संस्कृत, अंग्रेजी और हिन्दी कविताओं के सफल राजस्थानी पद्यानुवाद भी प्रस्तुत किये हैं। इतिहास-प्रेम और राष्ट्र-प्रेम भी अनेक कवियों ने अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। नवीन शैली में अनेक राजस्थानी गीत भी इन कवियों ने लिखे, जिन्हें रुचिपूर्वक गाया और सुना जाता है।

२०४:२। नवीन शैली के राजस्थानी कवियों में निम्नलिखित नाम विशेष उल्लेखनीय हैं –

मनोहर शर्मा[1], नारायणसिंह भाटी[2], भरत व्यास[3], श्रीमंत कुमार व्यास, नानुराम संस्कर्ता[4], चन्द्रसिंह[5], मेघराज मुकुल[6], कन्हैयालाल सेठिया[7], विश्वनाथ शर्मा विमलेश[8], मनोहर प्रभाकर[9], रेवतदान चारण[10], गणेशीलाल व्यास[11], गजानन वर्मा[12], गणपतिचन्द्र भण्डारी[13], रावत सारस्वत[14], किशोर कल्पनाकांत[15], सीताराम महर्षि, भीम पण्ड्या[16], रामनिवास हारीत,

---

– गीत कथा, अनुवादित काव्य–मेघदूत, उमर खय्याम, अन्योक्तिसतक, गीता, और धम्मपद।

– दुर्गादास, परमवीर, और मेघदूत (अनुवाद)।

३ – रजपूत, दिवाली, ऊंट सुजान, चंदणा।

४ – दिवले री जोत, बादल वसदेव, कलायण, सर्म वायरो, बटोही।

५ – गीत, लू, बादली, कहमुकरणी।

६ – माटी मुलकी बीज पसीज्या, छियां तावड़ो, चंवरी, सेनाणी।

७ – रमणियै रा सोरठा, मींझर।

८ – सत पकवानी, छेड़खानी, गीता।

९ – मेघदूत, भरतरी सतक।

१० – चेत मानखा।

११ – अल्पवचन।

१२ – धरती रा गीत, सोनो नीपजे रेत में, धरती री धुन और बारामासा।

१३ – रक्तदीप।

१४ – स्फुट गीत

१५ – अनुवादित– कुमार सम्भव, ऋतुसंहार, धरती रा गीत।

१६ – हाथ सूं कतर लीनो बोरलो।

(ग) मनोरंजनात्मक गद्य,

(घ) अभिलेखों का गद्य,

(ङ) व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष आदि विषयक गद्य।

क. धार्मिक गद्य

२०८:२। प्राचीन राजस्थानी धार्मिक गद्य मुख्यतः (अ) जैनियों और (आ) ब्राह्मणों द्वारा रचित है।

(अ) जैन गद्य के रूप

२०९:२। (१) टीका। जैन टीकायें टब्बा और बालावबोध के रूप में लिखी गई है। टब्बा के अन्तर्गत मूल पाठ पत्र के मध्य मे लिखा गया है और उसकी विविध टीकाओं के रूप में टब्बा हाशिये पर लिखा जाता है। टब्बा का रूप बहुत संक्षिप्त होता है। टब्बा का उदाहरण इस प्रकार है —

"जेहे परब्रह्म केवल ज्ञान प्रामिउं। दुर्लभ मुक्ति रूप लाभ छई जेहनई। जेहे संरंभ पदार्थ नु आरोप मुंक्यउ। त्रिभुवन रूप घर धारिवा स्तंभ समान। ते सिद्ध शरणि हूजे हे आरम्भ छोड़िया। इम सिद्धनई शरणि करो। न्याय सहित ज्ञान नूं कारण।"[1]

२१०:२। (२) बालावबोध प्रकार की टीका विस्तृत और सुबोध होती है। मूल पाठ का विवेचन प्रसंगानुकूल विविध दृष्टान्तों सहित विस्तार से होता है। बालावबोध का एक उदाहरण इस प्रकार है —

"महापुर नगर। भोज राजा। लक्ष्मण श्रेष्टि। तेहनई नदा बेटी श्राविका। बाप वर चिंता करइ। तिसइं बेटी कहइ। जीनिइं दीवइं काजल नहीं, कालिक न हुइ, जिहां दसा वाटि फूटइ जे सदैव स्थिर हुई, जिहां चीपड़ फूटइ नहीं एहवुं दीवउ जेहनइं घरि सदा रहइ ते वर टाल्यी बीजउ न परणउ। सेठि चिंता पडिउं।"[2]

२११:२। (३) मौलिक ग्रंथ — मौलिक ग्रन्थों में मुख्यतः व्याकरण का विवेचन होता है। मौलिक ग्रन्थ का उदाहरण इस प्रकार है —

---

१ – तरुणप्रभ सूरि रचित 'षडावश्यक पदना टब्बा', ह० प्र० अनय जैन ग्रन्थालय बीकानेर।

२ – षडावश्यक बालावबोध (१६वीं शताब्दी), ह०प्र० अनय जैन ग्रन्थालय, बी.

(३) वीर रस की सर्वांगपूर्ण अभिव्यक्ति अनेक कवियों में लक्षित होती है। महाकवि सूर्यमल की परम्परा में रचित नाथूदान महियारिया की वीर-सतसई उक्त कथन का उत्तम उदाहरण है।

(४) मूमल और ढोला-मरवण जैसे राजस्थानी प्रेमाख्यान भी हमारे कवियों को आकर्षित करते रहे हैं।

(५) प्रकृति-वर्णन सम्बन्धी रचनाओं में आधुनिक राजस्थानी कवियों ने वर्षा, बादल, बिजली, तारों छाई रात, श्रावण की सांझ आदि के साथ ही सुविस्तृत मरुस्थलीय टीबों, कड़कती गर्मी, लू, ठंडी हवाओं आदि का भी सजीव वर्णन किया गया है। वनस्पतियों में खेजड़ा, बम्बूल, नीम आदि के वर्णन विशेष मनोरम हुए हैं। प्रकृति वर्णन करते समय कवियों ने राजस्थान के पहाड़ों, जलाशयों और खानों को भी नहीं भुलाया है।

(६) गीत लेखकों ने अपनी नवीनतम भावनाओं की अभिव्यक्ति लोकप्रचलित गीत-शैलियों में सफलता पूर्वक की है। अनेक गीत शास्त्रीय राग-रागनियों में भी गेय हैं।

(७) साम्यवाद से प्रभावित काव्यात्मक रचनाओं की न्यूनता नहीं है। इन रचनाओं में कृषकों, मजदूरों और अन्य शोषित वर्गों का पक्ष-समर्थन सशक्त वाणी में किया गया है।

(८) पद्यानुवादों में संस्कृत, अंग्रेजी, और हिन्दी रचनाओं के साथ ही बंगला रचनाओं के अनुवाद हुए हैं। उमर खैय्याम की रुबाईयों ने भी राजस्थानी कवियों को पद्यानुवाद की ओर प्रेरित किया है।

(९) प्रबन्ध काव्यों की अपेक्षा मुक्तक रचनाओं की ओर आधुनिक कवियों का विशेष ध्यान रहा है।

८. राजस्थानी गद्य साहित्य

२०६:२। राजस्थानी गद्य १३वीं शताब्दी से आधुनिक काल तक अविच्छिन्न रूप में उपलब्ध होता है। अनेक भारतीय भाषाओं में प्राचीन गद्य का अभाव है किन्तु राजस्थानी में प्राचीन गद्य के विविध रूप प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

२०७:२। प्राचीन राजस्थानी गद्य के प्रमुख रूप इस प्रकार हैं —

(क) धार्मिक गद्य,

(ख) ऐतिहासिक गद्य,

(ग) मनोरंजनात्मक गद्य,

(घ) अभिलेखों का गद्य,

(ङ) व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष आदि विषयक गद्य।

क. धार्मिक गद्य

२०८:२। प्राचीन राजस्थानी धार्मिक गद्य मुख्यतः (अ) जैनियों और (आ) ब्राह्मणों द्वारा रचित है।

(अ) जैन गद्य के रूप

२०९:२। (१) टीका। जैन टीकायें टब्बा और बालावबोध के रूप में लिखी गई है। टब्बा के अन्तर्गत मूल पाठ पत्र के मध्य में लिखा गया है और उसकी विविध टीकाओं के रूप में टब्बा हाशिये पर लिखा जाता है। टब्बा का रूप बहुत संक्षिप्त होता है। टब्बा का उदाहरण इस प्रकार है —

"जेह परब्रह्म केवल ज्ञान प्रामिउं। दुर्लभ मुक्ति रूप लाभ हुई जेहनई। जेह संरंभ पदार्थ नु आरोप कुं वदउ। त्रिभुवन रूप घर धारिवा स्तंभ समान। ते सिद्ध शरणि हुजे हे आरम्भ छोड़िया। इम सिद्धनइं शरणि करो। न्याय सहित ज्ञान नूं कारण।"[1]

२१०:२। (२) बालावबोध प्रकार की टीका विस्तृत और सुबोध होती है। मूल पाठ का विवेचन प्रसंगानुकूल विविध दृष्टान्तों सहित विस्तार से होता है। बालावबोध का एक उदाहरण इस प्रकार है —

"महापुर नगर। भोज राजा। लक्ष्मण श्रेष्टि। तेहनइं नदा बेटी श्राविका। बाप वर चिंता करइ। तिनइं बेटी वहइ। जीनिइं दीवइं काजल नहीं, कालिक न हुइ, जिहां दशा वाटि फूटइ जे सदैव स्थिर हुइं, जिहां चोपइ फूटइ नहीं एहवु दीवउ जेहनइं घरि सदा रहइ ते वर टाली बीजउ न परणउ। सेठि चिता पडिउं।"[2]

२११:२। (३) मौलिक ग्रंथ — मौलिक ग्रन्थों में मुख्यतः व्याकरण का विवेचन होता है। मौलिक ग्रन्थ का उदाहरण इस प्रकार है —

---

१ – संवेगदेव गणि रचित 'चउशरण पयन्ना टब्बा', ह० प्र० अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

२ – षडावश्यक बालावबोध (१६वीं शताब्दी) ह०प्र० अभय जैन ग्रन्थालय, बी

"करिस्यइ, लेसिइ, देस्यंइ इत्युच्चारे भविष्यत्काले भविष्यंति परस्मै पदं। करीसिइ, लीजिसइ, इत्युच्चारे आत्मने पदं ॥७॥"[1]

२१२:२। (४) कथा ग्रन्थ — जैन साहित्यकारों ने अनेक गद्य कथाओं का निर्माण किया जिनमें धार्मिक सिद्धान्तों को जनता के लिए सरलतापूर्वक समझाया गया है। जैन कथा का उदाहरण इस प्रकार है —

"तुरूमणि नगरीइं दत्त ब्राह्मणि महुन्तइ राज्य आपणइ वसि करो आणि जितशत्रु राजी काढ़ी आपण पइ राज्य अधिष्ठिउं। धर्म नों बुद्धइं घणा याग यजिया। एक बार दत्त ना माउता श्री कालिकाचार्य गुरुभाणेज राजा भणा तीणइं नगरि आविया। मामउ मणीदत्त गुरु कन्हइ गिउ। भाग नुं फल पूछवा लागु। गुरे कहिउं जीवदया लगइ धर्म हुइ।"[2]

२१३:२। चरित्र ग्रंथ — जैन लेखकों ने चरित्र ग्रंथों में अनेक तीर्थंकरों, महापुरुषों और सतियों आदि के चरित्र राजस्थानी गद्य में प्रस्तुत किये हैं। सीता चरित्र का उदाहरण इस प्रकार है —

"इहैव भरत खेत्रे मिथिला नगरभ्यां नगरी रहिप्यमीए समृद्धा चउरासी चौहटा बहत्तरि पावटा अनेक बावड़ी पुष्करणी कुयार तलाब महाद्रइ खण्डोखली तिंका संख्या काई नहीं। अति ही मनोहर प्रधान इत्यादि सरोवरादि फल-फूल पत्र कूपल लतायें करि विराजमान वनखण्ड वृक्ष करि विराजते शोमते।"[3]

२१४:२। (६) पट्टावली और गुर्वावली — जैन लेखकों ने पट्टावली और गुर्वावली के अन्तर्गत क्रमशः अपनी पट्ट परम्परा और गुरु परम्परा का राजस्थानी गद्य में वर्णन किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसी रचनाओं का विशेष महत्व है। पट्टावली का उदाहरण —

"पंचनदी साधक सिंधु देशि अनेक अवदात कारक श्री जिनदत्त सूरि सं १२११ आसाढि सुदि ११ अजयमेरु नगरि स्वर्ग प्राप्त हुउ। सं० १२०५ वर्षे जिनसेखर सूरि हूँति रुद्रपल्लीय गच्छ हुअउ। श्री जिनदत्त सूरि नइ पाटि सं० ११६३

---

१ – जय सागरोपाध्याय कृत "उक्ति समुच्चय" (१७वी शताब्दी) ह०प्र० अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

२ – कालिकाचार्य की कथा (सं० १५६७-१५११ई०), डा० एल०पी० तेस्सितोरी, नोट्स आन दी ओल्ड वेस्टर्न राजस्थानी, इंडियन एन्टीक्वेरी (१९१४ से १९१६)।

३ – सीता चरित्र भाषा, श्री अगरचन्द नाहटा, मरुभारती में प्रकाशित खोये पन्ने, ह०प्र० अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

भाद्रवा सुदि ८ जेहनउ जन्म रागन्न श्रावक देल्हणदेवी नउ पुत्र सं० १२०३ फागुण सुदि ६ दिने ।"[1]

गुर्वावली का उदाहरण इस प्रकार है —

"जिनहंस सूरिनइ वारइ सं० १५६६ श्री शांति सागराचार्य थकी आचार्या गच्छ जुअउ थयउ। तेहनेइ पाटि श्री जिनमाणिक्य सूरि सं० १५८२ भाद्रवा सुदि ६ बलाही देवराज कारित नंदी महोत्सवइ। श्री जिनहंस सूरइ श्रापणइ हाथि थाप्या।"[2]

२१५:२। (७) नीति ग्रन्थ — जैन लेखकों ने अनेक गद्य-ग्रन्थ धार्मिक शिक्षा-प्रचार की दृष्टि से लिखे। ऐसे ग्रन्थों मे धार्मिक नियमो का विस्तृत वर्णन है। उदाहरण —

"कोइनी निंदा करवी नहि। कोइनु मर्म प्रकाशवु नहि। कोइ साथे इर्षा करवी नहि। सर्व साथे मित्र भाव राखवोजी। कोई साथे शत्रु भाव राखवो नहि। सदाय लज्जावंत रहेवुंजी। कदापि निर्लज्जता धारण करवी नहि।"[3]

२१६:२। (८) विज्ञप्ति पत्र, नियम पत्र और समाचारी आदि — जैन लेखकों ने साधु-साध्वियों और श्रावकों आदि के लिए विभिन्न विषयक व्यवहार-सम्बन्धी नियम पत्रों में लिखे है। नियम पत्र का उदाहरण इस प्रकार है —

"साधु साध्वीनइ जे पुस्तक पाना जोइयइ ते भिन्न-भिन्न श्रावकनइ न कहणा, यथायोग्य ते संघनइ कहणा, श्री संघइ यथा योग्य चिंता करणी।"[4]

समाचारी का उदाहरण इस प्रकार है —

"धनागरा माहि धाणा सूठ हरड़इ दाख खारक ए सहु एक द्रव्य। परेद्रव्य पपरदाण ना धणी जूदा २ न खाइ एकठा करी खाइ तउ एक द्रव्य।"

विज्ञप्ति पत्रों मे विभिन्न नगरों के श्रावकों की ओर से आचार्यों की सेवा में चातुर्मास, निवास आदि के लिए निवेदन किये गये है। अनेक विज्ञप्तिपत्र सचित्र भी उपलब्ध होते हैं

---

१ – खरतर गच्छ पट्टावली, ह०प्र० अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।
२ – खरतर गच्छ गुर्वावली, ह०प्र० अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।
३ – हुक शिक्षा विषे हुवा बोल, श्रीमत्यादईचंदप्रकरणमाला, भाग १, प्र०का० १६१३।
४ – ५ – युग प्रधान श्री जिनचन्द्र सूरि, श्री अगरचन्द नाहटा, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, परिशिष्ट (क)।
५ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० ३४१।

जिनमें सम्बन्धित नगरों के विभिन्न दृश्यों का चित्रण होता है।[1] विज्ञप्ति-पत्र के गद्य का उदाहरण इस प्रकार है —

"सबी भट्टारकजी री पुज्य श्री श्री जिन भक्ति जी री छै करावत वणारसीजी श्री श्री नन्दलालजी पठनार्थ ॥द०॥ मथेन अखैराम जोगीदासोत श्री बीकानेर मध्ये चित्र संजुक्ते ॥श्री॥श्री॥"[2]

(आ) जैनेतर धार्मिक गद्य —

२१७:२। जैनेतर धार्मिक गद्य पौराणिक विषयों पर और ईसाई पादरियों द्वारा राजस्थानी भाषा की विभिन्न बोलियों-मेवाड़ी, मारवाड़ी, बीकानेरी, ढूंढाड़ी, हाड़ौती तथा मालवी के अनुवादों के रूप मे उपलब्ध होता है।

गोरखपंथी राजस्थानी गद्य का एक प्राचीन उदाहरण उपलब्ध होता है जिसको आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लगभग १४वीं शताब्दी का माना है —

"श्री गुरु परमानन्द तिनको दंडवत है। हैं कैसे परमानन्द आनन्द स्वरूप है, सरीर जिन्हि को। जिन्ही के नित्य गाये ते सरीर चेतन्नि अरु आनन्दमय होतु है। मैं जु हौं गोरिख तो मछन्दरनाथ को दंडवत करत हूँ। हैं कैसे वे मछन्दरनाथ। आत्मा ज्योति निस्चल है अन्तःकरण जिनको अरु मूल द्वार ते छइ चक्र जिनि जाकी तरह जाने। अरु जुग काल कल्प इनिकी रचना तत्व जिनि गायो। सुगंध को समुद्र तिनि को मेरी दंडवत। स्वामी तुमै तो सतगुरु अम्है तो सिख। शब्द एक पूछिबो दया करि कहिबो मनि न करिबो रोस।"[3]

रामायण, महाभारत, भागवतादि विविध पुराणों, व्रत-माहात्म्य आदि के राजस्थानी गद्यानुवाद प्रचुर मात्रा में हस्तलिखित ग्रन्थ-संग्रहालयों में प्राप्त होते हैं।

२१८:२। ऐतिहासिक गद्य निम्नलिखित रूपों में मिलता है —

क. ख्यात — सीसोदियां री ख्यात, राठोडां री ख्यात, जाड़ेचां री ख्यात, कछावां री ख्यात, मुहणोत नेणसी री ख्यात, बांकीदास री ख्यात, महाराजा मानसिंह री ख्यात, जोधपुर री ख्यात,

---

१ – क – राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, केन्द्रीय संग्रहालय, जोधपुर।
ख – अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

२ – बीकानेर का एक सचित्र विज्ञप्ति लेख, भंवरलालजी नाहटा, राजस्थान भारती, भाग २, अंक ३-४, जुलाई १९५३, पृ० ६८।

३ – हिन्दी साहित्य का इतिहास, हिन्दी गद्य, पृ० ४०३।

उमरावां री ख्यात, बीकानेर री ख्यात, देवलिये रा धणियां री ख्यात, चहुवांण सोनगरा री ख्यात ।

ग. वात — राणा उदैसिंघ री वात, हाड़ा सुरजमल री वात, राव बीकेजोरी वात, जैसलमेर री वात, पाबूजी री वात, राणा कुम्भा चितभरमिया री वात, राव लूणकरण री वात, सोढ़ा री वात, आदि ।

घ. विगत — गेहलोतां री चोवीस साखां री विगत, मेवाड़ रा भाखरां री विगत, सीसोदिया चुड़ावतां री साख री विगत, जोधपुर बीकानेर टाकायतां री विगत, जोधपुर रा निवांणा री विगत, गढ़ कोटां री विगत, कछवाहां सेखावतां री विगत, बिदावतां री विगत, आदि ।

ङ. पीढ़ी — ईडर रा धणी राठोड़ां री पीढ़ियां, राठोड़ां रे खापां री पीढ़ियां, हमीरोत भाटियां री पीढ़ियां, आहाड़ा री पीढ़ियां, भायला री पीढ़ियां, चन्द्रावतां री पीढ़ियां इत्यादि ।

छ. वंसावली — राठोड़ां री वंसावली, राजपूतां री वंसावली, जैसलमेर रा भाटी महारावल री वंसावली, झाला री वंसावली, बीकानेर रे राठोड़ राजावां री वंसावली, उदेपुर रा राजावां री वंसावली, आदि ।

ज. दवावैत, वैत — नरसिंह दास गौड़ री दवावैत, जिन सुख सूरिजोरी दवावैत, जिनलाभ सूरि दवावैत, वैत महाराणा जी श्री शंभूसिंघ जी री राव वखतावर री कही, आदि ।

झ. वचनिका — अचलदास खींची री वचनिका (शिवदास चारण कृत), वचनिका राठोड़ रतनसिंह जी री महेस दासोत री (जग्गा खिड़िया रचित), आदि ।

क. ख्यात —

२१६:२ । ख्यात शब्द इतिहास का सूचक है । मुसलमान इतिहासकारों के अनुकरण से राजस्थानी इतिहासकारों ने राजस्थानी गद्य में विभिन्न राजवंशों से सम्बन्धित अनेक ख्यातें लिखी हैं । ख्यात के गद्य का एक उदाहरण इस प्रकार है —

'साहुता रा मगरा सूं उतर नं सहर छै । दीवाण रा मोहल पीछोला री पाल ऊपर छै । साहुतां री आथवण सूं तलाव लगतां सहर छै । कोस दो रे फे

छै । सहर री एक कानीं माछला रो मगरो छै । एकण कानो खरक दिस सिंसरवा रो मगरो छै । तलाव घणों भरीजे तर पाणी मगरै तांई जाय छै ।"[1]

ख. वात —

२२०:२। वात अथवा वार्ताएं ख्यात से छोटी होती हैं। बहुधा एक ख्यात के अन्तर्गत अनेक वातों अथवा वार्ताओं का समावेश रहता है। वात और वार्ताएं काल्पनिक भी होती हैं। कथानक, विषय, भाषा, रचना-प्रकार, शैली और उद्देश्य की दृष्टि से वात अथवा वार्ताएं अनेक प्रकार की मिलती हैं।[2] वात का एक उदाहरण इस प्रकार मिलता है —

"पिंगल राजा सांवतसी देवड़ा नूं आदमी मेल कहायो - अबे थे आणो करो। तद सांवतसी घणों ही विचारियो पण वात बांध कोई वैसे नहीं। कुंवरी नै ऊभणों दे मेलीजे। तद ऊठ, घोड़ा, रथ, सेजवाल, खवास, पासवान, साथे हुवा सो उदैचंद खमें नहीं।"[3]

ग. विगत —

२२१:२। विगत में किसी विषय का विस्तृत वर्णन होता है। विगत का उदाहरण इस प्रकार है —

"मोहिल अजीत ने राणों वछो इयांरा राजथांन लांडनु ने छापर हुतो नै द्रुणपुर मोहिल कान्हो वस्तो। पछे महाराई श्री जोधजी सगलाणु मारि ने मोहिले रे री धरती ने नै राजि श्री वीदेजी नुं रापीयो।"[4]

घ. पीढ़ी ङ. वंशावली —

२२२:२। पीढ़ी और वंशावलियों में प्रमुख ऐतिहासिक व्यक्ति की वंश परम्परा अथवा सम्पूर्ण वंश का गद्यात्मक वर्णन होता है। ऐसी रचनाओं में सामान्य व्यक्तियों के नामोल्लेख मात्र होते हैं किन्तु प्रमुख व्यक्तियों का वर्णन विशेष होता है। पीढ़ी का उदाहरण इस प्रकार है —

---

१ – मुहता नैणसी री ख्यात, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।

२ – राजस्थानी शब्द कोष, सम्पादकीय प्रस्तावना, १८९-१९०।

३ – ढोला मारू री वात, लि० का० सं० १८७२, राजस्थानी शब्द कोष, संपादकीय प्रस्तावना, पृ० १९८।

४ – क – ए डिस्क्रिप्टिव केटलाग, खंड एक, भाग २, डॉ० एल० पी० तेस्सीतोरी, पृ० १९-२०।

ख – ह० प्र० सं० २३३।७।७, अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर।

"नीरवाणा री साप । निरवाणं पैहली देवड़ा था । देवड़ायां निरवाण कहाणां. निरवाणं सीरोही था आय कनरसी आल्हणोत कान्हा पांडेलो लीयो । उदैपुर लीयो । पछे वसी गांव सोलहर पांडेला नजीक छै तठे रायो । पछै कछवाहो रायमल सूजावत लडु मोजावतने मोपा हेमा रा कान्हा पांडेलो लीयो तरै निरवाणा पा पांडेलो छुटो ।'[1]

वंशावली का उदाहरण इस प्रकार है —

"पछै सुलतान री फौजां नै दिल्ली री फौजां ले नै राव चूंडै ऊपर नागौर आयो । राव चूंडो नागौर मारियो पछै केल्हण अठो आयो ।"[2]

ख. दवावैत, वैत —

२.२३.२ । हमारे साहित्य में दवावैत संज्ञक रचनाओं की एक सुदीर्घ परम्परा है ।[3] फारसी और तुर्की आदि मुस्लिम भाषाओं में दुबैतों का प्रयोग उपलब्ध होता है । तारीखे फिरोजशाही के अनुसार दिल्ली का खिलजी सुल्तान जलालुद्दीन भी दुबैती लिखता था ।[4] दवावैत शैली के उद्गम और विकास के विषय में हमारे विद्वान अब तक मौन हैं । ज्ञात होता है कि 'दुबैती' के प्रभाव से ही दवावैत शैली का प्रचलन हुआ है । दवावैत के दो भेद हैं — गद्यबन्ध और पद्यबन्ध ।[5] गद्यबन्ध में मात्राओं आदि का नियम नहीं होता और पद्यबन्ध में यह नियम होता है। दवावैत में तुकान्त वाक्य लिखे जाते हैं । दवावैत शैली की अनेक रचनाओं में खड़ी बोली का प्रभाव विशेष दृष्टव्य है । दवावैत का उदाहरण इस प्रकार है—

"आ बात सुणता ही डेरा बारे कीधा । अर गढ़ तोड़वा का सारा ही सामान साथ लीधा । बड़ी बड़ी तोपां घणा जुटां धी खींची हाले । जिकां रे पाछै मस्त हाथी ठला देण नूं चाले । बाणां रा ऊंट ठाटड़ियां का ठाट । जिकां में बड़ी छोटी कैई घाट ।"[6]

"ऐसा गढ़ जोधाण और सहर का दसाव । जिसके चौतरफ को बागीचू का डंबर और दरियाऊ का बणाव । पहिले बागीचू की सोभा कहिके दिखाया । पीछे दरियाऊ की तारीफ जिसके गुन गाया ।"

---

१ – निरवांणा री पीढ़ियां, डिस्क्रिप्टिव केटलाग, सैक्शन १, भाग १, डॉ० एल. पी. तेस्सीतोरी, पृ० ३९ ।

२ – राठौड़ां री वंशावली (सं० १६००), राजस्थानी शब्द कोष, पृ० १९२ ।

३ – दवावैत संज्ञक हिन्दी रचनाओं की परम्परा (श्री अगरचन्द नाहटा), भारतीय साहित्य, विश्व विद्यालय, आगरा, अप्रेल १९५६, पृ० २९७ ।

४ – खिलजी कालीन भारत, पृ० १५ ।

५ – रघुनाथ रूपक गीतां रो, सं० मेहताबचन्द खारेड़ ।

६ – राजस्थानी साहित्य-संग्रह भाग २, सं० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, पृ० ३९ ।

७ – सूरजप्रकाश (सं० १७८७), सं० सीतारामजी लालस, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ।

तीजों की त्यारी हर सन सन पै होती थी ।
सो भी हम देषो अन उपमा तै स्होती थी ।।
बारी महलूं में छिब्र अब के अवलोकी थी ।
परदै चग चंदवा झल झलरों की झांबी थी ।।
पानुस को पंकत लग बत्यों बनवाई थी ।
नीके अव उरध कै झारन रूसताई थी ।।[1]

छ. वचनिका —

२२४:२ । वचनिका के पद्यबन्ध और गद्यबन्ध नामक दो भेद दवावैत की तरह ही बताये गये हैं —

वैत दवा जिम वचनका, पद गद बंध प्रमाण ।
दुय दुय विध तिणरो दखूं सुणजें जका सुजाण ।।[2]

प्राप्त वचनिका संज्ञक रचनाओं में गद्यबन्ध और पद्यबन्ध दोनों ही प्रकार की वचनिकाओं का मिश्रण हुआ है —

"पग पग पउलि पउलि हस्ती की गजघटा । तौ उपरि सात सात सै जोध धनक धर सांवठा । सात सात औलि पाइक को बैठो । सात सात आलि पाइक ऊठी । खेडा उदण मुदं फरफरी । चुंहचकी ठाइं ठाइं ठठरी ।"[3]

३) मनोरंजनात्मक गद्य

२२५:२ । मनोरंजनात्मक गद्य में मनोरंजनात्मक कथा-वार्ताओं तथा वर्णनात्मक राजस्थानी गद्य का समावेश होता है । मनोरंजनात्मक कथाओं में प्रेम, वीरता, भक्ति और हास्य की अनूठी योजना होती है । वार्ताकारों ने काल्पनिक प्रयोगों द्वारा ऐसी कथाओं में रहस्यरोमांच की सृष्टि भी की है । हस्तलिखित ग्रन्थ-भण्डारों में मनोरंजनात्मक राजस्थानी कथाओं के अनेक संग्रह-ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं । इन कथाओं में गद्य के साथ कहीं-कहीं पद्य की छटा भी प्रभावशालोनी होती है । ऐसी वार्ताओं में व्रज, गुजराती और उर्दू के प्रभाव भी कहीं कहीं मिलते हैं । उदाहरण —

"पछे बामण सीदो ले ने तलाव ऊपर रोटी करवा बेठो । जठे तलाव री तीर

---

१ – वेत महाराणा जी श्री शंभूसिंघ जी री, राव बखतावर री कही, राजस्थान विद्यापीठ, साहित्य-संस्थान, उदयपुर ।

२ – रघुनाथ रूपक गीतां रो, कवि मंछ कृत, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी पृ० ३४२ ।

३ – अचलदास खींची री वचनिका, ह० प्र० न० ६६, अ० सं० ला०, बीकानेर ।

की अेवज बावन हजार बीघा जमी उजेण के प्रगने दीधी जकरा रो ताबांपत्र श्री पातसाहजी का नांव को कराय दीधो अरण सवाय आगा सु चारण वरण सासत पचा कुलगुरू गंगारामजी का बाप दादा ने व्याह हुअे जकण में कुल दापा रा रुपाया १७।।। ओर त्याग परट हुवे जीण मां मोतीसरां को नावों बंधे जीण सु दुणों नांवों कुल गुरू गंगारामजी का बेटा पोता पाया जासी संमत १६४२ रा मती माहा सूद ५ दसकत पंचोली पन्नालाल हुकम बारहठजी का सु लीखी तखत आगरा समसत पंचा की सलाह सूं आपांणी यां गुरां सूं अधिकता दूजो नहीं छै।[1]"

(५) व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष, टीका आदि विषयक गद्य

२२९:२। राजस्थानी भाषा में व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष, टीका, स्तवन आदि विषयक गद्य भी विभिन्न लेखकों द्वारा प्रचुर परिमाण में लिखा गया है। अनेक राजस्थानी महाकाव्यों में भी गद्य-लेखन उपलब्ध होते हैं। कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं —

"ज्ञानचारी पुस्तकं पुस्तिका संपुट संपुटिका टीपणां कबली उतरी ठवड़ी पाठा दोरी प्रभूति ज्ञानोपकरण अवज्ञा अकालि पठन अतिचार विपरीत कथनु उत्सूत्र प्ररूपणु अश्रद्धधांण-प्रभुतिकु आलोयहु।"[2]

"स्वर केता १४ समान केता १० सवर्ण १० ह्रस्व ५ दीर्घ ५ लिंगु ३ पुल्लिगु, स्त्रीलिंगु, नपुसंक लिंगु मलउ, पुल्लिंगु, मली स्त्रीलिंगु, मलु नपुसंक लिंगु।

— बालशिक्षा व्याकरण, ठक्कुर संग्रामसिंह कृत, सं० मुनि श्री जिनविजयजी।

२३०:२। "पछइ सुम दिहाडइ जिरिण कतरा संवंण जोई जइ सु वात कागलि लिपि नइ आप तीरे राखीजइ। चक्की रइ गभि बेसीजइ पछइ कृष्ण स्मरण कीजइ दिन घड़ी।। आधी थकइ संवरण लइ बेसीजइ तारा निरमला हुवै अर द्रु रउ तारउ रूडा दीसइ तां लग वेसीजइ द्वारा तारा परगट हुवा पछइ ऊठीजइ तठा विजीं कोई संवरण बोलइ सु विचारी जइ।"[3]

२३१:२। "आसोज आवतांही नभ कहतां आकास थै वादल दूरि हुआ। पृथी तै पंक कहतां कादौ दूरि हुऔ। जल की गुडलता दूरि हुई। निर्म्मल हुऔ। ताकौ दृष्टांत जिम सतगुरु मिल्या थो। जातीजै छै मनुष्य की सत गुरु

---

१ – राजस्थानी शब्द कोष, सं० सीतारामजी लालस, सम्पादकीय प्रस्तावना, पृ० १६३।

२ – आराधना (सं० १३३०), प्राचीन गुजराती गद्य-संदर्भ, मुनि जिनविजय, पृ० २१८-२१९।

३ – शकुन ग्रन्थ, लि० का० वि०सं० १६२९-१६३३, अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर, ह० लि० ग्रन्थ, सं० ९९।

मिल्या – ग्यान की दीपति हुई । इहां आसोज मिल्या थ आगनि माहे जोति अधिक हुई छै । सु इहं मानो ग्यान की दीपति हुई छै ।"[1]

२३२:२। "राजा कान्हड़दे तणइ कटिकि पाछिलइ पुहरी कडाहि चडइ। बाज पड़इं। सिह थी दीडां प्रवाहि घोडा पढ़षता न सहइ। थानांतरि वहिलां सु षाचण चाल्या। कंठलीया किस्या। भंडार भरीया। आलोचि आत्मानइ आव्या। मंत्र मुहाडि हुई।"[2]

ख. नवीन राजस्थानी गद्य

२३३:२। राजस्थानी साहित्य में नवीन युग के जन्मदाता महाकवि सूर्यमल हैं। इन्होंने अपने वंश-भास्कर में पद्य के साथ ही गद्य भी अनेक प्रसंगों में लिखा है। इनकी भाषा में संस्कृत तत्सम शब्दों का भी व्यवहार हुआ है —

"सो राजा नै आपरा प्राणं रो औषध अनंगसेन जाणि अवरोध लाय राणी रै अरथ निवेदन कीधो। राणी तो कलिजुग रो रूप एहा अभिरूप अवनीस रो तिरस्कार करि सुद्धांत रै आश्रित अनेक जन रहे जिकां मे कोई दो ही लोक रो खोवणहार ठालियो जिण रो संगति रै प्रभाव स्वर्गलोक रा मार्ग मुद्रित कराय कुंभीपाक रो निवास भालियो सो आपरा स्वामी रो दीधो अपूर्व चमत्कारिक फल राणी अनंगसेना नै जार रै भेट कीधो।"[3]

२३४:२। सूर्यमल जी हाड़ोती प्रदेश में बूंदी के निवासी थे। इन्होंने अपने व्यक्तिगत पत्र हाड़ोती बोली में लिखे हैं।[4] किन्तु उक्त उदाहरण से प्रमाणित होता है कि इन्होंने साहित्यिक गद्य राजस्थानी के टकसाली रूप में ही लिखा है।

२३५:२। आधुनिक काल के प्रारम्भ में राजस्थानी गद्य के अनेक ग्रन्थ लिखे गये जिनमें दयालदास सिंढायच कृत राठौड़ां री ख्यात प्रमुख है। गोपाल दान कविया रचित शिखर वंशोत्पत्ति (र० का० १९२६), महाराजा मानसिंह कृत रतना हमीर री वात और कविराव बख्तावर कृत केहरप्रकाश (र० का० वि०सं० १९३६) में भी राजस्थानी गद्य के प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुए हैं —

१ – लाखा चारण कृत वि०सं० १६७३ में लिखित वेलि क्रिसन रुकमणी री टीका, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, पृ० ७६५।

२ – कान्हड़दे प्रबन्ध (र०का० सं० १५१२), राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, पृ० ४०।

३ – वंशभास्कर, जोधपुर, राजस्थानी शब्द कोष, संपादकीय प्रस्तावना, पृ० १९९।

४ – वीर सतसई, सं० डा० कन्हैयालालजी सहल, पतराम जी गौड़ और ईश्वर दानजी आसिया संपादकीय भूमिका।

"पाछै आलमगीरजी हाथी सूं उतरिया, अरु फोज मांय फिरै। आपरा काम आया तथा घायलां नूं देखे है। आपरी तरफ रा नूं उठावे है, पाटा बांध जावतो करावे है, तथा डोलियां में घाले है, वा साह सूजें री तरफ रां नूं मारै है। अरु बूंदी रा राव राजा सत्रसालजी घावांपूर हुवा पड़िया है। जिसै आलमगीरजी गया। सूं मूहडै ऊपर हाथ फेरियौ, अरु पाणीं पायो सावचेत कर अमल दियौ। तद चेतो हुवौ। पछै आलमगीरजी फुरमायो जो रावजी अरज करौ।"[1]

२३६:२। "स्याम ताज कफनी कमंडल में नीर। डाटी सुपेत सेख सुवरण शरीर। मोकल राव आतौ देखि माथा मौ नवायौ। साँई स्यां भुरानी सेख नामी पंथ पायौ। जगल में चरे छी सौ अव्याई भोटी आई। मोकल का कनां सूं सेख चीपी में दुहाई।"[2]

२३७:२। "सुघड़ जठे वोली या नवेली सहज सारे ही सिघावज्यो पण वन सरोवर कदे भी मत जाज्यो। जावेला बाग तो पिक सुक अली उड़ जावसी ने विंबफल श्रीफल अनाड़ सेवां जो सु खावसी, जावेला जो वन तो खंजन कपोत चोंच चूरेला।"[3]

२३८:२। आधुनिक काल में अनेक लेखक राजस्थानी गद्य में उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, आलोचना और अनुवाद आदि लिखते रहे हैं। इनके ग्रन्थ प्रकाशित भी हुए हैं और जनता में लोकप्रिय बने हैं। ब्रिटिश काल में प्रकाशन-सम्बन्धी कार्यों पर राजस्थान में कड़े प्रतिबन्ध रहे, जिनसे पत्र-पत्रिकाओं और नवीन शैली की रचनाओं का पर्याप्त मात्रा में प्रकाशन नहीं हो सका। भारतीय स्वाधीनता और राजस्थान के एकीकरण के पश्चात् राजस्थान में नवीन राजस्थानी गद्य-लेखन को बल मिला है। परिणामस्वरूप प्रति वर्ष अनेक राजस्थानी गद्यात्मक रचनाएं प्रकाशित होती जा रही हैं।

आधुनिक काल के कतिपय गद्य लेखक इस प्रकार हैं —

उपन्यास लेखक —

२३९:२। शिवचन्द्र भरतिया (कनक सुन्दर, आदि), श्री लाल जोशी (आभैपटकी), विजयदान देथा (टीडो राव, सात राजकुमार, आदि)।

कहानी लेखक —

२४०:२। मुरलीधर व्यास, रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत, नरसिंग राजपुरोहित, श्री चन्द्रा माथुर, भंवरलाल नाहटा, दीनदयाल ओझा, सौभाग्यसिंह शेखावत, पुरुषोत्तमलाल मेनारिया नेमीनारायण जोशी, मदनमोहन जावलिया, आदि।

---

१ – दयालदास री ख्यात, अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर।

२ – शिखर वंशोत्पत्ति, राजस्थानी शब्द कोष, संपादकीय प्रस्तावना, पृ० २००।

३ – केहर प्रकाश, वही।

नाटककार —

२४१:२। शिवचन्द्र भरतिया, सूर्यकरण पारीक, श्रीनाथ मोदी, पूरणमल गोयनका, मनमोहन शर्मा, भगवती प्रसाद दारुका, गोविन्द माथुर (सतरंगिणी), पुरुषोत्तमलाल मेनारिया (जुग पलटो), निरंजन नाथ आचार्य (नेहरी झगड़ा), भरत व्यास (ढोला मरवण), पं० गिरधारीलालजी शास्त्री, चन्द्रशेखर भट्ट, आशाचन्द भंडारी, गणेशीलाल व्यास, गणपतलाल डांगी, आदि।

निबन्ध लेखक —

२४२:२। गुलाबचन्द नागोरी और मारवाड़ी हितकारक पत्र का लेखक-मंडल, ठाकुर रामसिंह, अगरचन्द नाहटा, जयनारायण व्यास, रावत सारस्वत और मरुवाणी का लेखक-मंडल, किशोर कल्पनाकांत और ओळमो पत्र रतनगढ़ का लेखक-मंडल, "राजस्थानी वीर", पूना का लेखक-मंडल, सोभाग्यसिंह जी शेखावत, पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, ब्रजमोहन जावलिया, आदि।

आलोचना लेखक —

२४३:२। रामकरण आसोपा (मारवाड़ी व्याकरण), सीताराम लालस (राजस्थानी व्याकरण), महाराज चतुरसिंह, रावत सारस्वत, अगरचन्द नाहटा, रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत, सूर्यकरण पारीक, पुरोहित हरिनारायण, पं० नरोत्तमदास स्वामी, विजैदान देथा, कोमल कोठारी, डा० मोतीलाल गुप्त, सारनसिंह, हीरालाल माहेश्वरी, नरेन्द्र भाणावत, मदनराज महता, नारायणसिंह भाटी, रामप्रसाद दाधीच, अक्षयचन्द्र शर्मा, कन्हैयालाल सहल, डा० मोतीलाल मेनारिया, मनोहर शर्मा, चन्द्रदान, बद्रीप्रसाद साकरिया, पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, डा० गोवर्द्धन शर्मा, मूलचन्द प्राणेश, आदि।

अनुवाद लेखक —

२४४:२। महाराज चतुरसिंह,[1] नरसिंह राजपुरोहित, पुष्कर मुनि, रामनाथ व्यास 'परिकर',[2] श्रीमंतकुमार व्यास, चंडीदान, शक्तिदान कविया, ब्रजमोहन जावलिया, रावत सारस्वत, कुंवर चन्द्रसिंह, आदि।[3]



१ – महिम्नस्तोत्र, श्रीमद्भगवद् गीता और रामायण।

२ – गीतांजली, बंगला, रविन्द्रनाथ ठाकुर।

३ – ओस्कर वाइल्ड की कहानियों का राजस्थानी अनुवाद।

तृतीय अध्याय

राजस्थानी लोक-साहित्य

१. प्रारम्भिक परिचय

२ .लोक साहित्य का वर्गीकरण

३. राजस्थानी लोकगीत

(क) राजस्थान के धार्मिक लोकगीत

(अ) सस्कार सम्बन्धी गीत

(आ) देवी-देवताओं सम्बन्धी गीत

(इ) व्रत सम्बन्धी गीत

(ख) राजस्थानी मनोरंजनात्मक गीत

(अ) दीपावली के लोकगीत

(आ) होली सम्बन्धी लोकगीत

(इ) शिकार सम्बन्धी लोकगीत

४. राजस्थानी पवाड़ा साहित्य

(क) पाबूजी रा पवाड़ा

(ख) निहाल दे

५. राजस्थानी-लोक कथाएं

६. राजस्थानी ख्याल साहित्य (लोक-नाटक)

७. राजस्थानी लोकोक्तियां और पहेलियां आदि ।

में मिलने वाले साम्य के उपयोग करने की ओर विशेष ध्यान दिया। अंग्रेजी परम्परा में फॉकलोर (लोकवार्ता) के क्षेत्र तथा सामाजिक जीवन विज्ञान के क्षेत्र की कोई सूक्ष्म सीमा निर्धारित नहीं की जाती······· प्रयोग में साधारण प्रवृत्ति इस फॉकलोर (लोकवार्ता) के क्षेत्र को संकुचित अर्थ मे सभ्य समाजों में मिलने वाले पिछड़े तत्वों की संस्कृति तक ही सीमित रखने की है।"[1]

२ : ३। इसी प्रकार लोक-संस्कृति की व्याख्या करते हुए उसको आदिम-मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति कहा गया है—"लोक-संस्कृति वस्तुतः आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, वह चाहे दर्शन, धर्म, विज्ञान तथा औषधि के क्षेत्र में हुई हो, अथवा सामाजिक संगठन तथा अनुष्ठानों में अथवा विशेषतः इतिहास, काव्य और साहित्य के उपेक्षाकृत बौद्धिक प्रदेश में सम्पन्न हुई हो।"[2]

३ : ३। लोकसाहित्य में निहित 'लोक' से तात्पर्य हमारी सम्पूर्ण जनता से है, फिर चाहे वह ग्रामवासिनी हो अथवा नगरनिवासिनी। 'लोक' शब्द अत्यन्त प्राचीन है जिसका प्रयोग वैदिककाल से आधुनिककाल तक होता रहा है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस विषय में लिखा है—" 'लोक' हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी-कुछ संचित रहता है। 'लोक' राष्ट्र का अमर स्वरूप है, 'लोक' कृत-ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए 'लोक' सर्वोच्च प्रजापति है। 'लोक' की धात्री सर्वभूत माता पृथ्वी और 'लोक' का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नए जीवन का अध्यात्मशास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और निर्माण का नवीन रूप है। लोक, पृथ्वी, मानव इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।"[3]

४ : ३। आचार्य पं० हजारीप्रसादजी द्विवेदी ने 'लोक' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है—" 'लोक' शब्द का अर्थ 'जान-पद' या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं। ये लोग-नगर में परिष्कृत, रुचि-सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती हैं उनको उत्पन्न करते हैं।"[4]

---

१ – एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका।

२ – क – ए हैंड बुक आव फॉक लोर – सोफिया बर्न।

ख – ब्रजलोक-साहित्य का अध्ययन, डा० सत्येन्द्र, पृ० ४–५।

३ – सम्मेलन पत्रिका, (लोक संस्कृति विशेषांक), सं० २०१०, लोक का प्रत्यक्ष दर्शन, निबन्ध, पृ० ६५।

४ – जनपद, वर्ष १, अंक १, पृ० ६५।

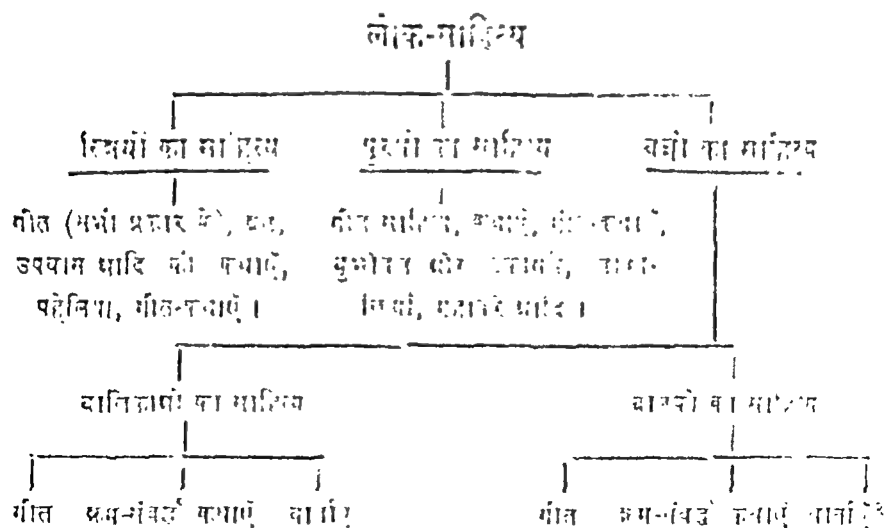
५ : ३ । लोक-साहित्य के क्षेत्र की व्याख्या करते हुए डा० सत्येन्द्र ने लिखा है —

"लोक साहित्य में पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में प्रचलित विश्वास, रीति-रिवाज, कहानियाँ, गीत तथा कहावतें आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़-जगत के सम्बन्ध में, भूत-प्रेतों की दुनियाँ तथा उनके साथ मनुष्यों के सम्बन्धों के विषय में जादू-टोना, सम्मोहन, वशीकरण, ताबीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के सम्बन्ध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं। और भी इसमें विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़ जीवन के रीति-रिवाज तथा अनुष्ठान और त्योहार, युद्ध, आखेट, मत्स्य-व्यवसाय, पशु-पालन आदि विषयों के भी रीति-रिवाज और अनुष्ठान इसमें आते हैं तथा धर्म-गाथाएँ, अवदान (लीजेण्ड), लोक कहानियाँ, गीत, साके (बैलेड), किंवदन्तियाँ, पहेलियाँ तथा लोरियाँ भी इसके विषय हैं।"[1]

६ : ३ । 'लोक' शब्द का अर्थ व्यापक है इसलिए 'लोक' शब्द के अन्तर्गत सम्पूर्ण मानव-समाज का समावेश किया जाना चाहिए। लोक-साहित्य के अन्तर्गत [illegible] रचनाओं का समावेश करना ही समीचीन होगा। लोक-साहित्य के विषय – [illegible], जादू-टोना, भूत-प्रेत, ताबीज, सम्मोहन, वशीकरण आदि अनेक हो सकते हैं, किन्तु लोक-साहित्य के अन्तर्गत उनकी साहित्यिक रचनाओं को ही लिया जाना चाहिए। अतः लोक-साहित्य का अर्थ लोक का साहित्य है।

२. लोक-साहित्य का वर्गीकरण

७ : ३ । लोक-साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है —[2]



१ – ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन, डा० सत्येन्द्र, पृ० ४-५।

२ – डा० श्याम परमार, भारतीय लोक साहित्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ० [illegible]।

में मिलने वाले साम्य के उपयोग करने की ओर विशेष ध्यान दिया। अंग्रेजी परम्परा में फॉकलोर (लोकवार्ता) के क्षेत्र तथा सामाजिक जीवन विज्ञान के क्षेत्र की कोई सूक्ष्म सीमा निर्धारित नहीं की जाती······· प्रयोग में साधारण प्रवृत्ति इस फॉकलोर (लोकवार्ता) के क्षेत्र को संकुचित अर्थ में सभ्य समाजों में मिलने वाले पिछड़े तत्वों की संस्कृति तक ही सीमित रखने की है।"[१]

२ : ३। इसी प्रकार लोक-संस्कृति की व्याख्या करते हुए उसको आदिम-मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति कहा गया है—"लोक-संस्कृति वस्तुतः आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, वह चाहे दर्शन, धर्म, विज्ञान तथा औषधि के क्षेत्र में हुई हो, अथवा सामाजिक संगठन तथा अनुष्ठानों में अथवा विशेषतः इतिहास, काव्य और साहित्य के उपेक्षाकृत बौद्धिक प्रदेश में सम्पन्न हुई हो।"[२]

३ : ३। लोकसाहित्य में निहित 'लोक' से तात्पर्य हमारी सम्पूर्ण जनता से है, फिर चाहे वह ग्रामवासिनी हो अथवा नगरनिवासिनी। 'लोक' शब्द अत्यन्त प्राचीन है जिसका प्रयोग वैदिककाल से आधुनिककाल तक होता रहा है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस विषय में लिखा है —" 'लोक' हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी-कुछ संचित रहता है। 'लोक' राष्ट्र का अमर स्वरूप है, 'लोक' कृत-ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए 'लोक' सर्वोच्च प्रजापति है। 'लोक' की धात्री सर्वभूत माता पृथ्वी और 'लोक' का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नए जीवन का अध्यात्मशास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और निर्माण का नवीन रूप है। लोक, पृथ्वी, मानव इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।"[३]

४ : ३। आचार्य पं० हजारीप्रसादजी द्विवेदी ने 'लोक' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है —" 'लोक' शब्द का अर्थ 'जान-पद' या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं। ये लोग-नगर में परिष्कृत, रुचि-सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती हैं उनको उत्पन्न करते हैं।"[४]

---

१ – एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका।

२ – क – ए हैंड बुक आव फॉक लोर – सोफिया बर्न।
  ख – ब्रजलोक-साहित्य का अध्ययन, डा० सत्येन्द्र, पृ० ४–५।

३ – सम्मेलन पत्रिका, (लोक संस्कृति विशेषांक), सं० २०१०, लोक का प्रत्यक्ष दर्शन, निबन्ध, पृ० ६५।

४ – जनपद, वर्ष १, अंक १, पृ० ६५।

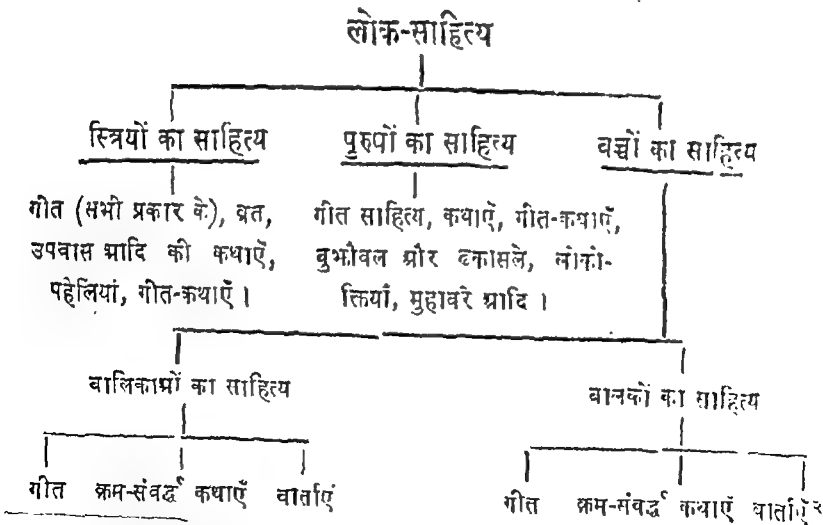
५ : ३ । लोक-साहित्य के क्षेत्र की व्याख्या करते हुए डा० सत्येन्द्र ने लिखा है —

"लोक साहित्य में पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट विश्वास, रीति-रिवाज, कहानियाँ, गीत तथा कहावतें आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़-जगत के सम्बन्ध में, भूत-प्रेतों की दुनियां तथा उनके साथ मनुष्यों के सम्बन्धों के विषय में जादू-टोना, सम्मोहन, वशीकरण, तावीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के सम्बन्ध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं। और भी इसमें विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़ जीवन के रीति-रिवाज तथा अनुष्ठान और त्योहार, युद्ध, आखेट, मत्स्य-व्यवसाय, पशु-पालन आदि विषयों के भी रीति-रिवाज और अनुष्ठान इसमें आते हैं तथा धर्म-गाथाएं, अवदान (लीजेण्ड), लोक कहानियां, गीत, साके (बैलेड), किवदन्तियाँ, पहेलियां तथा लोरियां भी इनके विषय हैं।"[1]

६ : ३ । 'लोक' शब्द का अर्थ व्यापक है इसलिए 'लोक' शब्द के अन्तर्गत सम्पूर्ण मानव-समाज का समावेश किया जाना चाहिए। लोक-साहित्य के अन्तर्गत साहित्यिक रचनाओं का समावेश करना ही समीचीन होगा। लोक-साहित्य के विषय – पूजा, अनुष्ठान, व्रत, जादू-टोना, भूत प्रेत, तावीज, सम्मोहन, वशीकरण आदि अनेक हो सकते हैं; किन्तु लोक-साहित्य के प्रकारों के अन्तर्गत साहित्यिक रचनाओं को ही लिया जाना चाहिए, क्योंकि लोक-साहित्य का अर्थ लोक का साहित्य है।

२. लोक-साहित्य का वर्गीकरण

७ : ३ । लोक-साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है —

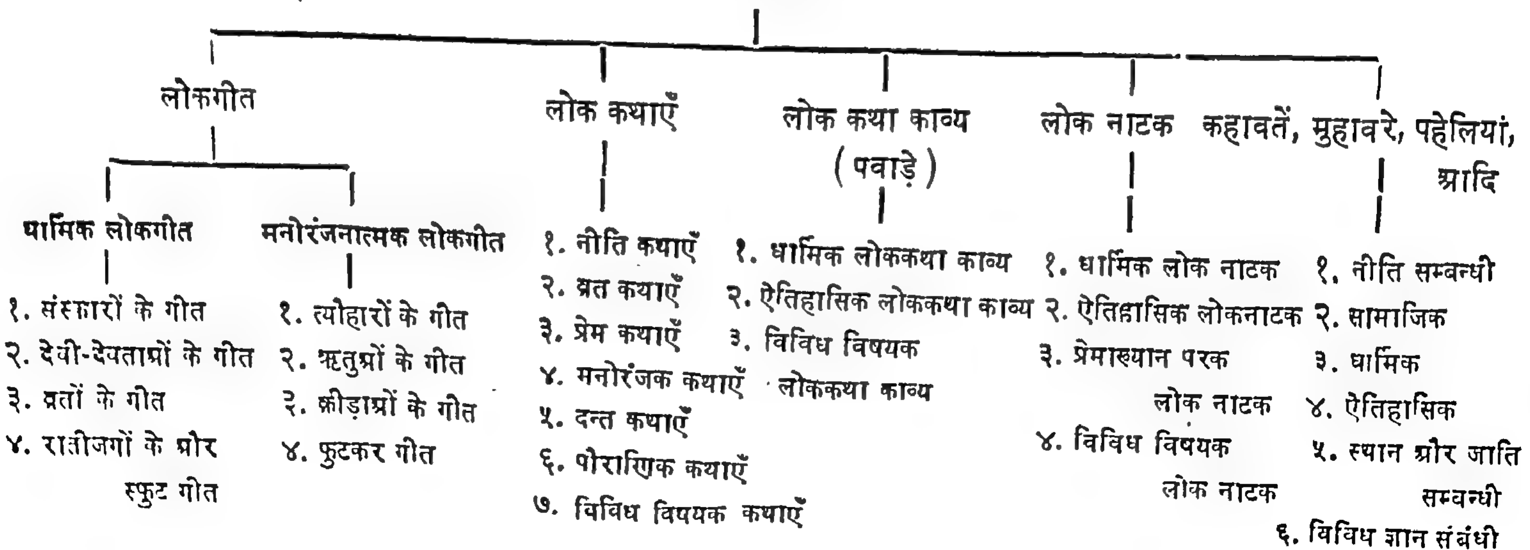


१ – ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन, डा० सत्येन्द्र, पृ० ४–५।

२ – डा० श्याम परमार, भारतीय लोक साहित्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ० २१।

८ : ३ । ऐसे लोकगीत, कथाएँ और लोकोक्तियां आदि भी हैं जिनका प्रचलन स्त्रियों और पुरुषों में समान रूप से और बालक-बालिकाओं में समान रूप से अथवा स्त्री-पुरुष-बालक सबमें समान रूप से है। उक्त वर्गीकरण में ऐसे साहित्य का समावेश नहीं है इसलिए उक्त वर्गीकरण पूर्ण नहीं कहा जा सकता।

९ : ३ । लोक-साहित्य का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में करना उचित होगा —



३. राजस्थानी लोकगीत

१० : ३। राजस्थानी लोकगीत राजस्थानी जनता के स्वाभाविक साहित्यिक उद्गार हैं जिनका प्रादुर्भाव सुख-दुख, वीरता और हर्ष-शोक आदि विविध अनुभूतियों के परिणाम-स्वरूप हुआ है। राजस्थानी लोकगीतों का वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया जा सकता है —

अ. उद्देश्य के अनुसार— राजस्थानी लोकगीतों के दो भाग किये जा सकते हैं—

१. धार्मिक लोकगीत— जिनमें संस्कारों, देवी-देवताओं और व्रत, भक्ति, हरजस आदि से सम्बन्धित लोकगीत हैं।

२. मनोरंजनात्मक— जिनमे विभिन्न क्रीड़ाओं, त्योहारों, ऋतुओं और मानव-जीवन के सरस प्रसंगों मे सम्बन्धित लोकगीतों का समावेश किया जा सकता है।

आ. लावणी, घूमर, मांड आदि विभिन्न लौकिक राग-रागिनियों के अनुसार— लोकगीतों के वर्गीकरण का दूसरा प्रकार अपनाया जा सकता है।

इ. राजस्थानी लोकगीतों को— (क) धार्मिक, (ख) सामाजिक, (ग) ऋतु सम्बन्धी, (घ) घर-गृहस्थी-सम्बन्धी, (ङ) दाम्पत्य प्रेम सम्बन्धी और (च) ऐतिहासिक आदि विभिन्न विषयों के अनुसार भी विभाजित किया जा सकता है।

ई. राजस्थानी लोकगीतों को— (क) पुरुष गीत, (ख) स्त्री गीत, (ग) बाल गीत, (घ) पुरुष, स्त्री और बालक सभी के साथ मिलकर गाए जाने वाले गीत इन चार श्रेणियों में भी बांट सकते हैं।

उ. राजस्थानी लोकगीतों को— राजस्थानी भाषा की विविध बोलियों के अनुसार भी विभक्त किय जा सकता है। राजस्थानी लोकगीत बोली-सम्बन्धी साधारण हेर-फेर के साथ प्र ग्रः समान रूप मे पाए जाते हैं।

ऊ. विभिन्न जातियों के अनुसार भी राजस्थानी लोकगीतों का वर्गीकरण किया जा सकता है।

ए. राजस्थानी लोकगीतों को राजस्थान के विभिन्न प्रशासनीय एवं भौगोलिक विभागों के अनुसार भी विभक्त किया जा सकता है। राजस्थान के प्रशासन विभाग, शासन सम्बन्धी सुविधाओं के अनुसार किये गए हैं। इनमें कोई संस्कृति सम्बन्धो वैज्ञानिक आधार नहीं अपनाया गया है इसलिए इस प्रकार से लोकगीतों का वैज्ञानिक अध्ययन नहीं किया जा सकता।

राजस्थानी लोकगीत-वर्गीकरण के उपरोक्त सभी प्रकारों में पहला प्रकार सर्वथा

(ख) जन्म —

[illegible] । संतान उत्पन्न होने पर कई प्रकार के गीत गाये जाते हैं उनमें जच्चा को किस प्रकार की वस्तुएं दी जानी चाहिए उनका वर्णन होता है। किसी नव-विवाहिता वधु के प्रथम बार गर्भाधान होना अत्यन्त मंगलमय माना जाता है। गर्भवती स्त्री का पति परदेश जा रहा है। पति की अनुपस्थिति में अजवाइन आदि की व्यवस्था कौन करेगा ? गर्भावस्था के आठवें मास में स्त्रियां "अजमो" गाती हैं —

[illegible] ओ केसरिया सायब गांव सिधाया ओलगणा,
सिधाया ओ अजमो कुण मोलावे ओ राज !
[illegible] ओ मांनेतण रांणी हालरियो जिणजो,
देनड़ियो जिणजो ओ अजमो म्हारा भावोसा मोलावे ओ राज !

अर्थात् – ओ केसरिया प्रियतम ! आप दूसरे गांव जा रहे हो। ओ राज, अब अजवायन कौन खरीदेगा ? ओ मानेती रानी ! तुम पुत्र उत्पन्न करना, अजवायन मेरे बाबोसा खरीद देंगे।

जन्म से पूर्व प्रसव-वेदना से पत्नी व्याकुल हो रही है। पति बाहर चौपड़ खेलने में मस्त है। पत्नी पति को दाई बुलाने के लिए सूचना देना चाहती है। क्या कहे ? कैसे कहे ?

ओ राजा सार रमता पोव ये पासा दूर धरो वे हां।
ओ राजा सार धरी चित्रसाल पासा रंगमेल धरो वे हां।
ओ राजा जाजम देवो उठाय साथीड़ा ने सीख देवो वे हां।
ए म्हारी सदा सवागण नार थारे कांई हुयो वे हां।
ओ राजा लाज सरम री बात पियाजी ने कांई केवूं वे हां।
ए गोरी थारो म्हारो जिवडो एक दोनूं बिच कोण सुणे वे हां।
ओ राजा धसमस दूखे पेट कमर में चीस चाले वे हां।
ओ राजा होय घुडले असवार दाई जी ने लेण चालो वे हां।

उपयुक्त है जिसके अन्तर्गत समस्त राजस्थानी लोकगीतों का समावेश वैज्ञानिक रूप में किया जा सकता है।

क. राजस्थान के धार्मिक लोकगीत

११:३। भारतीय जीवन में धर्म का प्राधान्य है इसलिए जीवन के समस्त आचार-व्यवहार और क्रिया-कलाप धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार ही सम्पादित होते हैं। राजस्थानी लोकगीतों में भी धार्मिक सिद्धान्त-सम्बन्धी पक्ष प्रबल है। अनेक राजस्थानी लोकगीत धार्मिक विधि-विधानों एवं क्रिया-कलापों के अनिवार्य अंग बने हुए हैं।

१२:३। राजस्थान के धार्मिक लोकगीतों के निम्नलिखित प्रकार हैं —

(अ) संस्कार सम्बन्धी गीत,

(आ) देवी-देवताओं सम्बन्धी गीत, और

(इ) व्रत सम्बन्धी गीत

(अ) संस्कार सम्बन्धी गीत

भारतीय जीवन विभिन्न संस्कारों द्वारा ही सुसंस्कृत माना जाता है। गर्भाधान से मृत्यु पर्यन्त सोलह संस्कारों का विधान है — (१) गर्भाधान, (२) पुंसवन, (३) सीमन्तोन्नयन, (४) जातकर्म, (५) नामकरण, (६) निष्क्रमण, (७) अन्नप्राशन, (८) चूड़ाकर्म, (९) कर्णवेध, (१०) उपनयन, (११) वेदारम्भ, (१२) समावर्त्तन, (१३) विवाह, (१४) वानप्रस्थ, (१५) सन्यास, और (१६) अन्त्येष्टि संस्कार। अधिकांश संस्कारों में लोकगीतों का विशेष आयोजन होता है।

१३:३। प्रत्येक संस्कार के दो भाग होते हैं — (१) शास्त्रीय और (२) लौकिक। संस्कार का शास्त्रीय भाग पुरोहित, कुलगुरु अथवा पुजारी द्वारा सम्पन्न किया जाता है और संस्कारों का लौकिक भाग लौकिक रीति व्यवहारों और लोकगीतों द्वारा सम्पन्न होता है। संस्कारों के शास्त्रीय और लौकिक पक्ष एक दूसरे के आश्रित और पूरक होते हैं।

१४:३। राजस्थानी संस्कार सम्बन्धी लोकगीत मुख्यतः निम्नलिखित अवसरों पर गाए जाते है — (१) *गर्भावस्था के गीत* — जच्चा के गीत, सूरजपूजा और जलवा। (२) नामकरण — ढूंढ, मुंडन अर्थात् जडूलो, यज्ञोपवीत। (३) विवाह — जिसमें सगाई, विनायक, मायरो, बनोली, कामण, कलश, पीठी, तेल-चढ़ाना, निकासी, तोरण, फेरा, कुंवर कलेवो, जुआ-जुई, विदाई, पड़लो, पैसारो और आणो (गौना) आदि के लोकगीत हैं।

(क) गर्भावस्था के गीत —

१५:३ । गर्भवती स्त्रियों को कई प्रकार के खाने के पदार्थ अच्छे लगते हैं जिनमें अधिकतर खट्टी वस्तुएं होती हैं । नारंगी का गीत इस प्रकार है —

नारंगी

मालीका रे खिड़की खोल भंवर ऊभा बारणे ।
आओ कवरां बैठो नी पास, कांई तो कारण आया ?
म्हारी धण ने पैलो जी मास, नारंगी में मन गयो जी ।
नारंगी रा लागै छै हजार, कलियां रा पूरा डोड़ मे जी ।
नारंगी रा दांला हजार, कलियांरा पूरा डोड़से जी ।
पैली खाई खाटी लागी, दूजी खट-मीठी लागी ।
तीजी ने बींदड़ राजा जनम लियां ।
म्हारी धण ने दूजो जी मास, नारंगी में मन गयो॰
म्हारी धण ने तीजो जी मास, नारंगी में मन गयो॰
म्हारी धण ने चोथो जी मास, नारंगी में मन गयो॰
म्हारी धण ने पांचवों जी मास, नारंगी में मन गयो॰
म्हारी धण ने छठो जी मास, नारंगी में मन गयो॰
म्हारी धण ने सातवों जी मास, नारंगी में मन गयो॰
म्हारी धण ने आठवों जी मास, नारंगी में मन गयो॰
म्हारी धण ने पूरा जी मास, नारंगी में मन गयो ।

अर्थात् – माली के लड़के खिड़की खोल, भंवर जी बाहर खड़े हैं । आओ कुंवरजी पास बैठो, किस कारण आना हुआ ?

हमारी स्त्री के पहिला महीना है और उसका मन नारंगी में लगा है । नारंगी के लगते हैं हजार और कली के पूरे डेढ़ सौ जी । नारंगी के देवें हजार और कली के पूरे डेढ़ सौ जी । पहली खाई तो खट्टी लगी और दूसरी खाई तो खट-मीठी लगी । तीसरी में बींदड़ राजा ने जन्म लिया ।

मेरी स्त्री को दूसरा महीना लगा है जी और उसका मन नारंगी में गया है । मेरी स्त्री को तीसरा महीना लगा है जी और उसका मन नारंगी में गया है । मेरी स्त्री को चौथा महीना लगा है जी और उसका मन नारंगी में गया है । मेरी स्त्री को पांचवां लगा है जी और उसका मन नारंगी में गया है । मेरी स्त्री को छठा महीना लगा और उसका मन नारंगी में गया है । मेरी स्त्री को सातवा महीना लगा है और उ

नारंगो में लगा है। मेरी स्त्री को आठवां महीना लगा है और उसका मन नारंगी में गया है मेरी स्त्री को पूरे महीने हो गये हैं और उसका मन नारंगी में रह गया है।

(ख) जच्चा —

१६:३। संतान उत्पन्न होने पर कई प्रकार के गीत गाये जाते हैं उनमें जच्चा को किस प्रकार की वस्तुएं दी जानी चाहिए उनका वर्णन होता है। किसी नव-विवाहिता वधु के प्रथम बार गर्भाधान होना अत्यन्त मंगलमय माना जाता है। गर्भवती स्त्री का पति परदेश जा रहा है। पति की अनुपस्थिति में अजवाइन आदि की व्यवस्था कौन करेगा? गर्भावस्था के आठवें मास में स्त्रियां "अजमो" गाती हैं —

थेइज ओ केसरिया सायब गांव सिधाया ओलगणा,
सिधाया ओ अजमो कुण मोलावे ओ राज !
थेइज ओ मांनेतण रांणी हालरियो जिणजो,
धेनड़ियो जिणजो ओ अजमो म्हारा भावोसा मोलावे ओ राज !

अर्थात् — ओ केसरिया प्रियतम ! आप दूसरे गांव जा रहे हो। ओ राज, अब अजवायन कौन खरीदेगा ? ओ मानेती रानी ! तुम पुत्र उत्पन्न करना, अजवायन मेरे व सा खरीद देंगे।

जन्म से पूर्व प्रसव-वेदना से पत्नी व्याकुल हो रही है। पति बाहर चौपड़ खेलने में मस्त है। पत्नी पति को दाई बुलाने के लिए सूचना देना चाहती है। क्या कहे ? कैसे कहे ?

ओ राजा सार रमता पोव ये पासा दूर धरो वे हां।
ओ राजा सार धरो चित्रसाल पासा रंगमेल धरो वे हां।
ओ राजा जाजम देवो उठाय साथीड़ा ने सीख देवो वे हां।
ए म्हारी सदा सवागण नार थारे कांई हुयो वे हां।
ओ राजा लाज सरम री बात पियाजी ने कांई केवूं वे हां।
ए गोरी थारो म्हारो जिवडो एक दोनूं विच कोण सुणे वे हां।
ओ राजा घसमस दूखे पेट कमर में चीस चाले वे हां।
ओ राजा होय घुडले असवार दाई जी ने लेण चालो वे हां।

अर्थात्:— ओ राजन् ! हे प्रियतम ! आप खेलते हुए सार व पासों को दूर रख दो, ओ राजन् ! सार को चित्रशाला में व पासे रंगमहल में रख दो। ओ राजन् ! जाजम उठवा दो व साथियों को विदा करो। ए मेरी सुहागिन प्रिया ! तुम्हारे क्या हुआ ? ओ राजन् लाज-शरम की बात है, मैं अपने प्रियतम को क्या बताऊं ? ओ गोरी ! तुम्हारा और मेरा जीव एक है। दोनों के बीच में कौन सुनने वाला है ?

ओ राजन् ! पेट कसमसाता हुआ दुखता है व कमर में चीस चलती है। ओ राजन् ! घोड़े पर सवार होकर दाई को लेने जाओ !

जन्मोत्सव पर प्रसूता स्त्री को पीलो चूनड़ ओढ़ाते हैं इसे "पीलो ओढ़ाना" कहते हैं। राजस्थान में "पीळो" सौभाग्यवती एवं पुत्रवती स्त्री का मांगलिक परिधान है–

उदयपुर से तो सायवा पीलो मंगाओ जी
तो नांनी-सी बंधण बंधाओ गाढ़ा मारूजी।
पीला तो पल्ला साहेवा बंधण वधावो जी
तो अधबिच चांद छपावो गाढ़ा मारूजी।
पीळो तो ओढ़ म्हारी जच्चा पोढ़े जी
बड़ी तो सराही सहर सराही गाढ़ा मारूजी।
पीळो तो ओढ़ म्हारी जच्चा महल पधारी जी
तो कोई हे सपूती निजर लगाई गाढ़ा मारूजी।

अर्थात् – ओ प्रियतम ! उदयपुर से पीली चूनड़ मंगवाओ। ओ अच्छे मारूजी ! उस चूनर के महीन 'बांधण' बंधवाओ। ओ प्रियतम ! उस पीले के पल्ले बंधवाओ और अधबिच में चांद छपवाओ। ओ प्रियतम ! पीला ओढ कर सोयेगी तो सारे शहर में उसकी सराहना होगी। ओ प्रियतम ! पीला ओढ़ कर मेरी जच्चा महल मे गई। तो किसी सपूती ने उसके नजर लगा दी।

सन्तान उत्पन्न होने के सातवें दिन "सूर्य-पूजा" होती है। इस अवसर पर जच्चा स्नान करती है, नवीन वस्त्र धारण करती है और घर से छुआछूत का सामान दूर किया जाता है या शुद्ध किया जाता है। सूरज-पूजा का गीत इस प्रकार है–

सूरज पूजतां कुरजा नावण थूं कठे जाय ?
जणी घर सूरज पूजती सूरज पूजावाने जाय।
डूंगर चढती वेलड़ी ढोलण थूं कठे जाय ?
जणी घर सूरज पूजती ढोल बजावा ने जाय।
डूंगर चढ़ती बेलड़ी कुमारण थूं कठे जाय ?
जणी घर सूरज पूजती कलस बदावा ने जाय।

अर्थात् – सूरज पूजा करवाने के लिए नाईन चलने लगी, तो कुरज बोली – नाईन तू कहां जाती है ? जिस घर में सूरज-पूजा है, मैं वहीं सूरज-पूजा के लि जाती हूं। पहाड़ पर चढ़ती हुई बेलड़ी बोली – ढोलिन ! तू कहां जाती है ? जिस घर में सूरज-पूजा है, मैं वहीं ढोल बजाने के लिए जाती हूं। पहाड़ पर चढ़ती बेल बोली – कुम्हारिन ! तू कहां जाती है ? जिस घर में सूरज-पूजा है, मैं वहीं कलश बंधाने जाती हूं।

सूरज-पूजा के लिए दूसरा गीत निम्न है —

सूरज पूजरण बहू नीसरी, भला भला सुगरण मनाय।
तू मत जाणे जच्चा मैं बड़ी जी,
राणी भाग बड़ो छै थारी सासू को, जिरण जाया पूत सुलखणा।
दोय दोय लाडू सोंठ का घरण उठी मचकाय,
सूरज पूजण बहू नीसरी।

अर्थात् – अच्छे अच्छे सुगन मना कर बहू सूरज पूजने के लिए निकली। जच्चा तू मत समझना कि "मैं बड़ी हूं"। राणी, तेरी सासू का भाग बड़ा है, जिसने अच्छे लक्षण वाले पुत्र को जन्म दिया है। दो-दो लड्डु सोंठ के खाकर स्त्री उमंगित होती हुई सूरज-पूजा के लिए निकली।

बालक-जन्म के बाद "जळवा" अर्थात् जल पूजने का संस्कार भी होता है। इस अवसर पर मां के मस्तक पर छोटा कलश रखा जाता है और उसके साथ स्त्रियां गीत गाती हुई जल पूजने के लिए कुए या तालाब पर जाती हैं। वे मार्ग में इस प्रकार गाती हैं —

कौरण चिरणायो झालरो, कौण लगाई गज नींव ?
पूज सुहागरण जच्चा झालरो।
सुसर चिरणायो झालरो, जेठजी लगाई गज नींव। पूज०
कौरण की या कुल वहू, कौण की या धीय ?
सुसराजी की कुल बहू, सात पांचा की है धीय
भाई तो बहन सहोदरा, पिया की बड़नार। पूज०
ओढ़ पहर जच्चा नीसरी, थानागाजी के वजार।
मांढ़ो तो चूंढो कूलडो, गाढ़ो भी लियां माय। पूज०
या कूलड़ो जब नीकले होकर जलवा माय,
कोथली को मूंढ़ो सांकड़ो घुल रह्यो रेशम डोर। पूज०
दे थारा डूम खवास ने सास ननद पहराय।
वहू ए विदाई माता थें जायो सुलक्षणो पूत
पूज सुहागरण जच्चा झालरो।

अर्थात् – किसने कुए पर झालरा चुनवाया और किसने गहरी नींव लगवाई ? सुहागन जच्चा! झालरा पूज। सुसराजी ने झालरा चुनवाया और जेठजी ने गहरी नींव लगवाई। किसकी यह कुल वहू है और किसकी यह लड़की है ? सुसराजी की यह कुल-बहू और पांच सात घरों की (प्यारी) यह बेटी है। भाई-बहनों की सहोदरा और अपने प्रियतम की मानी हुई स्त्री है। जच्चा थानागाजी के बाजार में पहिन ओढ़कर निकली। सुन्दर चित्रित, कुल्लड़ के भीतर गाढ़ा सामग्री है। कूलड़ा लेकर बच्चे की मां जलवां में

निकली किन्तु रुपये की थैली का मुंह संकड़ा है और रेशम की डोरी बंध रही है। सास ननद ने वेश अपने डूम को दिया है। मां तुमने अच्छा लक्षण वाला पुत्र उत्पन्न किया जिसमे इस बहू का विवाह हुआ। सुहागन जच्चा झालरा पूज।

राजस्थानी लोक-गीतों में "लोरी" का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है। मां आस-पास की प्रकृति, पशु पक्षी आदि से बच्चे का परिचय कराती है —

गीगा ने खिलायी ए चिड़कली
गीगा ने खिलायी ऐ !
गीगा रोवै च्याऊँ म्याऊँ
गीगो ने हंसायी ए चिडकली, गीगा ने खिलायी ऐ !
पगां अक बांधूं घूघरणा थारे
बल मोतीड़ा रौ हार, ए चिड़कली, गीगा ने ०

अर्थात् – ओ चिड़िया ! छोटे बच्चे को खेलाओ। छोटा बच्चा च्याऊं-म्याऊं रोता है। ओ चिड़िया ! छोटे बच्चे को हंसाना। ओ चिड़िया ! तेरे पैरो में मैं घूंघरु बांधू और तेरे गले में मोतियों का हार पहिनाऊं। छोटे बच्चे को खेलाना।

"गाडूलो" नामक लोकगीत भी राजस्थान में बहुत प्रसिद्ध है। स्नेहमयी माता खाती से कह रही है कि उसके पुत्र के लिए एक सुन्दर सा गाडूला घड ला —

सुण सुण रे खाती रा वेटा, गाडूलो घड़ ल्याव।
गाडूलो घड़ ल्याव, म्हारै गीगा के मन भाय।
आंम को गाडूलो घड़ ल्याव, चांदी का पात चढ़ाय।
सोने की खाती रा वेटा, कील ठोकाय।
सुण सुण रे खाती रा वेटा, गाडूलो घड़ ल्याय।

अर्थात् –हे खाती के बेटे ! सुन एक गाड़ी बना के ला जो कि मेरे छोटे बच्चे के मन को भा जाय। आम की लकड़ी की गाड़ी बना। उस पर चांदी का पात चढ़ा व सोने की कीलें ठोक दे। सुन खाती के बेटे मेरे पुत्र के लिए गाड़ी घड़ ला।

(ग) यज्ञोपवीत —

१७:३। इसे "जनेऊ" कह कर भी पुकारते हैं। विभिन्न जातियों में विभिन्न आयु व अवसर पर यज्ञोपवीत का विधान है। यज्ञोपवीत संस्कार से विद्याध्ययन का आरम्भ माना जाता है। इस अवसर पर गृह-शांति, हवन आदि धार्मिक क्रियाओं के बाद लड़का गुरु के पास काशी जाने का रिवाज पूरा करता है। कुछ कदम भागने पर लोग उसे पकड़ लाते हैं। जनेऊ से सम्बन्धित एक गीत देखिए —

बालो चाल्यो ए बहन बनारस जी,
वांका दादासा जाबा न देय, कुंवर बाला यहीं पढ़ो जी ।
थांका पढ़वा ने देस्यां मेड़ी ओवरा जी,
थांका गुरुजी ने देस्यां चतर साथ,
कंवर बाला यहीं पढ़ो जी
थांका गुरुजी ने देस्या दक्षणा धोवती जी,
थांका साथीड़ा ने देस्यां पचरंग पाग ।
कंवर बाला यहीं पढ़ो जी ।

अर्थात् – ओ बहिन ! प्यारा लड़का बनारस पढ़ने चला । उसके दादाजी जाने नहीं देते, प्यारे कंवर यहीं पढ़ो जी । तुम्हारे पढ़ने के लिए हम मेड़ी और ओवरे देंगे। तुम्हारे गुरुजी को अच्छा साथ देंगे, प्यारे कुंवर यहीं पढ़ो जी । तुम्हारे गुरुजी को दक्षिणा और धोती देंगे। तुम्हारे साथियों को पचरंगी पाग देंगे । प्यारे कुंवर यहीं पढ़ो जी।

(घ) विवाह —

१८:३ । विवाह के अवसर पर कई प्रकार के लोकाचार होते हैं । सर्वप्रथम सगाई होती है जिसके अनुसार आपस में विवाह निश्चित किया जाता है । इसके पश्चात् मुहूर्त निश्चित किया जाता है, जिसमें गणेश-स्थापना की जाती है । इस अवसर पर "विनायक" गाया जाता है —

विनायक

पूरब दिशा में सूर्यदेवजी समरथ जी,
हां जी देवा सहस किरण ले उगसी ।
मालिक तुम बिन और नहीं आसी ।
वेग पधारो गोरां का गणपतजी ।
पच्छिम दिशा में चांद देवा समरथ जी,
हां जी देवा नौ लख तारा लासी । वेगा पधारो०
कैलाशपुरी में सदा शिवजी समरथ ।
हांजी देवा ढूंडियां नाड्या लारां लासी,
वेग पधारो राणी गोरां का गणपतजी ।

अर्थात् – पूर्व दिशा में सूर्य देवता सामर्थ्यवान् हैं । हां जी, यह देवता हजार किरणों से उदय होंगे । स्वामी तुम्हारे बिना दूसरे कोई नहीं आवेंगे । गोरां के गणपतजी जल्दी पधारो । पश्चिम दिशा में चांद-देवता सामर्थ्यवान् हैं । हां जी, देव के नौ लाख ता

साथ लावेंगे। कैलाशपुरी में सदा शिव सामर्थ्यवान् हैं वे भूत-प्रेत साथ लावेंगे। रानी गोरां के गणपतजी ! जल्दी पधारिए।

वर-वधु के यहां गीत समान रूप से गाए जाते हैं। विनायक पूजा के बाद वधू के यहां पर "बनड़े" गाये जाते हैं। जिनमें यह वर्णन होता है कि बारात-बाराती कैसे हों? आदि। बनड़े का अर्थ 'दूल्हा' होता है —

सिरदार बनां जी हस्ती थे लाइजो हे कजली देश रा
उमराव बनांजी घुड़ला थे लाइजो हे खुरसांणी देस रा
सिरदार बनांजी सेवरिये झलके ओ आभा बीजली
उमराव बनांजी सोनो थे लाइजो हे लंकागढ़ देस रो
उमराव बनांजी रूपो थे लाइजो हे ऊजलपुर देस रो

अर्थात् – हे सरदार बनाजी ! (दूल्हा) आप हाथी कजली देश के लाना। हे उमराव बनांजी ! आप घोड़े खुरसाणी देश के लाना। हे सरदार बनांजी ! तुम्हारा मोड़ ऐसा चमकता है मानों आकाश में बिजली चमक रही है। हे उमराव बनाजी ! आप सोना लंका देश का लाना। हे उमराव बनाजी! रूपा (चांदी) ऊजलपुर देश से लाना।

विवाह के समय अनेक प्रकार के रीति-रिवाज होते हैं। वर-वधु के तेल चढ़ाना, पीठी करना आदि। "उबटन" को राजस्थान में "पीठी" कहते हैं। आटे, हल्दी, तेल आदि के मिश्रण से पीठी बनाई जाती है। फिर गीतों के साथ में नाई या नाईन वर-वधु के पीठी करना आरम्भ करती है —

गहुँ ए चिणां रो ऊबटणो, मांय चमेली रो तेल
अब लाडो बैठ्यो ऊबटणे ॥१॥
आओ म्हारी दायां निरख लो, आओ म्हारी मायां निरखल्यो
थां निरख्यां सुख होय, अब लाड़ो बैठ्यो ऊबटणे ॥२॥
तो कर लाडा ऊबटणो, थारा ऊबटणां में बास घणी
थारी दायां संजोयो ऊबटणो, थारी मायां संजोयो ऊबटणो ॥३॥
कोई तेल फुलेल चम्पेल घणी, चम्पा री कलियां सुगन्ध घणी
लाडा रा मन में खांत घणी ॥४॥

अर्थात् – गेहूं और चने का उबटना है जिसमें चमेली का तेल है। अब लाडा (प्यारा) उबटना करने बैठा। आओ मेरी दादियों ! मुझे देख लो, आओ मेरी माताओं ! मुझे देख आपके देखने से ही सुख होगा, अब लाडा उबटना करने बैठा। अब लाडा उबटन कर, तेरे उबटन में सुगन्ध बहुत है, तेरी दादियों ने उबटना बनाया, तेरी

उबटन बनाया। तेल, इतर व चम्पा की सुगन्ध बहुत है। चम्पे की कलियों की सुगन्ध बहुत है, लाडा के मन में प्यार बहुत है।

वर के साथ स्त्रियां विनोद करने से भी नहीं चूकती। गीतों में वे कुछ अपनी ओर से भी मिला देती हैं। उनका मन्तव्य वर के साथ हंसी करना ही होता है —

चंपले री चोसठ कलियां ए,
बनो पूरे बनी री रलियां ए।
बनड़े रे हाथ पतासा ए,
बनो करै बनी सूं तमासा ए।
बनड़े रे हाथ में डोरी ए,
बनड़े सूं बनड़ी गौरी ए।
बनड़े रे हाथ में कूंची ए,
बनड़े सूं बनड़ी ऊँची ए।

अर्थात् – चम्पा की चौंसठ कलियां ए, बना बनी की इच्छाएं पूरी करता है। बनड़े के हाथ में पतासे हैं, बना बनी से तमाशा करता है। बने के हाथ में डोरी (रस्सी) है, बनड़े से बनड़ी गोरी है। बनड़े के हाथ में कूंची है, बनड़े से बनड़ी ऊँची है।

विवाह से पहले दूल्हा या दुल्हिन को सम्बन्धित व्यक्तियों के यहां आमन्त्रित किया जाता है। खाना खाकर लौटते समय बनौली सम्बन्धी गीत गाया जाता है। इसे राजस्थान में "बनौला" भी कहते हैं —

झिर-मिर झिर-मिर मेहवो बरसे मोतीडा झड़ लागा।
म्हें थाने पूछूं कुंवर लाडला, थारो विनौलो कुण न्योतो ?
ईसर घर बहू गोरा, म्हारो विनोलो उण न्योत्यो।
सूरज घर बहू रोहणी, म्हारो विनोलो उण न्योत्यो।
घर से तो लाडो पग-पग आयो, घुड़ले चढ़ पहुँचायो।
थे चिर जीवो देवी देवता का जाया, भली ए जुगत पहुँचाया
लाम्बी सी डांडी को भवरक दिवलो, ऊपर लाल चंदोवो।

अर्थात् – झिर-मिर झिर-मिर मेह बरसता है। मोती झड़ते हैं। मैं तुमको पूछती हूं, प्यारे कुंवर तुम्हारा विनोला किसने न्योता है ? ईसरजी के घर में गोरा बहू है, मेरा विनोला उन्होंने न्योता है। घर से प्यारा पैदल चलकर आया था, उसको घोड़े पर पहुँचाया गया है। देवी-देवता आप सभी चिरंजीवो, आपने अच्छी तरह पहुँचाया है। लम्बी डांडी का तेज रोशनी वाला दीपक है और ऊपर लाल चंदोवा है।

बरात चढ़ते समय दूल्हा सज-धजकर घोड़ी पर बैठता है। उस समय उसकी व घोड़ी की, दोनों की आरती उतारी जाती है। उस समय का एक गीत इस प्रकार है —

घोड़ी पग मोड़े, झांझर बाजे।
घोड़ी गई ओ जोसीड़ा री हाट, वारी जाऊं ओ नाराणगढ़ रो सेवरो।
छोड़ो छोड़ो दादाजी म्हारो सेवरो।
छोड़ो छोड़ो काकाजी म्हारो सेवरो।
म्हाने परणवा री आई ओ हूंस।
घोड़ी पग मोड़े झांझर बाजे।
घोड़ी गई बजाजीरी हाट।
वारी जाऊं ओ नाराणगढ़ रो सेवरो।
छोड़ो छोड़ो मामासा म्हारो सेवरो।
म्हाने आई हो परणवा री हूंस।
घोड़ी पग मोड़े झांझर बाजे।
घोड़ी गई नणदोईजी री हाट, वारी जाऊं ओ नाराणगढ़ रो सेवरो।
छोड़ो छोड़ो मासाजी म्हारो सेवरो।
म्हाने परणवा री आई ओ हूंस।
घोड़ी पग मोड़े झांझर बाजे. वारी जाऊं ओ नाराणगढ़ रो सेवरो।

अर्थात् – घोड़ी पैर मोड़ती है तो झांझर बजती है। घोड़ी जोसी की हाट में गई है। वारी जाऊं ओ नारायणगढ़ का सेवरा। छोड़ो, छोड़ो दादाजी मेरा सेवरा छोड़ो। मुझे विवाह करने की उमंग हुई है। घोड़ी पैर मोड़ती है तो झांझर बजती है। घोड़ी बजाज की हाट पर गई। वारी जाऊं ओ नारायणगढ़ का सेवरा। छोड़ो, छोड़ो मामाजी मेरा सेवरा। मुझे विवाह करने की उमंग हुई है। घोड़ी पैर मोड़ती है तो झांझर बजती है। घोड़ी नणदोई की हाट पर गई। वारी जाऊं ओ नारायणगढ़ का सेवरा। मासाजी मेरा सेवरा छोड़ो, मुझे विवाह करने की उमंग हुई है। घोड़ी पैर मोड़ती है तो झांझर बजती है। वारी जाऊं ओ नारायणगढ़ का सेवरा।

बरात जिस समय दुल्हिन के द्वार पर जाती है तो वहां पर दूल्हा तलवार व वृक्ष की टहनी से तोरण मारता है। उस समय गीतों में स्त्रियां "कामण" द्वारा वर को वश में करती हैं। 'कांमण' का अर्थ होता है— जादू, टोना या वशीकरण। कामण करके वह वर को जीवन भर के लिए अपने वश में करना चाहती है। कहीं पर "कामणिया" आदि वस्तुऐं भी फेंकी जाती हैं। उनको वर के मित्र गण ढाल द्वारा रोकने का प्रयत्न करते हैं जिससे वर वशीकरण के अधीन न हो सके। तोरण के समय का यह गीत है —

तोरण में आया राईवर, थर थर कांप्या राज,
बूझां सिरदार बनी ने, कांमण कुण करया छै राज।

म्हें नहीं जांणां, म्हांरा खाती कांमणगारा राज,
खाती को नेग चुकास्यां, कांमण ढीला छोड़ो राज।
छोड्यां ना छूटै, राईवर, करड़ा घुल्या छै राज।

अर्थात् – राईवर तोरण मारने आए, व थर-थर कांपने लगे। सरदार बनी को पूछते हैं कि हे प्रिया ! कामण किसने किया ? मुझे नहीं मालूम, मेरे खाती (बढ़ई) ने कामण किया है राज। खाती का नेग (दस्तूर) चुकाऐंगे, कामण को ढीला छोड़ो ए राज। छोड़ने से नहीं छूटे, राईवर यह तो ज्यादा घुल गया है।

इसके पश्चात् वर-वधू को चंवरी में लाया जाता है। वर के दाहिनी ओर वधू को बैठाया जाता है। पुरोहित मंत्रों के साथ अग्नि देवता में आहुतियां डालता है। बाद में वह हथलेवा जोड़ता है व मंत्र पढ़ता है। राजस्थान में सात फेरों की जगह चार फेरे भी होते हैं। उस समय यह गीत गाया जाता है —

पै' लो फेरो ले म्हारी लाडो बाई दादोसा ने लाडली
दूजो फेरो ले म्हारी लाडो बाई बाबोसा ने लाडली
अगलो फेरो ले म्हारी लाडो बाई वीरोसा ने लाडली
चोथो फेरो लियो म्हारो लाडो होइए पराई
हलवां हलवां चाल म्हारी लाडो हंसेला सहेलियां।

अर्थात् – पहिला फेरा ले ओ मेरी लाडो बाई तू दादोसा की लाडली है। दूसरा रा ले ओ मेरी लाडी बाई तू बावोसा की लाडली है। अगला फेरा ले ओ मेरी लाडी बाई तू वीरोसा (भाई साहब) की लाडली है। मेरी लाडो ने चौथा फेरा लिया। अब वह पराई हो गई है। धीरे धीरे चलो मेरी लाडो वरना सहेलियां हंसेगी।

विवाह के अवसर पर "माहेरा" भरने की प्रथा होती है। पुत्र या पुत्री के विवाह के अवसर पर बहिन अपने भाई के पास पीहर जाती है व उससे याचना करती है कि अमुम-अमुक व्यक्तियों को उनके मनपसन्द की वस्तुऐं देना। भाई निश्चित समय पर आने पूरे परिवार के साथ 'माहेरा' लेकर अपनी बहिन को ससुराल आता है। भाई के आने के पहिले बहिन को उसकी सास, ननद, देवरानी आदि ताना मारती है। जब उसका भाई पहुँचता है तब उसके आंसू रोके नहीं रुकते। वह अपने भाई के ऊपर गर्व करती है। वह भाई को कहती है —

वीरा रे म्हारे चोवटे ने पेरायो, चोरासी सरायो,
मायरो पेराओ पहली म्हारे सेरिया में,
पाड़ोसी सरायो मायरो।
वीरा ओ पहलां म्हारे सासूजी ने पेराओ,

सुसराजी सरायो मायरो।
वीरा ओ पहली म्हारा जेठाणी ने पेराओ,
जेठसा सरायो मायरो।
वीरा ओ पहली म्हारी दौराणी ने पहराओ
देवरसा सरायो मायरो।
वीरा ओ पहली म्हारी नणदल ने पहराओ,
नणदोई सा सरायो मायरो।
वीरा ओ पहली म्हारी बहिनां ने पेराओ,
बेनोईसा सरायो मायरो।
बाई मल म्हारी वेन बांयड़लो पसार।
बाई गरबी, गरबी, के थारे पूतड़ला रो राज ?
के थारे धन को गरवो ? वीरा ओ पुत्र परमेश्वर को माल,
धन को कई गरवो ?
बाई ए मल म्हारी बांयड़ली पसार,
जामण रो जायो अवे मिलियो।

अर्थात् — वीरा ओ ! मायरो पहिले चोहट्टे के लोगों को पहिनाओ। सारी चौरासी के लोगों ने इसकी सराहना की है। वीरा ओ ! मायरा पहिले मेरे पड़ोसी को पहिनाओ। पड़ौसी ने मायरे की सराहना की है। वीरा ओ ! पहिले मेरी सास को पहिनाओ। सुसराजी ने मायरे की सराहना की है। वीरा ओ ! मेरी जेठाणी जी को पहिनाओ। जेठजी ने मायरे की सराहना की है। पहिले मेरी देरानी को पहिनाओ। देवरजी ने मायरे की सराहना की है। पहिले मेरी ननद को पहिनाओ। ननदोई जी ने मायरे की सराहना की है। वीरा ओ ! अब अपनी बहिन को पहिनाओ। बहनोई जी ने मायरे की सराहना की है। बाई ! तुम बांह फैला कर मिलो। बाई तुमको गर्व किसका है ? क्या तेरे पुत्रों का राज है ? अथवा तुझे धन का घमंड है। भाई ओ ! पुत्र तो परमेश्वर का धन है और धन का तो क्या गर्व किया जाए ? बाई ! बाहें पसार कर मिलो। मां जाया भाई अब मिला है।

इसके बाद कन्या को विदा दी जाती है। उस समय का दृश्य मार्मिक होता है। इतने यत्न से पाली-पोसी हुई कन्या को अपनी आंखों से दूर करना और एक अजनबी के साथ भेज देना मां-बाप के लिए बहुत कठिन होता है। फिर भी उनको हृदय पर पत्थर रखकर यह कार्य करना पड़ता है। इन गीतों को "ओलू" (याद) कहते हैं। इन गीतों के भाव इतने करुण होते हैं कि सुनने वाले की भी आंखें छलछला आती हैं। उस स. वातावरण ही ऐसा हो जाता है कि लड़की मां-बाप भाई-बहिन सखियां आदि से गले है व रोती है। एक प्रसिद्ध गीत इस प्रकार है —

म्हे थांने पूछां म्हारी धीवड़ी
म्हे थांने पूछां म्हारी बालकी
इतरो बावेजी रो लाड छोड र बाई सिध चाल्या ?
म्हे रमती बाबोसा री पोल
आयो सगेजी रो सूवटो गायड़मल ले चाल्यो
म्हे थांने पूछां म्हारी धीवड़ी
इतरो माऊजी रो लाड छोड र बाई सिध चाल्या ?

मैं तुझे पूछती हूँ मेरी लड़की ! मैं तुझे पूछती हूँ मेरी बालिका ! इतना बावाजी का लाड (प्यार) छोड कर कहां चली ? मैं बावोसा की पोल में खेल रही थी। इतने में सगोजी (रिश्तेदार) का सुआ आया और मुझे गायड़मल ले चला। मैं तुझे पूछती हूँ मेरी बेटी ! इतना माऊजी का लाड छोड कर कहां चली ?

लाड-प्यार से पाली हुई कन्या के घर छोड कर जाने से घर सूना हो जाता है। उसकी सहेलियां उदास हो जाती हैं। कहीं पर गीतों में कन्या की उपमा कोयल से दी जाती है जो उपवन को छोड़कर जा रही है —

वनखंड री ए कोयल, वनखंड छोड़ कठै चाली ?
थारी आले-दिवाले गुडियां धरी ?
वनखंड री ए कोयल, वनखंड छोड़ कठै चाली ?
थारी साथ सहेल्यां उणमणी
वनखंड री ए कोयल, वनखंड छोड़ कठै चाली ?
थारी माऊजी थारे विन उणमणा
थारी छोटी वैनड रोवे अकेलडी
वनखंड री ए कोयल, वनखंड छोड़ कठै चाली ?
थारो वीरो सा फिरे छे उदास
विलखत थारो भावजणी
वनखंड री ए कोयल, वनखड छोड़ कठै चाली ?

उपवन की ए कोयल, उपवन छोड़ कर कहां चली ? आलों में तेरी गुड़िया पड़ी हैं, वन की ए कोयल, उपवन छोड़ कर कहां चली ? तेरी साथ की सहेलियां उदास हैं, वन की ए कोयल उपवन छोडकर कहां चली ? तेरे माऊ जी तेरे बिना उदास हैं, तेरी छोटी बहिन अकेली रो रही है। उपवन की कोयल उपवन छोड कर कहां चली ? तेरे भाई उदास घूम रहे हैं तेरी भोजाई विलख विलख कर रो रही है। उपवन की कोयल उपवन छोड कर कहां चली ?

... विवाह के अवसर पर राजस्थान में अनेकों तरह के गीत गाए जा...

[आ] देवी-देवता सम्बन्धी लोकगीत

१९:३। भारतीय नारी को भारतीय संस्कृति का रक्षक कहा गया है। धार्मिक गीतों की धरोहर उस के पास सुरक्षित रहती है। नारी स्वभाव से ही धर्मभीरु होती है इसलिए धार्मिक बातों का प्रभाव उसके ऊपर बहुत जल्दी पड़ता है। राजस्थानी धार्मिक गीतों में देवी-देवताओं सम्बन्धी गीतों का महत्वपूर्ण स्थान है। देवी-देवताओं में गणेश, शिव, विष्णु, सूर्य, गंगा, तुलसी, माता, भेरू आदि पौराणिक देवी-देवताओं के गीत प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इन गीतों में सम्बन्धित देवताओं के सुप्रसिद्ध स्थानकों की पूजाविधि और सम्बन्धित लीलाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। देवी-देवताओं के विभिन्न चरित्रों का भी यथारूप चित्रण इन गीतों में किया गया है।

राम और कृष्ण सम्बन्धी लीलाओं के राजस्थानी लोकगीत भी बहुत प्रचलित हैं। गीतों में राम, लक्ष्मण, सीता आदि के उज्ज्वल चरित्र वर्णित किए गए हैं। राजस्थान में राम लीला, सम्बन्धित अभिनय-मंडलियों की सुविधानुसार वर्ष में कभी भी प्रारंभ किए जा-सकती है और इनमें रामचरित्र सम्बन्धी लोकगीत विशेष शैली में गाये जाते हैं।

कृष्ण सम्बन्धी लोकगीतों में मुख्यतः कृष्ण, राधा और गोपियों का प्रेम तथा निरूपित किया गया है। कृष्ण की विविध लीलाओं के गीत भी मिलते हैं।

राजस्थानी लोकगीतों में लोकदेवता–पाबूजी, गोगाजी, रामदेवजी, कल्लाजी आदि मुख्य हैं। इनके चरित्र राजस्थान में बड़े चाव से गाए जाते हैं। लोकगीतों में राजस्थान के देवी-देवताओं के ऐतिहासिक चरित्र बहुत मार्मिक रूप में चित्रित किये गए हैं। वास्तव में उपर्युक्त ऐतिहासिक चरित्र अपने त्याग, वीरता और परोपकारिता से राजस्थान में देवी-देवताओं की तरह से पूजे जाते हैं।

राजस्थान में भजन-मंडलियाँ भक्ति सम्बन्धी कई गीत गाती हैं; जिन्हें हरजस कहा जाता है। हरजस गीतों की संख्या बहुत अधिक है और इनमें बड़ी ही विनम्रता से आत्म-निवेदन किया जाता है। इसी प्रकार राजस्थान में भोपे भी रावणहत्थे, मंजीरे, इकतारे आदि वाद्यों की सहायता से देवी-देवताओं के गीत गाकर जनता का मनोरंजन के साथ-साथ मानसिक परिष्कार करते रहते हैं। कई साधु भी राजस्थानी गीत गाकर जनता में धार्मिक प्रवृत्तियों को प्रेरित करते हैं।

२०:३। कुछ देवी देवताओं सम्बन्धी गीत इस प्रकार है —

– भेरूजी –

भैरूजी मेवाड़ वीचाल अन्तरसीर सो गाम,
अन्तरसर की गलियां में कालुड़े रोल मचाई।
मतवाला भैरू कासी का वासी आज मुसरमान ध्यावै,
मालण लागी, तेलण लागी, लागी लाल सुहारी,

उपरोड़ा के डाकता या लटको भरे कलाल।
वणियाणी के रंग-रंगीलो बड़ा गुलगुला ल्यावे।
बामणी के सदा रंगीलो, गहरा मंगल गावे।
जाटण को लागे मतवाला, काचो दूदो पावे।
रांगड़ी के सदा रंगीलो, मद का प्याला पावे।
मतवाला भैंरू कासी का वासी।

अर्थात् – भैंरूजी! मेवाड़ के बीच में अन्तरसर सा गांव है। अन्तरसर की गलियों में कालूड़े ने मस्ती की है। मतवाले भैंरू, काशी के वासी, आज तुम्हारा मुसलमान भी ध्यान करते हैं। मालण, तेलण और लुहारी तुम्हारी मनुहार करती है और तुम्हारे ऊपर कलाली भी लटका करती है। वनियानी के लिए तू बड़ा रंगीला है। वह तेरे लिये बड़े व गुलगुले लाती है। ब्राह्मणी के लिये भी सदा रंगीला है वह खूब मंगल गाती है। जाटनी के लिए तू मतवाला लगता है। वह तुझे कच्चा दूध पिलाती है और रांघड़ी राजपूतनी के लिए तू सदा रंगीला है, जो तुझे मद का प्याला पिलाती है। मतवाले भैंरू! कासी के वासी।

२१:३। राजस्थान में कोई भी कार्य आरम्भ करने के पहले विघ्नविनाशक गौरीनन्दन गणपति देव की आराधना की जाती है। उस अवसर का एक गीत देखिए —

गौरी को नंद गणेश मनावां
हिड़दे में सारद माई रै' जी।
निवन करां म्हारे गुरां पितरां ने
गुरु म्हाने ग्यांन बताई
दिल का दाग परै कर भाई, रै जी।

अर्थात् – गौरी के नंद (सुत) गणेश जी को मनावें, हृदय में शारदा माई रहे। हमारे गुरु व पितरों को हम नमस्कार करते हैं। गुरु ने हमें ज्ञान बताया, दिल का दाग दूर करो भाई।

२२:३। गंगा स्नान कर आने के बाद भी राजस्थान में रात्रिजागरण कराने की परम्परा है। रात्रिजागरण को "रतजगा" या "रातीजगा" भी कहा जाता है। रातीजगा में 'गंगाजी' सम्बन्धी लोक गीत गाए जाते हैं, उनमें से एक गीत इस प्रकार है —

सांपड़ आया, भजन कर आया तो लीनो छै हरिनाम
प्रयाग जी में सांपड़ आया।
चांवल रांधूंली ऊजला, हरि सांपड़ आया
तो हरिया मूंगां की दाल, थारा जी में सांपड़ आया।
घी वरताऊंली वावड्यां, हरि सांपड़ आया,
[illegible] गंगाजी में सांपड़ आया।

जीमत निरखूंली आंगली, हरि सांपड़ आया,
बीजा तो पुरको बीजणो, हरि सांपड़ आया।
तो गढ़ मुथराजी को छे थाल, धाराजो सांपड़ आया।
ओछा तो पागा री ढोलणो, हरि सांपड़ आया।
तो उलट-पुलट की छै सौड़, धाराजी में सांपड़ आया।

अर्थात् – स्नान कर आए, भजन कर आए, तो लिया है हरि का नाम। प्रयागजी में स्नान कर आये। तुम्हारे लिए उजले चावल बनाऊंगी। हरिजी स्नान कर आये तो हरे मूंगों की दाल बनाऊंगी। धाराजी में स्नान कर आए तो ऊपर घी और चतुराई से झक्कर परोसूंगी। धाराजो में स्थान कर आए, जीमते समय अंगुली देखूंगी, विजयपुर का पंखी करूंगी। गढ़ मथुराजी के थाल हैं, धाराजी में स्नान कर आए। छोटे पायों की ढोलनी खाट है तो उलट-पुलट की सौड हैं। धाराजी में स्नान कर आये।

२३:३। "भोमिया"जी को भी देवताओं की श्रेणी मे रखा जाता है। उनकी प्रशंसा का निम्न गीत है —

सरवर आवे, भोमिया सरवर जाय, घुड़ला कुदावे सरवरिया पाल।
तीखा सा नैणा रो भोम्यो प्यारो लागे।
जुगल म्हारा दिवला जुगल थारी वात।
काए को दिवलो, काये री वात?
काये रो घीरत बले सारी रात?
सोना रो दिवलो रेशम री वात,
सुरीली रो घीरत बले सारी रात।
भर सुवागण जोयो चौदस की रात,
तीखासा नैणारा भोम्या प्यारा लागो राज।

अर्थात् – भोमिया सरोवर आता है, सरोवर मे जाता है। सरोवर की पाल पर घोड़ा कूदाता है। तीखे नयनों का भोमिया प्यारा लगता है। जुगल मेरा दीपक और जुगल तेरी वाती। किसका दीपक है और किसकी वाती है? किसका घी है जो सारी रात जलता है? सोने का दीपक है और रेशम की वत्ती है और सुरीली का घी सारी रात जलता है। सुहागण ने दीपक को चौदस की रात जलाया है। तीखे नयनों का भोमिया प्यारा लगता है।

२४:३। राजस्थान में रामदेवजी को बहुत माना जाता है। भांभी इन्हें अपना इष्टदेव मानते हैं। भजन करने भांभी भी आते हैं। ऐसे जागरण को "जमो" कहा जाता है। रामदेवजी का प्रसिद्ध गीत देखिए —

कोठे तो वाज्याओ अजमालजी रा छावा बाजिया?
वारी जाऊं, कोठे तो घुर्‌यो है निसांण?

आज अजमलजी रो छाबो धोकस्यां
रूणीचे तो बाजाओ, अजमलजी रा छाबा बाजियां ?
जात्री तो आवे ओ अजमलजी रा छाबा दूर का ।
वारी जाऊं सांवलिया मोट्यार
जातण आवे जो अजमल जीरा छाबा कुल वऊ ।
वारी जाऊं गोद जड़ूला जी पूत ।
चढ़े चढ़ावे थारे चूरमो और चोट्यांला नारेल ।
वारी जाऊं ज्यांरी थे पूरो आस ।

अर्थात् – कहां अजमलजी के पुत्र कहे गये हैं ? वारी जाऊं कहां नक्कारे बजते हैं ? आज अजमाल जी के पुत्र के आगे धोक देंगे । गांव रूणीचे में अजमलजी के पुत्र कहे गये हैं । अजमल जी के पुत्र के लिए दूर–दूर के यात्री आते हैं । सांवलिया मोट्यार ! वारी जाती हूं । कुल बहू जात के लिए आती है । वारी जाऊं, उनकी गोद में पुत्र है । तुम्हारे चूरमा चढ़ाता है और चोटी वाला नारियल चढ़ाता है जिसकी तुम आशा पूरी करते हो, वारी जाऊं ।

२५:३ । "राव तेजाजी" का एक गीत इस प्रकार है ––

कल में तो दोउ फुलडा वड़ा जी, एक सूरज दूजो चांद हो ।
बासक राओ, तेजाजी थे वड़ा जी,
सूरज री किरणां तपे जी, चन्दा री निरमल रात हो ।
इन्दर तो वरसावे जी, धरती में निपजेला धान हो
मायड़ जण जनम दीना, वाप लडाया छे लाड़ ओ ।

अर्थात् – कलयुग में दो फूल बड़े हैं । एक सूरज और दूसरा चांद । वासुकि राव तेजाजी तुम बड़े हो । सूरज की किरणें तपती हैं और चांद की निर्मल रात होती है । इन्द्र बरसेगा और धरती में धान उत्पन्न होंगे । जिस मां ने जन्म दिया और जिस बाप ने प्यार किया, उसको धन्य है ।

(ङ) व्रत-सम्बन्धी लोकगीत

२६:३ । भारतीय पुराणों व शास्त्रों में ऐसा विश्वास किया जाता है कि व्रत, उपवास, तुलसी-पूजन आदि से मनचाही वस्तु की प्राप्ति हो जाती है । राजस्थान में व्रत स्त्री-पुरुष दोनों ही रखते हैं । एकादशी, पूनम, जन्माष्टमी, शिवरात्रि आदि का व्रत पुरुष भी करते हैं । तीज, गणगोर, नवरात्रि, रामनवमी, गंगादशमी, सावन के सोमवार, कार्तिक मास, गणेश चतुर्दशी आदि के व्रत विशेष उल्लेखनीय हैं जिनको मुख्यतः स्त्रियां करती हैं । "तुलसी महातम" का राजस्थानी लोकगीतों में विशेष उल्लेख है । तुलसी-पूजन कुंआरी कन्याएं

मनचाहा पति पाने के लिए व नव-वधुएँ सन्तान या पति-प्रेम प्राप्ति के लिए करती हैं। एक लोकगीत में तुलसी की शालिग्राम के साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की गई है —

चांद तो बाबुल घट बढ़ ऊगें तो,
सूरजजी रे किरणां घणेरी हो राम !
ईसर तो सोला दिन आवे तो,
सिवजी के जटा ए घणेरी हो राम !
बिरमा बाबाजी वेद पढ़ावे तो,
विनायक के सूंड बडेरी हो राम !
किसन बाबाजी गायां चरावें तो,
ए वर म्हांने ना भावे हो राम !
म्हाने म्हारो सालगराम वर हेरी तो,
बे म्हारी ओड़ निभावे हो राम !

अर्थात् हे बाबुल ! चांद तो घटता-बढ़ता हुआ उगता है सूरज जी के किरणें बहुत । ईसरजी तो सोलह दिन आते हैं व शिवजी के जटाएँ बहुत हैं ! हे राम ! ब्रह्मा बाबाजी वे पढ़ाते रहते हैं व गणेश जी के सूंड बहुत बड़ी है, हे राम ! कृष्ण बाबाजी गो चराते हैं, ये सब वर मुझे अच्छे नहीं लगते हैं। हे राम ! मुझे तो मेरा शालिग्राम वर ढूंढो, मेरी आन निभा सकते हैं।

२७:३ कार्तिक मास में ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करने का बड़ा माहात्म्य है। स्त्रियाँ सुबह र बजे उठ कर स्नान करती हैं तब यह गीत गाती हैं —

सात सयांई भूंमखे राधा न्हावण चाली ओ राम !
आड़ा किसन जी फिर गिया, थांने जाण न देस्या ओ राम !
थारा जी बरज्या ना रेवां, म्हारी सास खिनाया ओ राम !
खोल्याजी स्यालू, स्यावटा, राधा जल में पधारी ओ राम !
लीन्या किसन जी कापड़ा जाय कदम चढ़ बैठ्या ओ राम !
देद्यो किसन जी कापड़ा, लज्जा राखो म्हारी ओ राम !
थांरा जी कपड़ा जद देवां, जल सैं हो ज्याओ न्यारा ओ राम !
जल सैं न्यारा ना होवां, थे पुरुष म्हें नारी ओ राम !

अर्थात् – सात सखियों के साथ में राधा नहाने को चली, ओ राम ! उनके सामने कृष्णजी फिर गए और कहने लगे तुम्हें जाने न दूँगा, ओ राम ! तुम्हारे रोकने से न रहूँगी, री ! सास ने भेजा है, ओ राम ! स्यालू व स्यावटा खोलकर राधा जल मे उतरी, ओ राम ! किसनजी ने कपड़े लिए व कदम्ब की डाल पर जा कर बैठ गये, ओ राम ! किसन जी क

दो, मेरी लाज रखो ओ, राम ! तुम्हारे कपड़े तब दूंगा जब तुम जल से अलग हो जाओगे ओ राम ! जल से तो अलग न होंगी क्योंकि तुम पुरुष हो और मैं नारी हूँ, ओ राम !

२८:३ । औरतें गणगोर की मनौती मनाती हैं, उस समय वे निम्न गीत गाती हैं-

गोर ये गणगोर माता खोल ऐ किवाड़ी
बायर ऊभी थानें पूजण वाली ।
पूजो ये पूजन्ता वाली, कांई कांई मांगो ?
कान कुंवर सो बीरो मांगो, राई सी भौजाई ।
जलधर जामी बाबल मांगा, राता देई मायड़ ।
बड़ो दुमालिक काको मांगा, चूड़ला वाली काकी ।
फूस उड़ावण फूफो मांगा, कूडो धोवण भूवा ।
काजल्यो बहणोई मांगा, सदा सुहागण बहना ।

अर्थात् – गोर ए गणगोर माता ! किवाड़ खोल, बाहर तुम्हारी पूजा करने वाली खड़ी हैं । पूजो ओ पूजने वाली तुम क्या, क्या मांगती हो ? कान्ह कुंवर सा भाई मांगती हैं। राई सी भोजाई मांगती हैं । श्रेष्ठ स्वामी जैसा पिता मांगती हैं । राता देई जैसी माँ मांगती हैं । श्री सम्पन्न काका मांगती हैं । चूड़ी वाली सुहागन काकी मांगती हैं । फूस उड़ाने वाला कमजोर फूफा मांगती हैं । कूड़ा धोने वाली भुआ मांगती हैं । काजल वाला बहनोई मांगती हैं और सदा सुहागण बहिन मांगती हैं ।

२९:३ । तुलसी और पीपल के पेड़ को स्त्रियां बहुत भक्ति से पूजती हैं । बालिकायें शाम को तुलसी के दिया जलाती है व मनचाहे वर की कामना करती हैं । वे तुलसी से पूछती हैं कि तुम्हे इतने सुन्दर कान्ह कुंवर किस भांति प्राप्त हुए ! तब तुलसी उनको कहती है –

चेतां में ए भैणां गोरल पूजी तो
निरणी ऊठ संवारी हो राम !
वैसाखां ए भैणां बड़ पीपल सींच्या तो –
स्यो पर लोटो डाल्यो हो राम !
जेठां में ए भैणा जेठुड़ा घाल्या तो
बिन मांग्यो पाणी पायो हो राम !
पगल्यां सूं ए भैणां पग न धोयो तो –
दिवने सूं दिवलो न जोयो हो राम !
आलो ए भैणां पीपल न काट्यो तो —
बैठी गउ न सताई हो राम !
भूखा विपर न उठाया, ए भैणां तो—
कुंवारी कन्या न मारी हो राम !

अतणां तो हे भैणा जप तप कीन्या तो—
जद ए किसन वर पायो हो राम !

अर्थात्–चैत में हे बहिन गोरल पूजी, विना भोजन उठकर उसको संवारा, ओ राम ! वैशाख में हे बहिन बड़, पीपल सींचे, शमी पर पानी का लोटा डाला, ओ राम ! जेठ मे हे बहिन जेठुड़ा डाले, बिन मांगे पानी पिलाया ओ राम ! हे बहिन पैर से पैर न धोये तो दिये से दिये को न जलाया, ओ राम ! हे बहिन कभी गीला पीपल न काटा, और बैठी हुई गाय को कभी न सताया, ओ राम ! हे बहिन ब्राह्मण को कभी भूखे वापिस न भेजा, तो कुंवारी कन्या को कभी न मारा, ओ राम ! हे बहिन इतने जप-तप किए तो जाकर किसनजी वर मिले, हो राम !

३०:३ । राजस्थान में औरतें चौथ माता को बहुत मानती है। चौथ का वे व्रत रखती हैं व नये २ कपड़े पहिन कर शाम को चौथ माता की पूजा करती है कि सदा उनका सुहाग अमर रहे और वे श्री सम्पन्न रहें —

थे तो चौथ मनाल्यो जी,
थारे धन लिछमी गोपाल, सकड़ री राणी चौथ मनाल्यो जी।
सोने की घडाऊँ मेरी माय, रूपेरी घडाऊँ मेरी माय,
तनै ए पुवाऊँ भवानी, पीला पाट में,
म्हारे सेठ निवाज मेरी माय सेठाणी,
अभचल राखो चूड़लो।

अर्थात् – तुम तो चौथ मनालो जी ! तुम्हारे धन और [illegible] होगा। सब की रानी ! चौथ मना लो जी। मेरी मां ! सोने की बनवा लूंगी। चांदी की बनवा लूंगी और देवी तुझे पीले पाट में पिरोवा लूंगी। मेरा स्वामी पालन-कर्ता सेठ है और मैं सेठानी। मेरे चूड़ले को अविचल रखना।

३१:३ । मनोवांछित वर पाने के लिए देवताओं में शंकर भगवान की पूजा की जाती है। शंकर का प्रेम पार्वती के लिए अटूट व अखंड है। शंकर के जीवन पार्वती के सिवाय और कोई दूसरी नारी आई ही नहीं। सती ने ही पार्वती का अवतार लिया था। पार्वती शंकर से बिछुड़ जाती है। वह दक्ष-यज्ञ में भस्म हो जाती है। शंकर उसको छाती से लगाये ध्यान मग्न हो जाते हैं। सती दूसरा जन्म पार्वती के रूप लेकर शंकर भगवान की आराधना करती है, शंकर भगवान प्रसन्न हो जाते है। उनकी बरात हिमालय के यहां पहुँचती है। एक लोक गीत में उनकी बरात का वर्णन देखिए –

ऊंची चढ़ देखूं ए माय
जान किसी म्हारी गौर री।

सब जान्यां रे बागा ए मांय
मा' देवजी मृगछाल पैर्‌यां
सब जान्यां रे कुंडल ए मांय
मा'देवजी बिच्छु लटकायां
सब जान्यां रे जनेऊ ए मांय
मादेवजी सरप लटकायां
सब जान्यां रे मोचड़ियां ए मांय
मा'देवजी पांवडियां पैर्‌यां
मरूं ए के जीवूं ए मांय
बींद बुरो म्हारी गौर रो
थें तो रूप संवारो मा'राज
जीव दोरो म्हारी माय रो
ऊंची चढ़ देखूं ए मांय
जान किसी म्हारी गौर री
सब जान्यां रे अंगरखी ए मांय
मा'देवजी रे जामो केसरियां
सब जान्यां रे मोती ए मांय
मा'देवजी रे कुंडल ए मांय
सब जान्यां रे जनेऊ ए मांय
मा'देवजी रे हार पैरियां
सब जान्यां रे फूलड़ा ए मांय
मा'देवजी रे सेवरो बंधियो।

अर्थात् – पार्वती का विवाह हो रहा है। श्मशान वासी शिव की बारात आई है। गौरी की माता बारात देखने ऊपर चढ़ जाती है। देखें गौरी की बारात कैसी आई है? सारे बारातियों के तो बागे है, महादेवजी ने मृगछाला लपेट रखी है। सभी के कानों में कुण्डल हैं, वर के कानों बिच्छु लटक रहे हैं। औरों के गले में जनेऊ शोभायमान है, महादेवजी के गले में भुजंग लिपट रहे हैं। बरातियों के पैरों में तो सुन्दर जूते हैं, भोलानाथ खड़ाऊ पहिने हुए हैं।

पार्वती की माता रो पड़ती है। मैं मर जाऊं। पार्वती के वर बड़ा कुरूप आया है। माता की दशा देख, पार्वती शंकर से सुन्दर रूप धारण करने की प्रार्थना करती है।

अब माता देखती है, औरों के तो अंगरखी है, दूल्हा के केसरिया जामा है। औरों

के तो मोती हैं, महादेव के कुंडल। सभी बारातियों के तो गले में जनेऊ हैं, महादेव के हार। औरों ने तो पुष्प धारण कर रखे हैं, महादेव सेहरे में सज्जित हैं।

३२:३। इस तरह हम देखते हैं कि लोकगीतों में देवी-देवताओं का महत्वपूर्ण स्थान है। मांगलिक और पूजा के अवसर पर देवताओं को गा-गा कर मनाया जाता है। नवरात्रि के दिनों में देवी की पूजा निरन्तर चलती रहती है। विवाह के शुभ अवसर पर विनायकजी को मनाया जाता है। वर्षा के लिए इन्द्र व इन्द्राणी की मनौतियां की जाती हैं। कामना-प्राप्ति के लिये शिव-गौरी को रिझाया जाता है। इस प्रकार समय-समय पर सभी देवी-देवताओं के गीत गाए जाते हैं।

ख. राजस्थानी मनोरंजनात्मक लोकगीत

म्हें तो बुलाया होल्यां पामणा जी सायबा।
आया गणगोर्‌यां री तीजरा।
बंधी कमर कस खोल दो जी सायबा,
छोगो विराजे लेर्‌यां पाग में जी सायबा।
म्हें तो जाण्यां छे राजन फूल गुलाब रा,
नीसर गया करेण रा फूल रा,
बंधी कमर कस खोल दो जी सायबा,
छोगो विराजे लेर्‌यां पाग में जी सायबा।

अर्थात् – प्रियतम ! कमर की बंधी हुई कस खोल दो जी। प्रियतम ! आपकी लहरिया पाग में तुर्रा शोभायमान है। सायबा जी ! हम सायबा सायबा करती हैं और आप सौत से मिले रहते हैं। प्रियतम ! हमने तो आपको होली पर मेहमान बुलाया और आप गणगौर की तीज पर आये। प्रियतम कमर की बंधी हुई कस खोल दो जी। आपकी लहरियां पाग में तुर्रा शोभायमान है। राजन हमने तो आपको गुलाब का फूल समझा और आप करेण (कनेर) के फूल निकले। प्रियतम ! कमर की बंधी हुई कस खोल दो जी। आपकी लहरिया पाग में तुर्रा शोभायमान है।

प्रियतम कुछ नाराजगी जाहिर करता हुआ प्रस्थान की आज्ञा मांगता है। गोरी जब यह सुनती है कि रसिया बालम अपनी मारुड़ी से रूठ गया है तब वह उसे रोकती है और गाती है—

म्हारा हंज्या मारू यांई रेवो जी,
म्हारी लाल नणद रा वीर,
म्हाने कूंण खेलावे गणगोर ?
म्हारा हंज्या मारू यांई रेवो जी,
यांई रेवो पातलिया सेण यांई रेवोजी,
आपने रास्ता में मली गणगोर,
म्हारा हंज्या मारू यांई रेवो जी।

अर्थात् – मेरे प्यारे प्रियतम ! यहीं रहो ! मेरी लाल ननद के वीर ! हमें कौन गणगौर खेलावे ? मेरे प्यारे प्रियतम यहीं रहो। पातलिया साजन यहीं रहो। आपको मार्ग में गणगोर मिली। प्यारे यहीं रहो।

गणगोर सम्बन्धी एक लोकगीत यह भी है —

म्हारा राजा आज तो गुलाबी गणगोर छे,
म्हारा राजा आज तो बसन्ती गणगोर छे।

माथा ने मेंमद अजब बण्यो छे,
रखडी पर मोर छे,
म्हारा राजा आज तो गुलाबी गणगोर छे।
मुखडा ने वेसर अजब बण्यो छे,
टीली पर मोर छे
म्हारा राजा आज तो गुलाबी गणगोर छे।

अर्थात् – मेरे प्यारे राजा! आज तो गुलाबी गणगोर है! मेरे राजा! आज तो बसन्ती गणगोर है। सर पर मेंमद अनोखा बना हुआ है। रखड़ी पर मोर है। मेरे राजा! आज तो गुलाबी गणगोर है। मुंह पर वेसर अनोखा बना हुआ है। बिन्दी पर मोर है। मेरे राजा! आज तो गुलाबी गणगोर है।

पत्नी को गणगोर खेलने पति नहीं जाने देता है क्योंकि उसी के सहारे तो वह जीवित है! पत्नी जाना चाहती है। पति न तो रात को जाने देता है न दिन को, तब पत्नी कहती है—

भंवर म्हाने खेलण दो गणगोर
म्हारी सैंया जोवे बाट
ओ भंवर म्हाने खेलण दो गणगोर।
के दिन री गणगोर थांके
के दिन री गणगोर
जी थांने कतरा दिन रो चाव
ओ भवर म्हाने खेलण दो गणगोर।
दस दिन री गणगोर ओ भंवर
म्हारे दस दिन री गणगोर
जी म्हांने सोळा दिन रो चाव
ओ भंवर म्हाने खेलण दो गणगोर।
नहीं जावां दां सारी रात ओ सुन्दर,
थांने नहीं जावां दां सारी रात
जी म्हारा मेलां री रखवाळ
सुन्दर थांने नहीं जावा दां सारी रात
घड़ी दोय जावा दो भंवर
म्हांने घड़ी दोय जावा दो
जी म्हारी सासू सपूती रा जोध
ओ भंवर म्हांने खेलण दो गणगोर।
म्हारी सैंया जोवे बाट ओ पना मारू

म्हारी सैंयां जोवे वाट
म्हारी प्रानोजा रो जलद सुभाव
श्रो भंवर म्हाने खेलण दो गणगोर ।
म्हारी रात रिझावण दिन वतलावण
जावा नी दां सारी रात
म्हारी सैंयां जोवे वाट
श्रो भंवर म्हाने खेलण दो गणगोर ।

अर्थात – भँवर ! मुझे गणगोर खेलने जाने दो। मेरी सहेलियां बाट देख रही हैं। मुझे गणगोर खेलने जाने दो। कितने दिनों की गणगोर है और कितने दिनों का चाव है ? दस दिन की गणगोर है और मुझे सोलह दिन का चाव है। भँवर, मुझे गणगोर खेलने जाने दो। सुन्दरी, सारी रात के लिए मैं नहीं जाने दूंगा। तू मेरे महलों की रखवाल (रक्षक) है, सारी रात नहीं जाने दूंगा। दो घड़ी के लिए मुझे जाने दो। मेरी सपूती सासू के जोधा सहेलियां प्रतीक्षा कर रही हैं। मुझे दो घड़ी के लिए जाने दो। मुझे गणगोर खेलने का चाव है और मेरे भंवर का मिजाज तेज है, मुझे जाने नहीं देते। रात को रिझाने वाली और दिन में बातों मे बहलाने वाली, तुम्हें सारी रात के लिए नहीं जाने दूंगा। मुझे गणगोर खेलने जाने दो। भंवर ! सखियां बाट देख रही हैं।

(आ) तीज के लोकगीत

३५:३। श्रावण में तीज का त्योहार प्रमुख है। इस अवसर पर परिवार के सभी प्रियजन एकत्र होते हैं। दूर तक गये हुए व्यक्ति भी अपनी प्रियतमाओं से मिलने के लिए चाहे वे पीहर में हो या ससुराल में लेने पहुँच जाते हैं। इस अवसर पर स्त्रियां बागों में झूले डलवाती हैं। विवाहिता स्त्रियों का यह प्रमुख त्योहार है। तीज के अवसर पर "लहरिया" नामक वस्त्रों का विशेष रूप से व्यवहार किया जाता है। रंग-बिरंगी बंधेज की ओढ़नियां, साफे, साड़ियां और पगड़ियां पहनी जाती हैं। इन्द्र-धनुषी भांत को "धनक", लाल-श्वेत धारी को "राजाशाही", पचरंगी त्रिकोणात्मक धारी वाला "भूपालशाही" और कालीसफेद धारी वाले "काजली लहरिये" कहे जाते हैं। तीज से सम्बन्धित एक गीत इस प्रकार है—

तीज सुण्यां घर आव।
मंझल आपरी नोकरी म्हारा राज,
तीज सुण्यां घर आव।
कूण दिसा आपरी नौकरी जी म्हारा राज,
कूण दिसा नालू वाट, तीज सुण्यां ०
उगेणी दिसा आपरी नौकरी जी म्हारा राज,
आथूणी दिसा नालू वाट, तीज सुण्यां०
पांच रुपियारी आपरी नौकरी जी म्हारा राज,
लाख मोहर री तीज, तीज सुण्यां ०

तीज सुनकर घर आइये। मेरे राजा! दूर की नौकरी को रहने दीजिए और तीज सुनकर घर आइये। किस दिशा में आपकी नौकरी है ? मेरे राजा। मैं किस दिशा मे आपकी राह देखती रहूँ ? पूर्व में आपकी नौकरी है। मेरे राजा! और मैं पश्चिम मे आपकी राह देख रही हूँ। पांच रुपयों की आपकी नौकरी है। मेरे राजा, लाख मोहर की यह तीज है, इसलिए तीज सुनकर घर आइये।

फिर यह विरहिणी आम पर बैठी हुई कोयलड़ी को भी दो शब्द सुनाती है —

आंबे जी बैठी कोयलड़ी
दोय सवद सुणावे जी।
जाय ढोला जी ने यूं कहिजे—
पैली तीज पधार।
खरची खंदाऊं म्हारा बाप री
पैली तीज पधार।
खरची घणी है म्हारी मारूड़ी,
नी है राणा जी री सीख,
घुड़लो खंनाऊं म्हारा बाप रो,
पैली तीज पधार।
घुड़ला घणा है म्हारी मारूणी
नहीं दे राणा जी म्हांने सीख,
आड़ी तो गोरी। नदियां फिर रही,
बैरण हुई है बनास।
कीर रा बेटा म्हारा भायला।
बीरा म्हारा! ढोलाजी ने पार उतार।
कांई तो देस्यो रीझ रो,
कांई तो देस्यो म्हांने इनाम!
कड़ियां री कटारी देस्यां हो बीरा म्हारा
सेज चढ़ियां रो सरपाव।

अर्थात् – आम पर बैठी हुई कोयल को दो शब्द सुनाती है, जाकर प्रियतम से कहना कि पहली तीज पर घर आ जावें। अपने बाप का खर्चा भेजती हूं। पहली तीज पर ही आ जावें। मेरी मारुणी! खर्चा तो मेरे पास भी बहुत है किन्तु राणाजी की सीख नहीं है। अपने बाप का घोड़ा भेजती हूं, पहली तीज पर ही पधारिये। मेरी मारुणी! घोड़े तो मेरे पास भी बहुत हैं। किन्तु राणाजी हमको सीख नहीं देते हैं। फिर मेरी गोरी रास्ते में नदियां बह रही हैं। बनास नदी तो बैरिन ही हो गई है "कीर" (से नदी पार कराने वाले) के बेटे मेरे लाडले भाई होते हो, मेरे प्रियतम को

देना। इस खुशी का नगा दोगी और हमको क्या पुरस्कार मिलेगा? मेरे भाई! तुमको कड़ी वाली कटार देंगे और सेज चढ़ने का सरपाव देंगे।

ज्यों–ज्यों तीज समीप आती है, विवाहित लड़कियां पीहर जाने को आकुल होती है। कौए उड़ाती हुई अपने भाई की प्रतीक्षा करती तथा कहती हैं—

लाग्यो लाग्यो मां, सावण रो मास,
तीज तिवारां मां, बावड़ी जे।
और सहेली मां पीवरिये ने जाय,
हूं तो तरसूं मां सासरे जे
उड़ जा उड़ जा म्हारी नींबड़ली रा काग,
वीरो आवें मेरो पावणो जे,
बोलूं बोलूं मां बालाजी रा रोट,
चढ़ चढ़ देखूं मां डागले जे।
आई आई मां पीवरिये री ए कूंज,
आय र वैठी मां नीमड़ो जे,
कूंजा राणी थारे गले में कंठली ए बांध,
पगल्या बांध्यां थारे घूघरा जे,
कहज्यो कहज्यो म्हारी माऊ जी ने ए जाय,
वीरो भेजे ज्यूं लेण ने जे।

अर्थात् – मां! सावण का महीना लग गया है और तीज का त्यौहार भी आ गया है। सहेलियां अपने पीहर जा रही हैं और मां मैं ससुराल में ही तरस रही हूं। मेरी नीमड़ी पर वैठे कौए उड़ जा, मेरा भाई मेहमान बन कर आ जावे। मैं हनुमान जी को रोट (वड़ी रोटी) भेंट करने की मनौती करती हूं और मां, छत पर बार–बार जाकर भाई की राह देखती हूं। मां! पीहर की कूंज आई और नीम पर वैठ गई। कूंजा रानी गले में कंठला बांध और पैरों में घूघरे। मां को जाकर कहना कि भाई को लेने जल्दी भेजो।

[ङ] दीपावली के लोकगीत

३६:३। राजस्थान में किसान लोग स्यालू फसल काट कर रखने के पश्चात् दीपावली का त्यौहार बड़ी ही उमंग और उत्साह से मनाते हैं। घरों को लीपा-पोता जाता है, मरम्मत करायी जाती है और मांडने आदि मांडे जाते हैं। विविध प्रकार से घर की शोभा बढ़ाई जाती है। दीपक को संस्कृति का प्रतीक माना है। अन्धकार का विनाश कर दीपक अपनी अखण्ड ज्योति से मानव–हृदय को प्रकाशित करता रहता है। अमावस्या की काली रात्रि की कालिमा को दीपकों के प्रकाश से दूर किया जाता है। दीपों की माला बन जाती है इसीलिए इसको दीपमालिका भी कहते हैं। राजस्थानी महिलाओं को भी लोकगीतों

में "दिवले री जोत" से सम्बोधित किया गया है। दीपावली के उपलक्ष में गाये जाने वाला एक गीत इस तरह है—

सोने रो म्हे दिवलो घड़ास्यां,
रेसम वाट वटास्यां जी।
च्यार वाट रो चौमुख दीवो,
घी सूं म्हे पुरवास्यां जी।
चांदी री थाल मेल म्हारो दिवलो,
रंग महल ले जास्यां जी,
मही मही वाट सुरंग म्हारो दिवलो,
रंग महल जगवास्यां जी।

अर्थात् – सोने का हम दीपक तैयार करावेंगे और रेशम की बत्ती बनायेंगे। चार बत्तों का चौमुखो दीपक हम घी से पूर्ण करेंगे और फिर चांदी की थाल में रखकर रंग-महल में ले जावेंगे। महीन बत्ती और सुरंग हमारा दीपक। ऐसे दीपक से रंगमहल प्रकाशित हो जावेगा।

पति परदेश में है, दशहरा आ गया लेकिन प्रियतम नहीं आया। पत्नी दरवाजे पर आंखें लगाए बैठी है; कब उसका निर्मोही आयेगा, लेकिन न तो पाती ही आई न वह स्वयं। तब वह उसको दशहरे का प्रणाम भेजती है और याद दिलाती है कि हे प्रियतम! दीपावली घर की ही करना—

कांई दसरावा रो मुजरो, दीवाल्यां घर री करज्यो जी ढोला।
कांई कांकड़िया पधारिया जी ढोला,
कांकड़िया कलस बंधाया जी ढोला,
दीवाल्यां घर री करजो जी ढोला।
कांई बागां में पधारिया जी ढोला,
मालीड़े फूलड़ा बछाया जी ढोला,
दीवाल्यां घर री करज्यो जी ढोला।
कांई चौवटिये पधारिया जी ढोला,
चौरास्यां चंवर ढुलाया जी ढोला,
दीवाल्यां घर री करज्यो जी ढोला।
कांई दरवाजे पधारिया जी ढोला
कांई मेलां में मंगल गाया जी।
कांई दसरावा रो मुजरो
गढ़पतिया राजा आवो जी मेलां।

अर्थात् – दशहरे का प्रणाम प्रिय ! दीवाली का त्योहार घर पर ही मनाना। जंगल में पधारे प्रियतम ! और जंगल में कलश बंधवाए । दीवाली घर की करना । प्रियतम! बागों में पधारे और माली ने फूल भेंट किए । दीवाली घर की करना, प्रियतम ! चोहट्टे में पधारे प्रियतम ! और चोरासिये लोगों ने चंवर डुलाये । दीवाली घर की करना प्रियतम! दरवाजे पधारे प्रियतम ! और दरवाजे पर हाथी को झुकाया, दीवाली घर की करना प्रियतम ! महलां में पधारे प्रियतम ! और महलों में मंगल-गान हुआ । दशहरे का प्रणाम, गढ़पतिया राजा महलों में पधारना ।

३७:३ । "हरणी" मेवाड़ के बालकों का बहुत ही प्रिय गीत है । मुहल्ले अथवा गांव-गवाड़े के लड़के अलग २ टोलियों में एकत्रित हो जाते हैं व घर-घर हरणी सुनाने के लिए निकलते हैं । घर के लोग लड़कों को फिर थोड़ा अनाज या पैसा देते हैं । ऐसी प्रथा पंजाब में भी है जिसे "लोहड़ी" कहते हैं । हरणी-गायन का यह क्रम नोरतों के कुछ दिन बाद प्रारम्भ होता है और दीपावली तक चलता है । हरणी का कुछ अंश इस प्रकार है —

हरणी हरणी थूं क्यूं दुबली ए ।
चाल म्हारे देस ।
राता गऊवां री घूघरी ए ।
नवी तेली रो तेल
सल्हा सायजादी लौड़ी ।
म्हूं तो हरणी गावा निकलियो रे ।
कूंण मल्यो दातार
लीला घोड़ा वालो रामजी रे ।
दुनियां रो दातार ।
सल्हा सायजादी लौड़ी ।
लौड़ी-लौड़ी थने कणी रंगी ए ?
रंगी ए रामे भील ।
रामा भील ने बुलावो रे ।
नाक में घालूं तीर ।
साल्हा सायजादी लौड़ी ।
आम्बो निपज्यो भाई माळवे रे,
डाळ लगी गुजरात ।
फळ लागा भाई द्वारका रे,
खाइग्यो बदरीनाथ ।
सल्हा सायजादी लौड़ी ।

अर्थात् – हरणी, हरणी तू क्यों दुर्बल है ? मेरे देश चल । लाल गेहूं की घूगरी और नई तिल्ली का तेल खाना । सल्हा छोटी शहजादी । मैं तो हरिणी गाने के लिए निकला ।

रसिया फागण आयो।
चार कूंट रो चोंतरो हो रसिया,
जिसपे कातूं सूत।
तो सासू मांगे कूकड़ी,
तो साजन मांगे रूप। रसिया०
दन्यू दांगा कूकड़ी हो रसिया
तो रात्यूं दांगा रूप हो। रसिया०
चरा चरी रो बेवड़ो हो रसिया,
तो मधरी चालूं चाल
सासूजी नरखे बेवड़ो हो रसिया०
ने साजन नरखे चाल। हो रसिया०
सूरज थांने पूजती
तो भर-भर मोत्यां थाल
छनेक मोड़ो ऊगज्यो हो
म्हारा भंवर चढ़े दरबार।
रसिया फागण आयो।

अर्थात् – रसीले ! फागुण महीना आया। चार कोनों का चबूतरा है जिस पर बैठकर मैं सूत कातती हूं। सासू सूत की कूकड़ी मांगती है और साजन मांगते हैं रूप। दिन में देंगे कूकड़ी और रात में देंगे रूप। चरु और चरवी का बेवड़ा (पानी भरने के बर्तन) हैं जिनको सर पर रखकर मैं धीमी-धीमी चाल से चलती हूं। सासूजी मेरा बेवड़ा देखती हैं और साजन देखते हैं मेरी चाल। सूरज आपको मोतियों के थाल भर-भर कर पूजूं थोड़ी देर में निकलना, नहीं तो मेरे प्रियतम मुझे छोड़कर नौकरी पर दरबार में चले जायेंगे। रसीले ! फागुन महीना आया।

होली के ऊपर रंगों की छटा निराली ही होती है। गोरी के किसी ने पिचकारी मारी है —

गोरी रा बदन पे कुण मारी पिचकारी, मोय बताओ।
चढ़ता जोबण पे कुण मारी पिचकारी ? मोय०
माथाने मेंमद, अधक बराजे,
तो रखड़ीरी छब न्यारी।
बाई सा रा बीरा सासूजी रा जाया,
तो राजन मारी पिचकारी
कुण मारी पिचकारी। गोरी रा०

अर्थात् – गोरी के बदन पर किसने पिचकारी मारी ? मुझे बताओ। मेरे विराज-मान यौवन पर किसने पिचकारी मारी ? मस्तक पर मेंमद बहुत शोभायमान है तो इसकी को छबि भी अनूठी है। ननंद बाई के भाई, सासूजी के पुत्र, प्रियतम ने पिचकारी मारी है। गोरी के बदन पर किसने पिचकारी मारी है ?

ङ. शिकार सम्बन्धी लोकगीत

४०:३। शिकार राजसी क्रीड़ा है किन्तु इसका लोकोपयोगी महत्व भी कम नहीं है। ग्रामीण जनता को जंगल के हिंसक पशु तंग करते रहते है। सुअर खेती उजाड़ देता है, सिंह आदि जनता को त्रास पहुँचाते है। तब राजा का यह परम कर्तव्य हो जाता है कि वह प्रजा की भलाई के लिए इन पशुओं का विनाश करे। इसमें एक तो जनता के निकट आने का और उनका प्यार पाने का मौका मिलता है व दूसरा उनको अपने देश की जनता की वास्तविक स्थिति ज्ञात होती है। शिकार सम्बन्धी कुछ लोक गीत राजस्थान में बहुत प्रचलित हैं। उनमें से सुअर के सम्बन्ध में एक गीत इस प्रकार है —

सुअरिया ए चढ़ ऊंचो जोवजे कांई करे ओ बेटा रावरा ?
भूंडणड़ी ए अठे चढ़िया बेटा रावजी रा।
सुअरिया ए ऊंचो चढ़ जोवजे कांई करे ओ बेटा रावरा ?
भूंडणी ए भालां रा भलका एड़े चढ़िया,
भूंडणी तरवारां चमक्या सेलड़ा,
ए जाय न छपाड़े थारा छेवरिया।
सुअरिया रे कठे तो छपाड़ूं म्हारा छेवरिया
भूंडणी ये खींचीयां रे जाइजे, वठीने छपाड़े थारा छेवरिया,
सूअरिया रे खींचियां रा रे बेटा अनीता, पटक पछाड़े म्हारा छेवरिया
सूअरिया ए ऊंचो चढ़ने नाल जे कांई करे ओ बेटा रावरा ?
भूंडणी ए भाला भलकाता आया एड़ा चढ़िया बेटा रावरा,
ए जायन छपाड़े थारा छेवरिया
भूंडणडी ए राठोड़ां रै जावजे वठे छपाड़े थारा छेवरिया
सूअरिया रे राठोड़ां रा बेटा घणा रे अनीता,
पटक पछाड़े म्हारा छेवरिया,
सूअरिया रे ऊंचो चढ़ने जोवजे कांई करे बेटा रावरा ?
भूंडणड़ी ए एड़े चढ़िया बेटा रावजी रा, पटक पछाड़े थारा छेवरिया।
सूअरिया रे कठे तो छपाड़ूं म्हारा छेवरिया ?
भूंडणडी ए भाटियां रे जावजे
भाटियां रे जायने छपाड़े थारा छेवरिया।
भाटियां रा बेटा घणां रे सनतोखी,
ऊंडा ने ओवरा में राखे म्हारा छेवरिया।

मेरे गजदन्ता सूर, मैं बाजार जा कर अपने स्वामी के समाचार ले आई हूँ। हाथी दांत वाले मेरे बहादुर पति, लुहार की दुकान पर मैं गई, वहां तुम से लड़ने के लिए सौ भाले तैयार हो गए हैं। मेरे गजदन्ता, सिकलीगर की दुकान पर जाकर मैंने पता वहां खांजलधार के भाले तुम पर वार करने को सुधारे जा रहे हैं। पहाड़ों के रनिवास की ओर चली गई, वहां जा कर देखा कि गर्म पानी खौल रहा है हल्दी पीसी जा रही है। मेरे बहादुर, रांगड़ राजपूत तुम्हारे शिकार के लि पर सवार हो गये हैं। तेज प्रहार करने वाली मेरी शूकरी, वे घोड़ों पर सवार हैं तो होने दे। मैं भी कितनी ही स्त्रियों को लम्बी कांचली पहिना दूंगा, उन्हें वि दूंगा। मेरी शूकरी, तुझे यदि युद्ध से डर लगता है तो जा इन हरिनों से प्यार कर बच्चों को भी साथ लेती जा। मेरे गजदंता, हरिनों से उत्पन्न बच्चे तो हरी दूब तुझ से पैदा हुए बच्चे तो हरे हरे गेहूँ और कन्दमूल उखाड़ कर खाते हैं। शूकरी, लगता हो तो तुझे अपने पीहर पहुँचा दूँ। अपने भाई के साथ रहना। मेरे गजदंता, तो मेरे सहोदर भाई हैं हो नहीं और हों भी तो मैं तुम से बिछुड़ कर जिंदा न चाहती हूं। मेरी भूंडण तुम जाओ, टेकरी पर चढ़ जाओ। मेरी राह मत देखना, मैं सिर राजा को सौंप दिया है, ईश्वर करेगा वही होगा।

८. राजस्थानी पवाड़ा साहित्य

४१:३। "पवाड़ा" शब्द का विकास संस्कृत के 'प्रवाद' शब्द से ज्ञात है वाड़ा को अंग्रेजी में "वेलेड" कहा जाता है। अनेक विद्वानों ने वेलेड का पर शब्द लोकगाथा लिखा है।[१] "पाबूजी रा पवाड़ा" और "बगड़ावतांरा पवाड़ा" काव्य से प्रकट है कि वेलेड जैसी कृतियों के लिए पवाड़ा शब्द ही प्रचलित है। लोक लोक-कथा शब्द के पर्याय रूप में ही लेना उचित होगा।

४२:३। पवाड़ों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में डा० ग्रिम का समुदायवादी, व्यक्तिवादी, स्टेन्थल का जातिवादी, चाईल्ड का व्यक्तित्व-हीन व्यक्तिवा डा० कृष्णदेव उपाध्याय का समन्वयवादी (उक्त सिद्धान्तों के समन्वय के अनुसार) प्रचलित हैं।[२] पवाड़ों की उत्पत्ति वास्तव में लोकगीतों के आधार पर हुई है महापुरुष अथवा महापुरुष से सम्बन्धित महती ऐतिहासिक घटना के विषय में अनेक लोकगीत विभिन्न व्यक्तियों द्वारा प्रचलित हो जाते हैं। लोकगायकों द्वा

१ – क – हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, षोडस भाग, प्रस्तावना, डा० उपाध्याय, काशी, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ० ७३।
ख – राजस्थानी-शब्दकोष, प्रस्तावना, श्री सीतारामजी लालस, राजस्थानी संस्थान, जोधपुर, पृ० २२५।

२ – हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, १६ वां भाग, काशी नागरी प्रचारिणी वाराणसी, पृ० ७७।

न्वय, विकास और परिमार्जन पवाड़ों के रूप में होता है। इसीलिए पवाड़ों में विविध रूप में अनेक लोकगीतों का समावेश होता है।

४३:३। पवाड़ों का नियमन विशेष लौकिक संगीत सम्बन्धी धुनों एवं लयों के आधार पर होता है। पवाड़ों की प्रधान विशेषताएं इस प्रकार हैं —

(१) वीर-चरित्र सम्बन्धी कथा का समावेश,
(२) लौकिक संगीतात्मकता का समावेश,
(३) स्थानीय रंग की प्रधानता,
(४) मौखिक परम्परा में गाया जाना,
(५) कवि के व्यक्तित्व की अप्रधानता, और
(६) वस्तु वर्णन और भाषा में सादगी।

डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने पवाड़ों की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार बताई हैं —

(१) रचयिता का अज्ञात होना,
(२) प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव,
(३) संगीत और नृत्य का अभिन्न साहचर्य,
(४) स्थानीयता का प्रचुर पुट,
(५) मौखिक परम्परा,
(६) उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव,
(७) अलंकृत शैली की अविद्यमानता,
(८) कवि के व्यक्तित्व की अप्रधानता,
(९) लम्बे कथानक की मुख्यता, और
(१०) टेक पदों की पुनरावृत्ति।[१]

४४ : ३। उक्त विशेषताओं में से पवाड़ों अर्थात तथाकथित लोकगाथाओं के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उनके रचयिता अज्ञात हों। उदाहरण स्वरूप प्रसिद्ध "बगड़ावतां रा पवाड़ा" का कर्ता छोछु भाट है।[२]

४५ : ३। पवाड़ों के लिए संगीत और नृत्य में से नृत्य का मेल भी अनिवार्य नहीं है। नृत्य, कला की एक स्वतन्त्र विधा है। पवाड़ों में उपदेशात्मक प्रवृत्ति भी किसी न किसी रूप में मिलती ही है। उपदेशात्मक प्रवृत्ति हमारे साहित्य की एक प्रधान विशेषता है और पवाड़ों

---

१ – डा० कृष्णदेव उपाध्याय, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडस भाग, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रस्तावना, पृ० ८७।

२ – राजस्थानी साहित्य-संग्रह, भाग २, सं० पुरुषोत्तमलाल, मेनारिया, राजस्थान प्राच्य-विद्या - प्रतिष्ठान, जोधपुर, संपादकीय भूमिका।

में भी इसका अभाव नहीं है। इसी प्रकार पवाड़ों में अनेक स्थलों पर अलंकृत शैली के दर्शन भी किए जा सकते हैं। टेक पदों की पुनरावृत्ति सभी पवाड़ों में नहीं मिलती।

राजस्थानी पवाड़ों में पाबूजी, निहालदे और बगड़ावत सम्बन्धी पवाड़े मुख्य हैं।

क. पाबूजी रा पवाड़ा

४६ : ३। पाबूजी के अलौकिक चरित्र से प्रभावित होकर राजस्थान की जनता इनको देवता के रूप में पूजा करती है। पाबूजी के स्थानक राजस्थान के कई गांवों में मिलते हैं और पाबूजी का मन्दिर फलोदी से १८ मील "कोलू" गांव में बना हुआ है।

राठोड़ों के मूल पुरुष आसथानजी के पुत्रों मे धांधलजी बड़े प्रतापी थे। पाबूजी इन्ही वीर धांधलजी के पुत्र थे। पाबूजी एक दृढ़-प्रतिज्ञ, शूरवीर, शरणागत-रक्षक और देव-तुल्य पुरुष थे। इन्होंने आना बाघेला के चांदोजी, डाभोजी आदि सात वीर थोरी नायकों को आश्रय देकर बड़े ही औदार्य का कार्य किया और इन नायकों ने भी मरते दम तक पाबूजी का साथ देकर अपने कर्त्तव्य का पालन किया। इन नायकों के वंशज आज भी "पाबूजी री पड़" अर्थात् चित्रपट प्रदर्शित करते हुए "पाबूजी रा पवाडा" गाकर उस वीर चरित्र का सन्देश राजस्थान के घर-घर में पहुँचाते हैं। इन पवाडों की संख्या ५२ है और इनमें राजस्थानी संस्कृति का सजीव चित्रण हुआ है।

एक समय उमरकोट की सोढ़ी राजकुमारी रंग-महलों में बैठकर नोसर हार के मोती पिरो रही थी। बायें - दायें भोजाइयों की 'बाड़' लगी हुई थी और चारों ओर सात सहेलियां बैठी हुई थीं। इसी समय पाबूजी आना बाघेला को मारते हुए और अपनी भतीजी को देने के लिये देवडा राव के ऊंट लेकर महल नीचे से होकर निकले। घोड़ों की घमासान मच गई और उनकी टापों से धरती कांपने लगी। सोढ़ी राजकुमारी का कोट गुंजायमान हो गया और खिड़कियों तथा दरवाजों के किवाड़ खड़कने लगे। थाल के मोती भी हिलने लगे और यह देखकर—

चमक्यो चमक्यो सहेल्यां रो साथ,
कोई, भावज्यां रो चमक्यो जाभो झूमको,
हाली हाली चुडलां केरी लूम
कोई बाजूबंद रा हाल्या पोया झूमका,
खुलगी खुलगी नकवेसर री गूंज,
कोई चूनड तो सालूडा भीणी सल भर्‌या,
हाली हाली मोत्यां बिचली लाल
कोई कानां केरा हाल्या बाली झूटणा,

हाल्या हाल्या छाती परला हार
कोई पायलड़ो तो खुडको बिछिया वाजिया।

सभी सहेलियां उठ कर बाहर देखने लगीं और कहने लगीं कि यह तो शूरवीर पाबूजी हैं और कोमलगढ जा रहे हैं। साथ में फौजों का सरदार भुरजाला और चांदोजी-डाभोजी जैसे शूरवीर हैं। फिर सहेलियां कहती हैं कि—

देखोजी बाईजी पाबूजी राठोड़
कोई धरती तो राचे वांरी चाल सूं,
पाबूजी सरीखा होवे बिरला जुग में भूप
कोई जस है पाबूजी जुग में ऊजला।
पाबूजो बाईसा लिछमारो अवतार
कोई राठोड़ो धरती में मुडके अननेया,
थारे ओ बाईजी ? भाई भतीजा बीस,
कोई पाबूजी सरीसो जिणमें को नहीं,
थारे ओ बाईजो राव घर्‌या उमराव
कोई पाबूजी रे उणियों कुल में वो नहीं
देखां म्हे बाईजी थारी संगली फौज
कोई फोजा में पाबू रे, जोडे को नहो
एकर बाईसा छाजे ओ चढ़ देख
कोई किसी अक पाबूजी सूरत नीकरां॥

और फिर सहेलियां पाबूजी और सोढोजी की तुलना करती हुई कहती हैं कि सोढी राजकुमारी फूल है तो पाबूजी इस युग के देदीप्यमान सूरज है। सोढी मधुर चकोर है तो पाबूजी अपने कुल में देदीप्यमान चांद हैं। सोढी बादल में चमकने वाली बिजली है तो पाबूजी श्रावण के गरजते-गाजते आसमान हैं। सोढी मछली है तो पाबूजो सरोवर है और सोढी दीपक की लौ है तो पाबूजी उसके प्रकाश हैं।

पाबूजी और सोढी राजकुमारी का विवाह निश्चित हो गया। पुरोहित पांच मुहरें और एक सोने का नारियल लेकर कोमलगढ पहुंचा। वहां पनघट पर पहुंचकर पनिहारियों से पाबूजी का ठिकाना पूछता है। पनिहारियों ने कहा—

अगूणी कहीजे रे जोसी पाबूजी री पोळ,
कोई केल तो भबरखे रे वा पाबूजी री पोळ।
धोळा तो कहीजे रे वां पाबूजी रा म्हैल
कोई लाल तो किवाडी रे कै पोल भंवर के पालिया
पोल्यां रे कहीजे रे वे चन्नण का किवाड,
कोई आमां-सामां कहिये पाबूजी रा गोखड़ा।

विवाह की तैयारी हुई। पीले चांवल निमन्त्रण के रूप में चारों ओर भेजे गये। प्रधान चांदोजी ने सभी देवी - देवताओं और राव - उमरावों को निमन्त्रण भेजा है। बरात के रवाना होने का समय समीप आया। ढोल बजने लगे और बाराती एकत्रित होने लगे। पाबूजी की सवारी के लिये देवल चारणी की घोड़ी कालमी जिसकी नामवरी चारों ओर फैली हुई थी, मांगी गई। देवल इस शर्त पर घोड़ी देती है कि पीछे गायों की रक्षा का भार पाबूजी पर होगा। पाबूजी ने कहा किसी भी तरह होगा तुम्हारी गायों की रक्षा करूंगा। कालमी घोड़ी पर सवार हो पाबूजी बारात के साथ ऊमरकोट पहुंचे। मंडप में प्रधान चांदोजी और डाभोजी, भाई-बन्धु और सगे-सम्बन्धी बैठे हुए थे। मंगल गीत गाये जा रहे थे। सोढ़ों के घर आज रंग बरस रहा था। फेरे होने लगे। सोढीजी पाबूजी के साथ धीरे-धीरे पैर रख रही थीं। दूसरे ही फेरे में दोनों के प्राण एक होकर दूध-पानी की तरह मिल गये। इतने में घोड़ी हिनहिनाने लगी, पैर पटकने लगी और देवल की आवाज सुनाई दी कि जायल खींची ने मेरी गायों को घेर लिया है। इतना सुनते ही पाबूजी ने हथलेवा छुडा लिया और जाने लगे। सोढीजी ने पाबूजी का पल्ला पकड़ कर पूछा—

कोई तो गुन्नो ओ पाबू करियो म्हारा बाप
कोई कांई तो गुन्नो ओ पाबू करियो माता जलम की
कोई तो गुन्नो ओ पाबू म्हारे में थे ओलख्यो।
कोई कांई तो गुन्नो ओ पाबू म्हारे घर में ओलख्यो ॥

इस पर पाबूजी ने उत्तर दिया —कि सोढीजी आप के माता पिता ने तो वास्तव में कोई अपराध नही किया। तुमने भी कोई अपराध नहीं किया। अपराध तो मैं करता हूं कि वचनों से बंध कर तीसरे फेरे में ही तुमको छोड़ रहा हूं —

वचन बाप मरदां के सोढी कहीं जैं एक
कोई करम तो कहीजं सोढीजी फेरां आगलो ॥
वचनां का बांध्या जी सोढी धरती अर आसमान
कोई वचनां का बंध्योडाजी सोढी पवन पांणी आगला
वचनां का बंध्योडाजी सोढी जुग में सूरज चंद।
कोई वचनां हूं बड़ेराजी सोढीजो जुग में को नहीं।

सोढ़ी जी ने कहा कि आप अवश्य गायों की रक्षा कीजिये। पाबूजी जाते-जाते कह गये—

जीवांगा तो फेर मिलांगा, सोढी थां सूं आय।
कोई मर ज्यावां तो ल्या देगो, ओठी म्हारा
मेंमद मोलिया ॥

शूरवीर पाबूजी और उनके नायक ने खीची जिनराज को घेरा। घमासान

युद्ध हुआ। पाबूजी ने गायों को छुड़ा लिया। इनमें से एक बछड़ा नहीं मिला इसलिये पाबूजी को पुनः खींची पर चढ़ाई करनी पड़ी। इस युद्ध में राव पाबूजी, सातों नायक वीर और उनके कई सम्बन्धी काम आये। युद्ध के समाचार और पाबूजी के शिरोभूषण लेकर सवार ऊमरकोट पहुंचा।

सोढीजी अपनी सहेलियों के बीच उदास बैठी हुई थी। उसके हाथों में कांगण-डोरडा बंधा था। वह विवाह का वेष पहने हुई थी और उसके हाथ-पैरों में सुरंगी मेहदी रची हुई थी। सवार सोढीजी के सामने कुछ बोल नहीं सका। उसने जाकर पाबूजी के शिरोभूषण और कांगण-डोरडे सोढीजी के सामने रख दिये। इनको देखकर सोढीजी की जैसी स्थिति हुई उसका चित्रण इस प्रकार किया गया है—

नैणा तो देखी छे जद वा पाल भंवर की पाग,
कोई किलंगी तो पिछाणी छे वा भुरजाले रे सीस री
माथा के लगाई छे सायब की किलंगी ।
कोई छाती के लगाया छे पाबू का कांगण डोरड़ा ।
छाती तो फाटी छे जी उजल्यो छे दिल दरियाव
कोई खाय तो तिवांलो धरती पर सोढी छे पडी ।

एक सखी के प्रयत्न के बाद जब सोढी राजकुमारी की मूर्छा दूर हुई तो वह वन के कायर मोर की तरह रोने लगी। रोते-रोते हिचकियां बंध गई और आंखों से सावन-भादों की झड़ी बरसने लगी। फिर उठकर वह अपने माता-पिता, भाई और सहेलियों के पास पहुंची। हाथ पसार कर माँ से विदाई का नारियल लिया। फिर पिता, भाई, भोजाई और सहेलियों से विदा ली। सोढी राजकुमारी बोली "आप लोगों ने मुझे इतने प्यार से बड़ा किया और अब मैं ऐसे घर में जा रही हूं जहां से मैं नहीं लौटूंगी। तीज-त्योहार आयेंगे, सभी सहेलियां मिलेंगे किन्तु यह लाडली बेटी फिर नहीं मिलेगी।

सोढी राजकुमारी रथ में बैठकर अपनी सुसराल पहुंची। प्रियतम के बाग-बगीचों को, महल-मालियों को, मेड़ी-ओवरों को और झाड़-झरोखों को आंसू भरी आंखों से पहली और अन्तिम बार देखा। प्रियतम के साज-सामान और वस्त्राभूषण देखे और फिर सुसराल वालों से कहा कि मैं ऐसी घड़ी में मिली हूं कि सदा के लिये अलग होना पड़ रहा है।

फिर सती-रानी सोढी जी अपने हाथों से सूरज पोलके तेल-सिन्दूर का छापा लगाकर अपने प्रियतम पाबूजी से मिलने के लिये रवाना हो गई।

भारतीय नव निर्माण की इस बेला में कर्त्तव्य - परायण शूरवीर पाबूजी, सती रानी सोढी नहीं हैं किन्तु उनके पावन चरित्र एक अमिट प्रकाश के रूप मार्ग-दर्शन कर रहे हैं।

ख. निहालदे

४७ : ३ । "निहालदे" राजस्थान में बहुत प्रसिद्ध है। यह एक विशाल पवाड़े के रूप में मुख्यतः शेखावाटी में बड़े चाव से गाया और सुना जाता है। निहालदे के गाने वाले मुख्यतः जोगी हैं और लोगों का अनुमान है कि जोगियों ने ही समय-समय पर इसका निर्माण किया है। इस पवाड़े में ५३ खण्ड हैं और इससे बड़ा पवाड़ा संभवतः राजस्थानी भाषा को छोड़कर अन्य किसी भारतीय भाषा में नहीं है।

"निहालदे" में शान्त, शृंगार, हास्य, वीर और करुण रस की अनूठी छटा है। विरह-वर्णन तो जैसा उत्कृष्ट इस गीत में हुआ है, वैसा रामायण को छोड़ कर अन्य किसी काव्य में नहीं दिखाई देता, इसलिये "निहालदे" का राजस्थानी साहित्य में विशेष महत्व है।

इस पवाड़े की नायिका निहालदे है और नायक का नाम सुलतान है इसलिये इसका नाम "निहालदे सुलतान" जनता में प्रसिद्ध हो गया है। निहालदे - सुलतान की कहानी पर आधारित नाटक भी राजस्थान के लोगों में बड़े चाव से खेले और देखे जाते हैं।

निहालदे इन्द्रगढ़ के राजा की राजकुमारी थी। निहालदे विवाह-योग्य हुई तो राजा ने स्वयंवर के निमन्त्रण चारों ओर के राजकुमारों को भेजे। स्वयंवर के लिये निश्चित वसंत-पंचमी की तिथि को चारों ओर से सैंकड़ों ही राजा अपने राजकुमारों सहित एकत्रित हुये।

राजकुमारी निहालदे की ओर से घोषणा की गई कि जो राजकुमार ऊपर बन्धी हुई मछली की परछाई को नीचे तेल में देखते हुये तीर से मछली को वेध देगा, वही वरमाला का अधिकारी होगा।

इसी अवसर पर कनौलगढ़ का राजा भी अपने राजकुमार फूलकुंवर और पाहुने सुलतान के साथ पहुंचा हुआ था। सुलतान ईडर का राजकुमार था और प्रसिद्ध चकवे वेण के वंशज मैनपाल का पुत्र था। एक बार सुलतान बाग में तीर से निशाना साध रहा था। अचानक ही तीर एक ब्राह्मण-कन्या के पानी से भरे हुये कलश के जा लगा जिससे कलश फूट गया और कन्या के कपड़े पानी से भींग गये।

इस घटना से ब्राह्मण ने उग्र रूप धारण किया और राजा के दरबार में पहुंच कर राजकुमार सुलतान की शिकायत कर दी। राजा ने सोचा सुलतान बचपन में ही प्रजा को सताने लगा है तो बड़ा होने पर तो प्रजा का जीवन ही दूभर कर देगा। राजा ने कुंवर को बारह वर्ष का देश-निकाला दे दिया।

राजकुमार सुलतान दूसरे देशों में घूमता हुआ भीख मांगने लगा। समय का फेर कि एक राजकुमार को घर-घर का भिखारी होना पड़ा। इस प्रसंग में "निहालदे सुलतान" में गाया जाता है —

समै भी चिणवा दे रे भाई कूवा बावड़ी,
समै भी मंगा दे घर-घर भीख।
समै बलो है रे मोटो, नर कं नी बली जी,
समै भी हिंडा देवे एक दन मां के पालणे।
समै भी बन्धा दे सिर के मोड़,
समै भी चढ़ा दे चार जणा के घोडले।
ईडर की नगरी मे यो धर्मी एक दन ओपतो,
करता गादीपत राज जुहार।
पिरजा भी लेती वा राजकुमार का वारणा,
घर-घर डोले रे यो एक दन फळसा भांकतो ॥

भीख मांगते हुए सुलतान कचीलगढ़ जा निकला। राजमार्ग मे कमधज राव की सवारी जा रही थी। इतने में एक बैल ने सुलतान के टक्कर मारी सो सुलतान औंधे मुंह जा गिरा। सुलतान की झोली से दाने बिखर गये और वह पुनः उन्हें भरने लगा। राजा घोड़े से उतर कर सुलतान के पास पहुँचा और कहने लगा "दीखते तो राजकुमार जैसे हो, फिर यह भेष क्यों धारण कर रखा है ?"

सुलतान राजा की बात सुन रोने लगा। तब राजा ने सुलतान को अपने महल मे ठहरा दिया। रानी ने उसके बड़े-बड़े बाल कटवा दिये और अच्छे कपड़े पहिना कर उसका पूरा सत्कार किया। फिर सुलतान भी इन्द्रगढ़ के स्वयंवर मे पहुँचा।

स्वयंवर में कोई अन्य राजकुमार मछली बेधने मे सफल नहीं हो सका। राजकुमार फूलकुंवर भी असफल रहा। सुलतान ने तुरन्त ही तेल मे परछाई देखते हुए मछली को बेध दिया और इन्द्रगढ़ की राजकुमारी निहालदे से विवाह कर लिया।

सुलतान विवाह कर लौटा और फूलकुंवर असफल हो गया तो फूलकुंवर की मां को बहुत बुरा लगा। उसने कह ही तो दिया "तू कल तो भीख मांगता था और आज गढ़पति की लड़की से विवाह कर आया है।"

यह सुनते ही निहालदे को छोड़कर सुलतान वहां से जाने लगा। निहालदे ने कहा "मुझे भी साथ लीजिये — जो आपकी गति सो मेरी गति।"

सुलतान ने कहा "मेरा क्या ठिकाना ? मैं कहीं जाकर ठिकाना कर आऊँ। अगली तीज को आकर ले जाऊँगा। रावजी तुम्हें अपनी पुत्री की तरह ही प्रेम से रखेंगे।"

इसी घटना के पश्चात् निहालदे के दिन दुख में बीतने लगे। यों राजा ने अलग बाग में निहालदे को ठहराया किन्तु फूलकुंवर उसको कई तरह के लोभ दिखाने लगा। निहालदे को न सोते चैन न जागते चैन। फिर थोड़े ही दिनो में कमधजराव की मृत्यु होगई तो निहालदे का जीवन कठिन हो गया।

सुलतान नरवरगढ़ पहुँचा और राजा ढोला के दरबार में लाख टका वेतन पर काम करने लगा। इधर फूलकुंवर ने सुलतान को झूठा समाचार पहुँचा दिया कि निहालदे की मृत्यु हो गई है। इस समाचार को पाकर सुलतान बहुत दुखी हुआ।

इधर एक नहीं कई श्रावणी तीजें निकल गई तो निहालदे बहुत दुखी हुई। उसने मारू राणी को तीज पर सुलतान को भेजने का परवाना लिखा और सूचना भेजी कि अगली तीज पर सुलतान न आवेंगे तो मैं जल कर प्राण त्याग दूंगी। फूलकुंवर से छिपा कर किसी प्रकार पत्र पहुँचा दिया गया किन्तु सुलतान के पहुँचने में थोड़ा विलम्ब हो गया और निहालदे ने अपने प्राण त्याग दिये। निहालदे ने सुलतान की अन्तिम प्रतीक्षा करते समय गाया —

उड़ जा रे काग, सांझ पड़ी,
च्यार पहर वाटड़ली जोई, मेड्यां खड़ी रे खड़ी।
रिमझिम वरसै नैण दीरघड़ा,
लग रहो झड़ी रे झड़ी।
पळ-पळ वीतै वरस बरोबर,
बींती जाय रे घड़ी।
उड़जा रे काग, सांझ पड़ी॥

इस प्रकार निहालदे का चरित्र बहुत उज्वल है। निहालदे का विरह-दुख उर्मिला से बढ़ कर है क्योंकि उर्मिला को विश्वास है कि १४ वर्ष पश्चात् लक्ष्मण अवश्य लौट आवेंगे। किन्तु निहालदे के विरह की सीमा उत्तरोत्तर बढ़ती हुई और असीम है। अन्त में निहालदे द्वारा किया गया त्याग तो उर्मिला से विशेष ही है। फिर उर्मिला अपने घर में है किन्तु निहालदे को अपने शत्रु फूलकुंवर के बाग में ही बारह वर्ष पूरी तपस्या से व्यतीत करने पड़ते हैं।

यशोधरा को बुद्ध के विरह में और नागमती को रत्नसिंह के विरह में निहालदे जैसी विकट और हृदयद्रावक परिस्थितियों का सामना नहीं करना पड़ता। राधा और गोपियों का प्रेम स्वच्छन्द है इसलिये केवल सीता का प्रेम ही निहालदे से तुल्यमान हो सकता है।

वास्तव में राजस्थानी इतिहास में वर्णित त्याग और बलिदान के अनुरूप ही निहालदे का चरित्र सम्बन्धित पवाड़े में प्राप्त होता है। ऐसे उज्ज्वल चरित्रों से हमें आज भी कर्त्तव्यपरायणता, त्याग और साहस की प्रेरणा प्राप्त होती है।

५. राजस्थानी लोक कथाएं

४८:३। मानव-समाज में आप बीती कहने और परबीती सुनने की प्रवृत्ति विद्यमान है। इसी प्रवृत्ति के परिणाम-स्वरूप कथाओं का उद्भव और विकास हुआ। कथाओं के द्वारा मानव समाज को पूर्वजों के अनुभवों से प्रेरणा प्राप्त करने का और भावी पीढ़ियों को प्रेरित करने का भी अवसर मिलता है।

४९ : ३ । लोककथा को राजस्थानी साहित्य में "वात" कहा जाता है । राजस्थानी गद्य के अन्य रूप ख्यात, विगत, वचनिका आदि वात से सर्वथा भिन्न हैं । ख्यात से तात्पर्य ऐतिहासिक तथ्यों से पूर्ण वर्णन है । किसी घटना अथवा वस्तु के ब्योरे-वार विस्तृत वर्णन को 'विगत' कहा जाता है । वचनिका में तुकान्त गद्य के साथ अलंकृत साहित्यिक सौन्दर्य की प्रधानता रहती है ।

५० : ३ । लोककथाओं का वर्गीकरण डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने इस प्रकार किया है-

१. नीति कथा,
२. व्रत-कथा,
३. प्रेम कथा,
४. मनोरंजन कथा,
५. दंत-कथा, और
६. पौराणिक कथा ।[1]

५१ : ३ । राजस्थानी लोककथाओं का वर्गीकरण वाल कथायें, व्रतकथायें, ऐतिहासिक कथायें और मनोरंजनात्मक कथाओं के रूप में भी किया जा सकता है । भाषा की दृष्टि से राजस्थानी कथायें तीन भागों में विभाजित की जा सकती हैं—

१. ऐसी कथाएँ जिनमें प्रारम्भ से अन्त तक राजस्थानी भाषा का व्यव हुआ हो ।

२. ऐसी कथाएँ जिनकी भाषा पर पात्रों के अनुसार व्रज भाषा का प्रभाव हो ।

३. ऐसी कथाएँ जिनकी भाषा, मुख्यतः मुसलमान पात्रों के कथोपकथन, खड़ी बोली से प्रभावित हों ।

५२ : ३ । राजस्थान में प्राचीनकाल से ही लोक कथाओं के संकलन एवं लेखन की परम्परा रही है, जिसके परिणाम स्वरूप विभिन्न ग्रन्थ-भण्डारों में हजारों ही राजस्थानी लोक-कथायें हस्तलिखित ग्रन्थों में लिपिबद्ध रूप में प्राप्त होती हैं । राजस्थानी लोक कथाओं के सचित्र हस्तलिखित ग्रन्थ भी बड़ी संख्या में मिलते हैं ।

५३ : ३ । राजस्थानी कथायें संस्कृत साहित्य से बहुत प्रभावित हुई हैं । 'रामायण', 'महाभारत', 'उपनिषद्', 'पुराण', 'कथासरित्सागर', 'सिंहासन बत्तीसी', 'वैतालपंचविंशति' 'शुकवहुत्तरी', 'पंचतन्त्र', और 'हितोपदेश' आदि से सम्बद्ध अनेक कथायें राजस्थानी साहित्य

१—हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडस भाग, काशी नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, पृ० ११३–११४ ।

में किसी न किसी रूप में प्राप्त होती हैं। साथ ही जातकों एवं जैन-ग्रन्थों से सम्बद्ध कथायें भी राजस्थानी साहित्य में प्रचलित हैं।

५४ : ३। राजस्थानी वीरता सम्बन्धी कथाएं—

वीरता सम्बन्धी कथाओं में दुर्ग-वर्णन, हाथी, घोड़ों, पैदलों, अस्त्रशस्त्रों और युद्ध सम्बन्धी अन्य साज-सज्जाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। दुर्ग पर शत्रु के आक्रमण करने अथवा शत्रु पर चढ़ाई करने का उत्साहपूर्ण वर्णन विशेष रूप में किया गया है। कवियों द्वारा उत्साह प्रदान करने, नेताओं द्वारा बढ़ावा देने, वीरों के हुंकार करने, हाथियों के चिंघाड़ने, घोड़ों के हिनहिनाने, नदी की भाँति सेना के प्रयाण करने, प्रयाण से उठी हुई धूल द्वारा सूर्य के ढंकने, पृथ्वी के हिलने और शेषनाग के कलमलाने आदि के चित्रण में कथाकारों ने विशेष रुचि प्रकट की है। साथ ही युद्ध प्रारम्भ होने पर योगनियों के नृत्य, पिशाचों की उछल-कूद, शिव और चण्डी के आगमन की कल्पना भी कथाकारों ने कर ली है। युद्ध-भूमि में विविध प्रकार के शस्त्रों के प्रयोग का भी विस्तृत वर्णन किया गया है। वीरों की प्रसन्नता और कायरों का कम्पन भी ऐसी कथाओं में बताया गया है। घायलों के कराहने, रुण्ड-मुण्डों के कट कर गिरने, कबन्धों के लड़ने, शोणित की सरिता प्रवाहित होने और उसमें हाथियों, घोड़ों, तथा मानवों के अंग प्रत्यंगों के बहने, गिद्धों के मंडराने, आकाश में विमानों में उड़ती हुई अप्सराओं द्वारा वीरों के वरण में प्रतिस्पर्धा करने तथा वीरांगनाओं के सती होकर अपने प्रियतमों का अनुसरण करने का जैसा वर्णन इन कलाकारों ने किया है वैसा राजस्थानी काव्यों को छोड़ कर अन्यत्र अलभ्य है।

वीरता-सम्बन्धी कथाओं से हमें कर्तव्यपरायणता, धैर्य, कष्ट-सहिष्णुता, प्रतिज्ञा-पालन, देश सेवा, सत्यवादिता, शरणागत-रक्षा, और परोपकारादि की प्रेरणा मिलती है।

'वीरमदे सोनीगरा री वात', 'प्रतापसिंह मोहकम सिंघ री वात', 'राव रिणमल री वात', 'राव चुण्डे री वात', 'पाबूजी री वात' आदि वीरता सम्बन्धी प्रसिद्ध वार्ताएँ हैं।

५५ : ३। प्रेम विषयक कथाएं—राजस्थानी वीर-वीरांगनाओं ने प्रेम के क्षेत्र में शारीरिक वासना की अपेक्षा कर्तव्य को विशेष महत्व दिया है और अवसर आने पर कर्तव्य के लिये असीम त्याग किया है। इन कथाओं के नायक मुख्यतः योद्धा रहे हैं अतएव उनके जीवन में अनेक प्रकार के उतार-चढ़ाव भी बताए गए हैं।

राजस्थानी प्रेम-कथाओं में आनन्दोपभोग सम्बन्धी विशेष प्रकार की सामग्री का विस्तृत वर्णन कर उनके कर्ताओं ने अपनी विविध विषयक जानकारी का परिचय दिया है। ऐसी कथाओं में भवनों के विस्तृत वर्णन मिलते हैं। विभिन्न पात्रों के हावों-भावों, वस्त्राभूषणों, हाथी, घोड़े, ऊँट आदि वाहनों; विविध प्रकार के सुगन्धित पदार्थों और आखेट आदि से सम्बद्ध विविध वर्णन भी प्राप्त होते हैं।

५५ : ३। षट् ऋतु-वर्णन का भी राजस्थानी प्रेम-कथाओं में समावेश हुआ है।

उद्दीपन-रूप में प्रकृति का मोहक रूप प्रस्तुत किया गया है। वर्षा ऋतु के अन्तर्गत उत्तरीय वायु "सूरियो" का चलना, घटाओं का उमड़ना, दामिनी दमकना, पानी का रिमझिम बरसना आदि बता कर विरहिणी नायिका की तड़पन की ओर संकेत किया गया है। इसी प्रकार शरद, शिशिर, बसन्त और ग्रीष्म आदि ऋतुओं के भी उद्दीपनात्मक चित्रण मिलते हैं। नायक प्रकृति-सम्बन्धी और परिस्थिति-सम्बन्धी अनेक बाधाओं को पार कर नायिकाओं से मिलने का प्रयत्न करते हैं जिसमें वे कभी सफल और कभी असफल होते हैं। ऐसी कथाएँ प्रायः दुखान्त होती हैं। किसी-किसी कथा में तो शिव-पार्वती आकर मृत नायक-नायिका को जीवित कर संसार में आनन्दोपभोग के लिए पुनः प्रस्तुत करते हैं।

ऐसी कथाओं में मूमल महेन्द्र, निहालदे, जलाल-बूबना, खींवजी आभल दे, उमादे भटियाणी, आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

५६ : ३। धार्मिक कथायें—हमारा देश धर्मपरायण है, अतः हमारे साहित्य में धार्मिक कथाओं का बाहुल्य है। संस्कृत में अनेक प्रकार की धर्म-कथायें है जिनके अनुवाद राजस्थानी में भी किये गये है। रामायण, महाभारत, विभिन्न उपनिषदों और पुराणों आदि से सम्बद्ध कथायें राजस्थानी में बड़ी संख्या में प्राप्त होती हैं। ऐसी कथाओं मे व्रत कथायें मुख्य हैं। इनमें अध्यात्म और उपदेश को विशेष महत्व दिया गया है।

धार्मिक कथाओं के प्रारम्भ करने और पूर्ण करने की विशेष वाक्यावली होती है जिनके आधार पर सुख-शान्ति की कामना की जाती है।

५७ : ३। हास्य कथायें—राजस्थानी हास्य कथाओं में विभिन्न जातियों और पशु-पक्षियों को माध्यम बनाया गया है। नाई, जाट, और गूजर सम्बन्धी हास्य कथायें अधिक मिलती हैं। अनेक कथाओं में नाई के साथ किसी व्यक्ति के अपने ससुराल जाने का वर्णन है जिनमें अनेक हास्यात्मक प्रसंगों की सृष्टि की गई है।

५८ : ३। नीति कथायें—संसार के जिन देशों में नीति-साहित्य लिखा गया है उनमें भारत का स्थान मुख्य है। संस्कृत साहित्य में पंचतन्त्र तथा 'हितोपदेश' में भी कथाओं के माध्यम से नीति-शिक्षा दी गई है। नीति-सम्बन्धी कथाओं में उपदेश परोक्ष रूप मे दिया जाता है। अनेक राजस्थानी कथाओं में भी नीति मिलती है।[1]

६. राजस्थानी ख्याल-साहित्य (लोक-नाटक)

५९ : ३। राजस्थान में लोकनाट्य के रूप में अनेक प्रकार के ख्यालों का अभिनय आज तक होता है। ख्यालों की मंडलियां गांव-गांव घूमती हुई अपना प्रदर्शन करती हैं। इन ख्यालों के लिए विशेष मंच बनाने की आवश्यकता नही होती। गांव का चौराहा अथवा

१—राजस्थानी लोक-कथाओं के विषय में विशेष ज्ञातव्य हेतु द्रष्टव्य-वात-करामात, राजस्थान की रस-धारा और रा० सा० सं० भाग २, सं० डॉ० पुरुषोत्तम लाल मेनारिया

मन्दिर का चबूतरा ही मंच का काम दे जाता है। रात में मशालों अथवा गैस-बत्तियों के प्रकाश में ख्यालों का प्रदर्शन होता है। चौराहे अथवा चबूतरे के चारों ओर गांव के और दूर-दूर से आए हुए गाँव बाहर के दर्शक बैठ जाते हैं। ख्याल रात भर चलता है और दर्शक अपनी रुचि के साथ रात भर जागता हुआ उसका आनन्द लेता है।

६० : ३। राजस्थानी ख्याल में काव्य, अभिनय, संगीत और नृत्य-तत्वों का समान-रूप से समावेश होता है। ख्याल प्रधानतः गेय होता है। बहुत कम स्थानों पर ही गद्यात्मक संवादों का समावेश होता है। ख्याल के साथ में नक्कारा, सारंगी और ढोलक-मंजीरा, आदि वाद्यों का प्रयोग होता है। ख्याल बुलन्द आवाज में गाया जाता है। नक्कारे के साथ गायकों की बुलन्द आवाज "लाउडस्पीकर" के अभाव में भी रात के शांत वातावरण में कई मील पर सुनाई देती है जिससे आकर्षित होकर दर्शक दूर-दूर से आ जाते हैं और रात भर उनका जमघट लगा रहता है।

६१ : ३। ख्याल हमारे देश की प्राचीन नाट्यकला का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारतीय संस्कृति के प्रेमी अनेक राजपूत नरेशों ने भारतीय नाट्य के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया है, जिनमें चित्तौड़ाधिपति महाराणा कुंभकरण का नाम विशेष उल्लेखनीय है। महाराणा कुंभकरण अपर नाम कुंभा ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "संगीतराज" में नाट्य-सम्बन्धी तत्वों का विस्तृत और विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया है। महाराणा कुंभा ने अनेक नाटकों का निर्माण भी किया जिनमें राजस्थानी भाषा की मेवाड़ी बोली का व्यवहार किया। नाटकों में राजस्थानी भाषा के व्यवहार का यह प्रथम उदाहरण माना जाता है। कालान्तर में जयपुर, उदयपुर और जोधपुर आदि स्थानों में अनेक नाटकघरों की स्थापनाएं स्थानीय नरेशों की प्रेरणा से हुई। इनके द्वारा विभिन्न प्रकार के नाटकों का अभिनय होता रहता था।

६२ : ३। माच और रम्मत भी ख्याल के ही रूप हैं जिनका प्रचलन क्रमशः मध्य भारत और बीकानेर में हैं। ख्यालों की उत्पत्ति के विषय में श्री अगरचन्द नाहटा का मत है कि "मध्यकाल में रास, चर्चरी, फागु आदि रमे व खेले जाते थे, वही पीछे से रमत, रामत, खेल, ख्याल के नये रूप में प्रगटित हुए।"[1] इस विषय में श्री उदयशंकर शास्त्री का मत है — "ऐसा कहा जाता है कि १८ वीं शती के प्रारम्भ के आस-पास ही आगरे के इर्द-गिर्द एक नई कविता-शैली प्रचलित हो चली थी, आगे चल कर जिसका नाम ख्याल पड़ा। ख्याल निश्चित ही उर्दू और फारसी के मसाले से तैयार चीज थी। आगरे में इन ख्यालियों के कई दल थे जिनमें सभी प्रकार के लोग थे और सभी प्रकार की बन्दिशें बांधने वालों के गोल कभी-कभी होड़ भी लगाने लगते थे।"[2]

---

१ – लोककला निबन्धावली, भारतीय लोककला मण्डल, उदयपुर, भाग १, पृ० ९४।

२ – देशबन्धु, वर्ष २, अंक ६।

६३ : ३ । इस विषय में उल्लेखनीय है कि मध्यकाल में राजस्थानी भाषा में विभिन्न राग-रागनियों में गेय अनेक ख्याल लिखे जाते थे ।[1] धीरे-धीरे इन ख्यालों का विस्तार होने लगा और इनमें नृत्य एवं अभिनय तत्वों का समावेश हुआ । परिणामस्वरूप आधुनिक काल में ख्याल-लेखन और अभिनय की परिपूर्ण परम्परा उपलब्ध होती है । अब तक १८९ प्रकाशित ख्यालों का सूचीबद्ध किया जा चुका है ।[2]

६४ : ३ । श्री देवीलाल सामर ने ख्यालों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है---

(१) भवाईयों के नृत्य और कलाबाजी-प्रधान नाट्य ।

(२) तुर्राकलंगी, रम्मत, कुचामणी और चिड़ावा के काव्य-प्रधान नाट्य ।

(३) भीलों के गौरी जैसे कथोपकथन हीन मूक लोक नाट्य ।[3]

उक्त वर्गीकरण के दूसरे काव्य प्रधान नाट्य के भाग में मान का समावेश भी किया जाना चाहिए ।

तुर्रा कलंगी

६५:३ । तुर्राकलंगी शैली के ख्याल चित्तोड़, घोसुंडा और झालावाड़ क्षेत्र में प्रचलित हैं । तुर्राकलंगी के प्रवर्त्तक तुकनगीर गोसांई और शाह अली फकीर माने जाते हैं । दोनों काव्य-प्रतियोगिता के रूप में अपने दंगल लगाया करते थे । किसी राजा ने दंगल में तुकनगिरी को तुर्रा दिया और शाह अली को कलंगी दी । तुर्रा के अनुयायी भगवा वेश धारी हिन्दु हुए और कलंगी वाले शाह अली के अनुयायी हरे वस्त्र पहिनने वाले मुसलमान हुए । कहा जाता है कि तुर्रा वाले शिव के भक्त और कलंगी वाले शक्ति के आराधक होते हैं । मंच पर तुर्रावाले पुरुष वेश में और कलगी वाले स्त्री-वेश में प्रवेश करते हैं । दोनों दल काव्य, संगीत, नृत्य और अभिनय के साथ संवाद में एक दूसरे को पराजित करने का प्रयत्न करते हैं । तुर्रा-कलंगी शैली में सीतास्वयंवर, रुक्मिणी-मंगल, हरिश्चन्द्र, ध्रुव और तेजा आदि के ख्याल प्रचलित हैं । पं० नन्दशेखर की पुस्तक "तुर्रा कलंगी का विवाह" का प्रकाशन भी हो चुका है जिसमें लावनी छोटा, लावनी खेंच, दोहा और तिकड़िया आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है ।[4]

---

१ – राजस्थानी साहित्य-संग्रह, भाग २, सं० डा० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, परिशिष्ट ।

२ – राजस्थान सम्बन्धी प्रकाशित साहित्य, भाग १, पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय, राजस्थान सरकार, जयपुर, पृ० २३–३१ ।

३ – राजस्थानी लोक - नाट्य, भारतीय लोक - कला मंण्डल, उदयपुर, भूमिका, पृ० ८ ।

४ – वही, पृ० ३१ ।

रम्मत

६६ : ३ । रम्मत शैली के ख्याल बीकानेर में प्रचलित हैं। रम्मतों में हिड़ाउ मे की रम्मत बहुत प्रचलित है। मोतीलाल ने अनेक रम्मतें लिखी हैं जिनमें "अमरसिंह राठोड़ प्रमुख है। रम्मतों के प्रारम्भ में देवी-देवताओं की स्तुति होती है तदुपरान्त संगीत के सा अभिनय और नृत्य प्रारम्भ होता है। बीकानेर के अनेक सेठ-साहूकार और अन्य वर्ग रम्मतं का आयोजन रुचि पूर्वक करते हैं। रम्मतें मुख्यतः होली के अवसर पर आयोजित होती है

कुचामणी ख्याल

६७ : ३ । कुचामणी शैली के ख्याल मुख्यतः मारवाड़ में प्रचलित हैं। इस शैल के प्रवर्तक लच्छीराम जी माने जाते हैं। इनका देहान्त ६० वर्ष की अवस्था में सं० १९६ में हुआ। लच्छीराम जी के ख्याल प्रकाशित हो चुके हैं और कुचामण के भाटों की मंडलि द्वारा इनका अभिनय होता है। इन ख्यालों में दूहा, लावणी, छप्पय, चौबोला औ दुबोला का प्रयोग होता है। इन ख्यालों में जब "टेरिये" टेर लेते हैं तब पात्र अपना नृत प्रदर्शन करते हैं। लच्छीराम जी के अनुयायी ख्याल की इस शैली को सुरक्षित कि हुए हैं।

चिड़ावा अथवा शेखावाटी के ख्याल

६८ : ३ । राजस्थान के शेखावाटी क्षेत्र में चिड़ावा, खंडेला, सीकर और जाख आदि स्थानों में चिड़ावा का अखाड़ा प्रधान है इसलिए शेखावाटी शैली के ख्यालों को चिड़ा शैली के ख्याल भी कहा जाता है। चिड़ावा के ख्याल-कर्त्ताओं में नानू और दूलिया प्रसि ख्यालकर्ता हुए हैं। इनके दल अब भी अपने ख्यालों के प्रदर्शन करते हैं। कहते हैं कि फतहपु निवासी भालीराम जी नागौरी तर्ज के ख्यालों के कुछ दोहे शेखावाटी में लाए जिनके आधा पर शेखावाटी शैली के ख्यालों का प्रचलन हुआ। नानू ने लगभग २६ ख्याल बनाए अं स्वयं इनके अभिनय में भाग लिया। नानू का देहान्त सं० १९५६ में हुआ।

६९ : ३ । उभोरा तेली नामक ख्यालकर्त्ता भी नानू के समकालीन थे, जिनके लि हुए १२ ख्याल मिलते हैं। शेखावाटी शैली के ख्यालों में जानकी, लंगडी और भैरवी रं की लावणी और जोगिया, खड़ी और सोरठ रंगत के चौबोला का व्यवहार अधिक होता है

७. राजस्थानी लोकोक्तियां और पहेलियां

७० : ३ । हमारे समाज में पारस्परिक बातचीत और लेखन में प्राचीन काल से अनेक लोकोक्तियों, मुहावरों और पहेलियों आदि का प्रयोग होता रहा है, क्योंकि इनके प्रयं

। विशेष प्रभाव और आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। साथ ही इनका प्रयोग विचारों की पुष्टि तु भी किया जाता है। इनके प्रयोग से भाषा-सौंदर्य की सृष्टि होती है।

७१ : ३। राजस्थानी लोकोक्तियां, मुहावरो और पहेलियां आदि में जनता की विचार-धारा निहित है। सामाजिक संस्कारों, रीति-रिवाजों और ऐतिहासिक परम्पराओं का परिचय भी इनसे प्राप्त होता है। राजस्थानी लोकोक्तियों का वैज्ञानिक संग्रह और अध्ययन प्रस्तुत किया जा चुका है[1] किन्तु राजस्थानी मुहावरों और पहेलियों के विषय मे संतोषजनक कार्य नहीं हुआ है। श्री मुरलीधर जी व्यास, तथा श्री सीताराम जी लालस और प्रस्तुत लेखक ने क्रमशः राजस्थानी मुहावरों और पहेलियों का संग्रह अवश्य किया है।[2]

क. राजस्थानी लोकोक्तियां

७२ : ३। सामाजिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, धार्मिक और भौगोलिक परिस्थितियों की परिचायक अनेक लोकोक्तियां राजस्थानी भाषा में प्रचलित है। अनेक लोकोक्तियों का सम्बन्ध कथाओं से भी है—

राई रा भाव रात सूं हो गया

एक बनिये के घर में रात को चोर घुसे। जब बनिये को इस बात का पता चला तो उसने अपनी स्त्री को सुनाते हुये कहा कि राई के भाव बहुत बढ़ गए हैं। इतने अधिक बढ़ गए हैं कि अपने नीचे के कोठे में जो राई भरी है उसको बेंचते ही हम धनवान हो जायेंगे। जब चोरों ने यह बात सुनी तो उन्होंने दूसरी मूल्यवान सामग्री को चुराने का विचार छोड़ दिया और चुपचाप राई की गाठें बांधकर चल दिए। दूसरे दिन चोरों ने राई का ऊंचे भाव पर बेंचकर धनवान होना चाहा किन्तु कोई भी चालू भाव से अधिक दाम देने को तैयार नहीं हुआ। निराश होकर चोर उसी बनिये के पास आए और ऊंचे भाव पर राई

---

१ – क. राजस्थानी कहावतां, दो भाग, सं० श्री नरोत्तमदास जी स्वामी और मुरलीधर जी व्यास, राजस्थानी साहित्य, परिषद, कलकत्ता।
ख. मेवाड़ की कहावतें, सं० श्री लक्ष्मी लाल जी जोशी, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर।
ग. मालवी कहावतें, सं० रतनलाल जी मेहता, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर।
घ. राजस्थानी कृषि कहावतें, सं० श्री जगदीश सिंह गहलोत।
ङ. भीलों की कहावतें, सं० फूल जी मीणा, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर।
च. राजस्थानी कहावतें, एक अध्ययन, डा० कन्हैयालाल सहल, भारतीय साहित्य मन्दिर, फौवारा, दिल्ली।

२ – क. शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेर में सुरक्षित मुहावरा संग्रह।
ख. राजस्थानी पहेलियां, निजी संग्रह।

बेचनी चाही, इस पर बनिए ने कहा कि "राई रा भाव तो रात सूं ही गया", अर्थात राई का भाव तो रात से ही गिर गया।

कांकड़ वाण्या फारगतो, गांव में ज्यूं का त्यूं

एक बलवान किन्तु अनपढ़ किसान को जंगल में एक बनिया मिला जो उससे रुपया मांगता था। उसने बनिये को डरा-धमका कर हिसाब साफ करा लेने का अच्छा अवसर देखा और बनिए को कहा कि लिख 'फारगती'। अर्थात् रुपया चुक जाने का सफाईनामा लिख, नहीं तो लाठी से काम तमाम करता हूं। बनिए ने डरते-डरते कुछ लिख दिया और छूटकर गांव में आने के बाद शेष रुपया वसूल कर लिया क्योंकि पहले जंगल में, उसने फारगती न लिखकर यूं ही लिख दिया था।

इसलिये कहा गया कि 'कांकड वाण्या फारगती गांव में ज्यूं का त्यूं'। कहने का अर्थ है कि अनपढ़ व्यक्ति चाहते हुये भी अपनी भलाई के लिये नहीं लिखवा सकता।

अनेक कहावतों में ऐतिहासिक प्रवाद भी उपलब्ध होते हैं। कहावती प्रवादों के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं —

जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह प्रथम ने प्रसन्न होकर एक कवि को बीलाड़ा नामक गांव देने की आज्ञा दी। बीलाड़ा गांव तीस हजार रुपए वार्षिक आय का था और दीवान ने इतना बड़ा गांव राज्य की ओर से देना उचित नहीं समझा। इसलिए दीवान ने कवि से पूछा —

"बीलाडो लेवोला के बांजरगढ़ ?"

कवि बांजरगढ़ का नाम सुनकर प्रसन्न हो गया और बोला —

"बीलाडो पर पडो सिलाडो ! म्हें तो लेसां बांजर गढ़ ॥

उसने अपने नाम पर बांजरगढ़ ही लिखवा लिया। वास्तव में बांजर गढ़ केवल चार सौ रुपए वार्षिक आय वाला कुछ झोंपड़ों का गांव है, जो अभी भी कवि के वंशजों के अधिकार में है।

जोधपुर के महाराजा मालदेव की "रूठी राणी" उमादे भटियाणी को मनाने के लिए चारण कवि आशानन्द ने प्रयत्न किया, इस प्रवाद के सम्बन्ध में यह दूहा एक कहावत के रूप में प्रसिद्ध हो गया है —

"माण रखै जो पीव तज, पीव रखै तज माण।
दोय दोय गयन्द न बंधही, एकै खूम्भो ठाण ॥"

अर्थात् मान ही रखना चाहती हो तो पति को छोड़ना पड़ेगा और पति को चाहना है तो मान छोड़ना होगा। क्योंकि एक ही खंभे से दो - दो हाथी नहीं बंध सकते।

ख. राजस्थानी पहेलियाँ

७२ : ३ । राजस्थानी भाषा में रचित लोक-साहित्य में लोक-गीतों, लोक-कथाओं, श्वाड़ों और कहावतों आदि के साथ ही अनेक पहेलियां भी मिलती हैं। इन पहेलियों का प्रयोग ज्ञान बढ़ाने के साथ ही स्मरणशक्ति जागृत करने के लिये होता रहा है। हमारे देश में पहेलियां बूझने की कला बहुत प्राचीन काल से मिलती है। प्राचीन काल में राज-दरबारों और नागरिक-सम्मेलनों तथा मनोविनोद के अवसरों पर पहेलियां बूझी जाती थीं। पहेलियां बूझने की कला प्राचीन भारत की चौसठ कलाओं में मानी गई है।

७३ : ३ । हिन्दी में अमीर खुसरो और बीरबल की पहेलियां प्रचलित हैं। इसी प्रकार राजस्थानी भाषा में अनेक कवियों द्वारा रचित पहेलियाँ मिलती हैं जिसे "हियाली साहित्य" कहा जाता है। राजस्थानी में पहेली को "फाली" और "पारसी" भी कहा जाता है। पहेलियों का नाम पारसी संभवतः इसलिये पड़ा है कि फारसी भाषा के समान पहेलियों का समझना भी कठिन होता है। राजस्थान में किसी कठिन भाषा का प्रयोग किया जाता है तो उसे "पारसी छांटना" कहा जाता है।

७४ : ३ । राजस्थानी पहेलियों में दैनिक उपयोग की वस्तुएं जैसे दीपक, हल, ताला, भाग, ओखली, चरखा, रुपया, तलवार आदि का वर्णन होता है। इन पहेलियों में हमारी जनता की मनोभावनाएं, अनुभूतियां और ज्ञान-भावना रहती है। इन पहेलियों में हमारी जनता की कल्पनातीत सूझ भी पायी जाती है। रेल, हवाई जहाज, पोस्ट कार्ड जैसी नई वस्तुओं के लिये भी पहेलियाँ प्रचलित हो गई हैं।

७५ : ३ । नव-विवाहित युवक अपनी ससुराल में जाता है तो उसकी ज्ञान-परीक्षा पहेलियां पूछ कर की जाती है। ऐसे कई लोक-गीत भी पाये जाते हैं जिनमें पहेलियों का समावेश होता है। यहां हम कुछ राजस्थानी पहेलियां पाठकों की जानकारी के लिये दे रहे हैं —

१. आकाश में वा उड़े, हाड है पण मांस नी।

(वह आकाश में उड़ती है। उसके हड्डियां हैं किन्तु मांस नहीं) — पतंग

२. आठ गांठ अठारह फासा।

ईं फाली को अर्थ बतावे जीनें देवां सेर पतासा॥

(आठ गांठें और अठारह फांसे हैं। इस पहेली का अर्थ बतावे उसको सेर बताशे दें

— छींका (रस्सियों की जाल से

३. एक नार ज्यो औषध खाय ।
जा पर थूंके ज्यो मर जाय ।
साथी उणरा जो कोई होय ।
एक आंख से आन्धा होय ॥

(एक नारी औषध खाती है । वह जिस पर थूंकती है, वह मर जाता है । उस स्त्री का जो साथी होता है, वह एक आंख से अन्धा होता है ।) — बन्दूक

४. एक तो सूंड हाथी री, दूसरी सूंड गजानन री, तीसरी आप बतावो ।

(एक तो हाथी की सूंड़, दूसरी सूंड़ गणेश की । तीसरी आप बताइये ।)

— चड़स की सूंड

५. एक छाळी सब घास चरगी ।
पण मींगणी एक न करगी ।

(एक बकरी सब घास चर गई किन्तु उसने मींगनी एक भी न की ।)

— हँसिया

६. एक ओवरा में पाँच बन्द ।

(एक कोठरी में पांच बंधे हुए हैं ।) — जूते में अंगुलियां

७. एक भाई सूधो, एक भाई ऊंधो ।

(एक भाई सीधा और एक भाई उलटा ।)

— घर की छत के केल्हू (खपरेल)

८. एक नारी चतर घणी जी, सीरो करे सुवाद ।
बिना तवा बिन खुरचणा जी बिन पाणी बिन आग ।

— मधुमक्खी

९. एक नार प्यारी लगे, रात अन्धेरी मांय ।
ऊपर तो झरनो झरे, माथे लागी लाय ॥

(एक स्त्री अन्धेरी रात में अच्छी लगती है । उसके ऊपर (तेल का) झरना झरता है और मस्तक पर आग लगी हुई है ।)

— मशाल

१०. आंबा री डाल दीवो बळे, काजळ पड़े रे खण्डार।
आंजण वाळी पातळी, निरखण वाळा गँवार॥

(आम की डाली पर दीया जलता है, उसका काजल बहुत पड़ता है। आंजने वाली पतली है, देखने वाले गंवार हैं।) — काजल

११. उदैपुर री चूंनड़ी, ओढूं वार-तिंवार।
ओढ़ण वाळो पद्मणी, निरखण वाळा गँवार॥

(चूनरी उदयपुर की है, वार-त्योहार ओढ़ती हूं। वह ओढ़ने वाली पद्मिनी स्त्री कहलाती है और उसे देखने वाला गंवार लगता है।) — मेहंदी

१२. साजण जाओ दिसावरां, ल्याज्यो हल्दी-हींग।
एक चोज इसी ल्यावज्यो जिकां माथे चार सींग॥

(साजन ! परदेश जाकर हल्दी और हींग लाना, एक चीज ऐसी भी लाना जिसके माथे पर चार सींग हों।) — लौंग

१३. सिल डूबे ने वट्टो तिरे, जल में आयो पाप।
एक अचम्बो म्हें सुण्यो जी, बेटी जायो बाप॥

(शिला डूब जाती है और बट्टा तैरता है, पानी में पाप आगया। हमने एक आश्चर्य सुना है कि बेटी ने बाप को पैदा किया।) — छाछ, घी

१४. फूलां भर्यो टोकरो, छांटो दियां कुम्हलाय।
बूझो जमाई सा म्हारी पारसी, तुरंत करो विचार॥

(फूलों से भरी टोकरी पानी छिड़कने मे कुम्हला जाती है। मेरी इस पहेली का तुरन्त विचार कर जमाई जी ! उत्तर दो।) — पतासा

१५. डाकण भूत लड़ो पड़्या, चुड़ैलण छुड़ावा ने जाय।

(भूत और डाकिनी आपस में लड़े, चुड़ैल छुड़ाने जाती है।) — ताला-चाबी

१६. एक अचम्बो म्हें सुण्योजो, मुरदो आटो खाय।
बतळावे बोले नहीं जी, मारे से चिल्लाय॥

(हमने एक आश्चर्य सुना। मुर्दा आटा खाता है, मारने से चिल्लाता है लेकिन बतलाने से नहीं बोलता।) — मृदंग

चतुर्थ अध्याय

राजस्थानी साहित्य के विविध रूप

और

राजस्थानी साहित्य का वर्गीकरण

(क) जैन काव्य, (ख) डिंगल काव्य, (ग) पिंगल काव्य, (घ) भक्ति काव्य एवं सन्त काव्य, (ङ) लोक काव्य, (च) आधुनिक काव्य ।

(क) जैन काव्य—

(अ) कथा-काव्य अथवा चरित्-काव्य—

१. रास : रासो, २. चऊपई, ३. संधि, ४. चर्चरी, ५. प्रबन्ध, चरित्र, आख्यानक और कथा

(आ) ऋतु काव्य—फागु, धमाल और बारह मासा

(इ) उत्सव काव्य

(ई) नीति काव्य—कक्का-बारहखड़ी

(उ) स्तवन

(ऊ) ढाल

(ए) टब्बा और बालावबोध

(ऐ) ज्योतिष, वास्तु शास्त्र, आयुर्वेदादि शास्त्रीय रचनाएं ।

(ख) डिंगल काव्य—

१. "डिंगल" का नामकरण

२. डिंगल काव्यों का वर्गीकरण—

(१) चरित नायकों के आधार पर-(अ) रासो, (आ) प्रकास, (इ) विलास, (ई) रूपक, (उ) वचनिका

(२) छन्दों के आधार पर—(अ) नीसाणी, (आ) झूलणा, (इ) झमाल, (ई) गीत, (उ) कुण्डलिया, (ऊ) कवित्त, (ए) दूहा, (ऐ) वेल ।

(३) प्रकीर्ण और शास्त्रीय

(ग) पिंगल काव्य—

१. "पिंगल" शब्द विचार

२. पिंगल साहित्य का वर्गीकरण —

(क) चरित्र काव्य—१. रासो काव्य, २. अन्य काव्य

(ख) पौराणिक काव्य और महाभारत सम्बन्धी काव्य

(ग) भक्ति काव्य – १. कृष्ण-भक्ति काव्य, २. राम-भक्ति-काव्य, ३. अन्य काव्य।

(घ) रीति काव्य—१. रस-अलंकार, २. छन्द, ३. नायिका भेद, षट्ऋतु शिख वर्णन्।

(ङ) नीति काव्य

(च) फुटकर काव्य

(घ) भक्ति एवं सन्त काव्य—

(अ) साखी, (आ) शब्द, (इ) परिचयी, (ई) भक्तमाल, (उ) मंगल (ऊ) ककहरा, बारहखड़ी, (ए) श्लोको आदि।

(ङ) लोक काव्य—

(अ) प्रबन्ध, मुक्तक, (आ) प्रबन्ध-खण्ड काव्य, महा काव्य।

(च) आधुनिक काव्य

———

चतुर्थ अध्याय

राजस्थानी साहित्य के विविध रूप

१. राजस्थानी साहित्य का वर्गीकरण

१ : ४। साहित्य का वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया जा सकता है। प्राचीन काल से साहित्य मौखिक और लिखित दो रूपों में प्राप्त होता रहा है। प्राचीन काल में टंकण और मुद्रण के साधन सुलभ नहीं थे, इसलिए विद्या को कण्ठस्थ करने पर बल दिया जाता था। तदनुसार "विद्या कण्ठ री" उक्ति प्रचलित हुई है। मौखिक और लिखित साहित्य को क्रमशः श्रुतिनिष्ठ और लिपिनिष्ठ भी कहा जा सकता है।

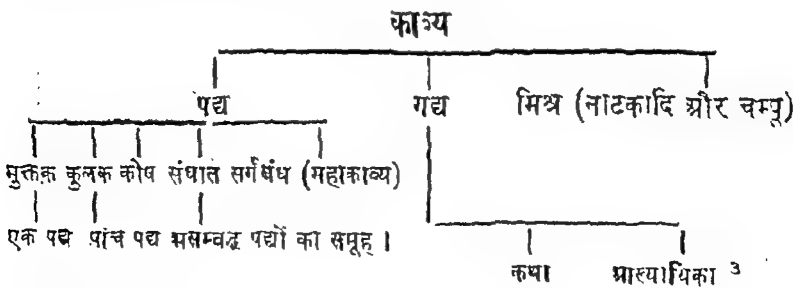
२ : ४। आचार्य व्यास ने काव्य को तीन रूपों में वर्गीकृत किया है —

(१) श्रव्य, (२) अभिनय, और (३) प्रकीर्ण—

"श्रव्यंचैवाभिनेयं च प्रकीर्णं सकलोक्तिभिः" [१]

३ : ४ आचार्य भामह ने काव्य एवं साहित्य के पद्य और गद्य नामक दो भेद बताए हैं। भाषा – भेद की दृष्टि से भामह ने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश नामक तीन विभाग बताए हैं। भामह ने वर्ण्यवस्तु की दृष्टि से— (१) वृत्तदेवादिचरितशंसि, (२) उत्पाद्य-वस्तु, (३) कलाश्रय, (४) शास्त्राश्रय नामक भेद बताए तथा काव्य का स्वरूप - भेद की दृष्टि से निम्नलिखित वर्गीकरण किया — (१) सर्गबन्ध (महाकाव्य), (२) अभि-नेयार्थ (नाट्य), (३) आख्यायिका, (४) कथा, और (५) अनिबद्ध। [२]

४ : ४ आचार्य दण्डी ने साहित्य को संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और मिश्र भाषाओं के अन्तर्गत रखते हुए काव्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया —



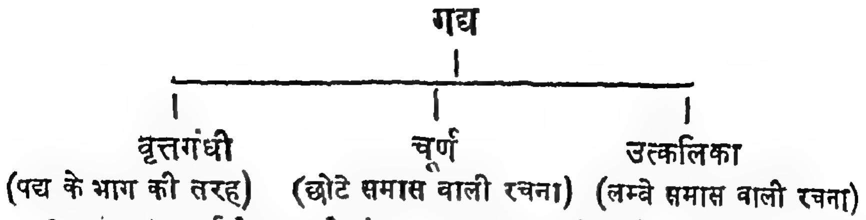
---

१ – अग्निपुराण, ३३७। ३९।

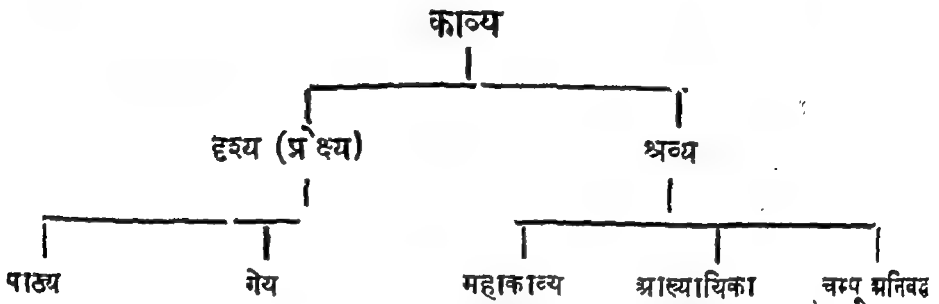
२ – काव्यालंकार, प्रथम परिच्छेद।

३ – काव्यादर्श १। ११। १४,२३,३१।

५ : ३ । आचार्य वामन ने 'काव्यालंकारसूत्र' में काव्य के पद्य और गद्य दो रूप मानते हुए गद्य के तीन रूप बताए हैं --



६ : ४ । आचार्य हेमचन्द्र ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और ग्राम्यापभ्रंश भाषाओं को काव्य-भाषा मानते हुए काव्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया --



७ : ३ । आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण के अन्तर्गत काव्य के दृश्य और श्रव्य नामक दो भेद मानते हुए काव्य का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया है—

काव्य

दृश्य — श्रव्य

रूपक — उपरूपक — पद्य — गद्य

नाटिका त्रोटक गोष्ठी सट्टक नाट्य रासक

प्रस्थानक उल्लाप्य काव्य प्रेंख

रासक श्रीगदित शिल्पक विलासिका

दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीस भणिका

संलापक

मुक्तक युग्मक संदानितक

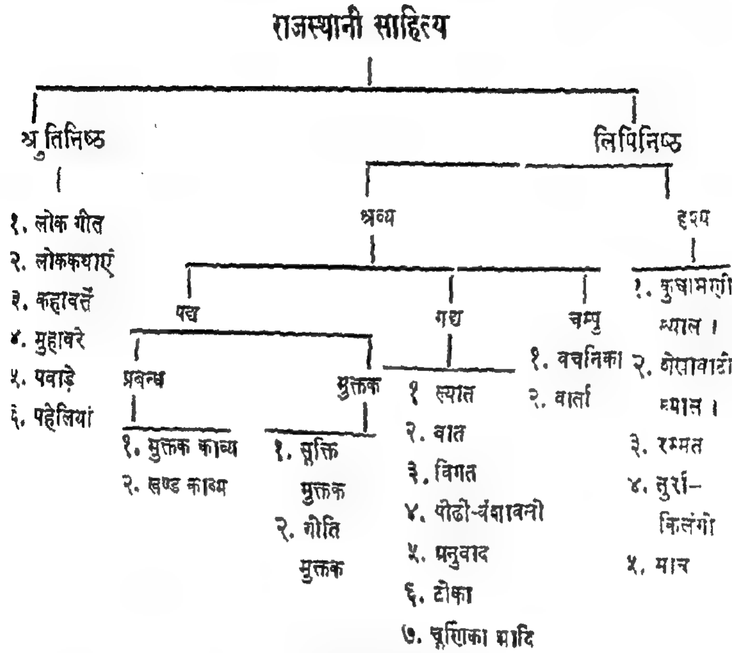
कलापक कुलक महाकाव्य

काव्य खंडकाव्य कोष व्रज्या

मुक्तक वृत्तगंध उत्कलिका-चूर्णक प्राय

नाटक प्रकरण भाण व्यायोग समवकार डिम ईहामृग अंक वीथी प्रहसन

८ : ४ । लिपिनिष्ठ और श्रुतिनिष्ठ राजस्थानी साहित्य का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में करना उचित होगा–



९ : ४ । पं० नरोत्तमदास जी स्वामी ने राजस्थानी साहित्य की तीन शैलियां मानी हैं—(१) जैन शैली, (२) चारणी शैली और (३) लौकिक शैली ।[1]

उक्त शैलियों के अतिरिक्त राजस्थानी साहित्य की पिंगल, भक्ति एवं सन्त काव्य और आधुनिक साहित्यिक शैलियां भी हैं जिनका समावेश उक्त वर्गीकरण में नहीं हुआ है । चारणी शैली से चारणों द्वारा अपनाई गई शैली का ही बोध होता है । रावों, राजपूतों, मोतीसरों, ढाढ़ियों और ब्राह्मणों आदि ने भी चारण कवियों की भांति अनेक डिंगल रचनाएं प्रस्तुत की हैं । अतएव "चारणी" शब्द उक्त अर्थ को प्रकट नहीं करता । साथ ही "चारणी" शब्द 'चारण' पुलिंग शब्द के स्त्री-लिंग-रूप का भी बोधक है ।

१० : ४ । श्री अगरचन्द नाहटा ने ११५ प्रकार के काव्य-रूप बताए हैं—

१. रास, २. सन्धि, ३. चौपाई, ४. फागु, ५. धमाल, ६. विवाहलो, ७. धवल, ८. मंगल, ९. वेलि, १०. सलोक, ११. संवाद, १२. वाद, १३. झगड़ो, १४. मातृका, १५. बावनी, १६. कक्का, १७. बारहमासा, १८. चौमासा

१–राजस्थानी साहित्य, एक परिचय, नवयुग ग्रन्थ कुटीर, बीकानेर, पृ० २३ ।

५. "रासो के मायने कथा के हैं, यह रूढ़ि शब्द है, एकवचन रासो, बहुवचन रासा।"
—मुंशी देवी प्रसाद।[१]

६. "राजादेश" से रासो की उत्पत्ति हुई है।" —डा० जार्ज ग्रियर्सन।[२]

७. "रासा" शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के शब्द "रास" से है।
—डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा।[3]

८. "रासो शब्द की उत्पत्ति 'रास' अथवा 'रासक' से है।"
—पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या।[४]

९. "रास शब्द वस्तुतः संस्कृत भाषा का नहीं है, प्रत्युत देशी भाषा का है जो संस्कृत बन गया है।"
—डा०दशरथ ओझा।[५]

१०. "चरित्र-काव्यों में रासो-ग्रन्थ मुख्य हैं। जिस काव्य-ग्रन्थ में किसी राजा की कीर्ति, विजय, युद्ध, वीरता आदि का विस्तृत वर्णन हो, उसे रासो कहते हैं।"
—पं० मोतीलाल जी मेनारिया।[६]

११. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के मतानुसार 'रासक' शब्द को रासो की उत्पत्ति के लिए ग्रहण किया जा सकता है।[७]

१२. "रास या रासक मूलतः नृत्य के साथ गाई जाने वाली रचना विशेष है।"
—के० का० शास्त्री।[८]

१३. उद्यम या पचड़े आदि से भी रासो के अर्थ लिए गये हैं।[९]

१४. रास मुख्यतः गेय छन्दों में लिखा जाता था, "गरबो" को रास का उत्तराधिकारी भी बताया गया है।[१०]

---

१ – सरस्वती, भाग ३, पृ०९८।
२ – वही, पृ० ९७।
३ – सम्मेलन पत्रिका, भाग ३३, संख्या १२, पृ० ९७।
४ – रासो की प्रथम संरक्षा, उदयपुर।
५ – हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, पृ० ७०, (द्वितीय संस्करण)।
६ – राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० २४, सन् १९५२।
७ – सम्मेलन पत्रिका, भाग, ३३, संख्या १२, आश्विन, २००३।
८ – आपणा कविओ, भाग एक, पृ० १४३–१५२ और ४१६–४३२।
९ – साहित्य संदेश, मई १९५१।
१० – दी के[illegible] एण्ड राजस्थानी मेन्युस्क्रिप्ट्स इन दी इण्डिया आफि[illegible] प्रेस, आक्सफोर्ड १९५४।

१५. पं० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी ने इसको मिश्र गेय-रूपक मानते हुए रासो और रासक को पर्याय माना है। उनके मत में हेमचन्द्र के काव्य के आधार पर यह मिश्र गेय है।

१६. "विविध प्रकार के रास, रासावलय, रासा और रासक छन्दों, रासक और नाट्य-रासक उपनाटकों, रासक, रास तथा रासो नृत्यों और नृत्तों से भी रासो-प्रबन्ध-परम्परा का निकट का सम्बन्ध रहा है, यह निश्चय रूप से नही कहा जा सकता। कदाचित् नहीं रहा है।" —डा० माताप्रसाद गुप्त।[1]

१७. पहले "रासाओं" का धर्मोपदेश मुख्य हेतु था। फिर उपदेश में कथा-तत्व और चरित्र-संकीर्त्तन आदि तत्वों का समावेश हुआ। साहित्य-स्वरूप की दृष्टि से रासक एक नृत्य-काव्य तथा गेय रूपक है।[2]

१८. डा० ओम प्रकाश के अनुसार तीन विशेषताएं रासो में पाई जाती हैं— (अ) वस्तु-वर्णन, (आ) शैली, (इ) सक्रिय चित्र।[3]

१९. रास शब्द का प्रयोग श्रीमद्भागवत् में गीत-नृत्य के लिए हुआ है—

"रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डल मण्डितः"[4]

इसमें ध्रुपद आदि रागों का भी प्रयोग मिलता है—

"तदैव ध्रुव मुन्निन्ये तस्मै मानं च बहदात्।"[5]

२०. विजयराय कल्याणराय वैद्य के मतानुसार रास छन्द धार्मिक कथाओं के तत्वों से युक्त है।[6]

२१. रास के नृत्य, अभिनय और गेय वस्तु – इन्हीं तीनों अंगों से समय पा कर परस्पर मिलते-जुलते किन्तु साहित्य की दृष्टि से विभिन्न तीन प्रकार के रासो की उत्पत्ति हुई। कुछ नृत्य-विशेष रास कहलाए; इसी प्रकार श्रव्य रास और रासक उपरूपक बने।[7]

१– हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ५६, सन् १९५२।
२– हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ४, अंक ४।
३– डा० मंजुलाल र० मजुमदार, गुजराती साहित्यना स्वरूपो, पृ० ६६ तथा ७१।
४– हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य, पृ० १८–२०।
५– स्कंध १०, अध्याय ३३, श्लोक ३।
६– गुजराती साहित्य नी रूपरेखा, पृ० १९–२०, आवृति पहली।
७– डा. दशरथ शर्मा, साहित्य-सन्देश, जुलाई १९५१।

१९. पवाड़ा, २०. चर्चरी, (चांचरि) २१. जन्माभिषेक, २२. कलश, २३. तीर्थमाला, २४. चैत्य परिपाटी, २५. संघ-वर्णन्, २६. ढाल, २७. ढालिया, २८. चौढालिया, २९. छढालिया, ३०. प्रबन्ध, ३१. चरित्र, ३२. सम्बन्ध, ३३. आख्यान, ३४. कथा, ३५. सतक, ३६. बहोतरी, ३७. छत्तीसो, ३८. सत्तरी, ३९. बत्तीसी, ४०. इक्कीसो, ४१. इकत्तीसो, ४२. चौबीसी, ४३. वीसी, ४४ अष्टक, ४५. स्तुति, ४६. स्तवन, ४७. स्तोत्र, ४८. गीत, ४९. सज्झाय ५०. चैत्यवंदन, ५१. देववन्दन, ५२. वीनती, ५३. नमस्कार, ५४.प्रभाती, ५५. मंगल, ५६. सांझ, ५७. बधावा, ५८. गहूँली, ५९. हीयाली, ६०. गूढ़ा, ६१. गजल, ६२. लावणी, ६३. छन्द, ६४. नीसाणी, ६५. नवरसो, ६६. प्रवहण, ६७. पारणों, ६८. बाहण, ६९. पट्टावली, ७०. गुर्वावली, ७१. हमचडी, ७२. हींच, ७३. माला-मालिका, ७४. नाममाला, ७५. रागमाला, ७६. कुलक, ७७. पूजा, ७८. गीता, ७९. पट्टाभिषेक, ८०. निर्वाण, ८१. संयम श्री विवाहवर्णन, ८२. भास, ८३. पद ८४. मंजरी, ८५. रसावलो, ८६. रसायन, ८७. रसलहरी, ८८. चन्द्रावला, ८९. दीपक, ९०. प्रदीपिका, ९१ फुलड़ा, ९२. जोड़, ९३. परिक्रम, ९४. कल्पलता, ९५. लेख, ९६. विरह, ९७. मूंदडी, ९८. सत, ९९. प्रकाश, १००. होरी, १०१. तरंग, १०२. तरंगिणी, १०३. चौक, १०४. हुंडी, १०५. हरण, १०६. विलास, १०७. गरबा, १०८. बोली, १०९. अमृतध्वनी, ११०. हालरियो, १११. रसोई, ११२. कड़ा, ११३. झूलणा, ११४. जकड़ी, ११५. दोहा, ११६. कुंडलिया, ११७. छप्पय आदि।[1]

श्री नाहटाजी ने काव्य रूपो की संख्या ११७ दी है। किन्तु मंगल-रूप संख्या ८ और ५५ दो बार आ गया है और संख्या ८१ पर "संयम श्री विवाह वर्णन" विवाह परक रचना है। ऐसी रचनाओं का समावेश विवाह-विवाहलो संज्ञा में हो जाता है।

११:४। श्री नाहटा जी की उक्त ११५ काव्य-संज्ञाओं की सूची में डिंगल और पिंगल काव्य-रूप नहीं हैं तथा साखी, शब्द, परिचयी और भक्तमाल जैसे काव्य-रूप भी छूट गये हैं। आधुनिक राजस्थानी काव्यरूपों का भी उक्त सूची में समावेश नहीं है। अतएव श्री नाहटा जी द्वारा प्रस्तुत काव्य-रूपों की उक्त सूची एकांगी और मुख्यतः जैन रूपों पर आधारित ही प्रतीत होती है।

१२:४। भाषा-शैली की दृष्टि से राजस्थानी काव्य के निम्नलिखित भेद किये जाने चाहिए —(क) जैन काव्य, (ख) डिंगल काव्य, (ग) पिंगल काव्य, (च) भक्ति काव्य एवं संत काव्य, (ङ) लोक काव्य और (च) आधुनिक काव्य।

---

१ – प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा, भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर, पृ०–२–३।

क. जैन काव्य—

१३ : ४। जैन काव्यों का वर्गीकरण (अ) कथा-काव्य अथवा चरित्-काव्य, (आ) ऋतु काव्य, (इ) उत्सव काव्य, (ई) नीति काव्य, (उ) स्तवन, (ऊ) ढाल, (ए) टब्बा एवं बालावबोध, और (ऐ) ज्योतिष, वास्तु, आयुर्वेद, रीति ग्रन्थ आदि शास्त्रीय विषयों पर आधारित काव्य के रूप में किया जा सकता है।

ख. कथा - काव्य अथवा चरित् - काव्य

१४ : ४। जैन काव्य के अन्तर्गत आदर्श व्यक्तियों के चरित्रों – सम्बन्धी अनेक कथा-काव्य उपलब्ध होते हैं। इन काव्यों के माध्यम से दान, शील, तप और भावना नामक ग्राह्य गुणों तथा क्रोध, मान, माया और लोभ नामक त्याज्य अवगुणों पर विशेष बल दिया गया है। इस विषय में कहा गया है —

दान शील तप भावना, चारु चरित लहेस।
क्रोध मान मायावली, लोभादिक परहरेस॥ [1]

१५ : ४। कथा अथवा चरित काव्यों के रूप निम्नलिखित हैं —(१) रास, रासो, (२) चौपाई, (३) संधि, (४) चर्चरी, (५) प्रबन्ध, चरित, आख्यानक, कथा।

(१) रास रासो—

१६ : ४। रासपरक काव्यों की परम्परा हमारे साहित्य में बहुत प्राचीन है। रास अथवा रासो काव्यों को रासक, रासो, राइसो, राइसौ, रायसउ, रासु, रायसा और रासा, आदि भी लिखा गया है। रास शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में अनेक मत प्रचलित हैं —

१. बीसलदेव रास में प्रयुक्त "रसायन" शब्द से 'रासा' की उत्पत्ति हुई है।
— आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल।[2]

२. रासो शब्द की उत्पत्ति "राजसूय" से है। —गार्सिद तासी।[3]

३. रासो शब्द की उत्पत्ति "रहस्य" से है। —श्यामसुन्दर दास।[4]

४. रासो शब्द की उत्पत्ति "राजयश" से है।[5]

---

१ – हेमरतन कृत अमर कुमार चौपइ, हस्त लि० प्रति, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।
२ – हिन्दी साहित्य का इतिहास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, (सं०२००३), पृ०३२।
३ – हिन्दुई साहित्य का इतिहास।
४ – हिन्दी शब्द-सागर।
५ – भारतीय विद्या, वर्ष ३, अंक १, पृ० ६६।

२२. विरहांक के वृत्तजातिसमुच्चय के "रासअ" और स्वयंभूछन्द के "रासा" को बताते हुए डा० हरिवल्लभ भायाणी ने संदेश - रासक में प्रयुक्त "रासा" नामक छन्द की चर्चा की है।[1]

२३. पृथ्वीराज रासो में पांच स्थलों पर "रासा" छन्द होने की सूचना डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी ने दी और बताया—"इतना तो कहा जा सकता है कि एक समय रासा या रासो काव्य में अनेक विशिष्ट छन्दों का व्यवहार इष्ट होकर शास्त्रोक्त हो गया था।"[2]

२४. रासक या रास को छन्द-प्रभाकर [3] और हिन्दी छन्द-प्रकाश [4] में एक छन्द विशेष बताया है।

२५. अनेक विद्वानों के मतानुसार रसपूर्ण होने से यह रचना रास कहलाई। शालिभद्र सूरि कृत पंचपांडव चरित रासु (संवत् १४१०) में लिखा है—

"रासि रसाउलु चुणीज्जई।"[5]

२६. जिनदत्तसूरि के "उपदेश-रसायन-रास" से लगुड़-रास और ताला रास का पता चलता है। ये रास खेले भी जाते थे। कवि के अनुसार दिन में लगुड-रास और रात्रि में ताला-रास के खेल वर्जित हैं—

ताला रासु विदित न रयणि हिं,
दिवसि वि लगुडा रमु सहुँ पुरिसि हिं॥

इसकी पुष्टि इन उदाहरणों से हो जाती है—

ताला रासु रयणि नहि देह, लउड़ा रमु मूलह वारेह।[6]

रंगिहि ए रमई जो रासु सिरि विजयसेण सूरि निम्मविऊए ।

जिनोदय सूरि 'पट्टाभिषेक' रास (सं० १४१५)—

नाचई ए नयण विशाल, चंदवयणि मन रंग भर ।
नव रगि ऐ रासु रंमति, खेला खेलिय सुष परिवरे ॥

कान्हड दे रास (सं० १५१२)—

फल्या मनोरथ पूगो आस, ठामि ठामि दिवराइ रास ।[1]

७. भाव प्रकाश में शारदातनय ने तीन प्रकार के रासक का वर्णन किया है—

लता रासक नाम स्याद्त्त्रेधा रासकं भवेत् ।
दण्डरासकनेकन्तु तथा मण्डलरासकम् ॥

और रासक नामक गेय-नाट्य का उल्लेख उपरूपकों में किया गया है—

काव्यं च प्रेक्षणं नाट्यरासकं रासकं तथा
उल्लोप्यकंच हल्लीसमथ दुर्मल्लिकाऽपि च ॥

हेमचन्द्र—

गेयं-डोम्बिका-भाण-प्रस्थान-शिगक-भाणिका-प्रेखण-
रासक्रीड हल्लीषक-रासक-गोष्ठी-श्रीगदित राग काव्यादि ॥[2]

वाग्भट्ट[3] (द्वितीय) और कवि विश्वनाथ—

नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम्
प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेंखनं रासकं तथा ।[4]

रासक में अनेक प्रकार के ताल और लय, ६४ तक के युगल और कोमल उद्धत-गेय-पक तथा अनेक नर्तकियाँ भी होती हैं—

अनेक नर्तकी योज्यं चित्र ताल लयान्वितम् ।
आचतुःषष्टि युगलाद्रासकं मसृणोद्धतम् ॥

डा० श्यामसुन्दरदास,[5] श्री ब्रजेन्द्र[6] और श्री ब्रजरत्नदास[7] आदि ने हिन्दी साहित्य उपरूपक के १८ भेदों में से नाट्यरासक को भी एक भेद माना है ।

---

१ – पृ० ५६, खण्ड १, २३६ ।
२ – काव्यानुशासनम् ।
३ – काव्यानुशासनम् ।
४ – साहित्य-दर्पण ।
५ – परि० ६ ।
५ – रूपक-रहस्य ।
६ – हिन्दी नाट्क साहित्य ।
७ – हिन्दी काव्य शास्त्र ।

२८. हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार रासो नाम से अभिहित कृतियां दो प्रकार की हैं— एक तो गीत-नृत्य परक जो राजस्थान तथा गुजरात में विशेष रूप से समृद्ध हुई और दूसरी छन्द वैविध्य परक जो पूर्वी राजस्थान तथा शेष हिन्दी प्रदेश में अधिक विकसित हुई।[1]

१७ : ४। श्रीमद्भागवत् के रास-लीला-प्रसंग से ज्ञात होता है कि रास का सम्बन्ध मूलतः शृंगारिक नृत्यगीत से है। निम्नलिखित ग्रन्थों से भी रास का सम्बन्ध शृंगारिक नृत्यगीत से प्रकट होता है—पाइअलच्छी नाममाला[2] "रासो हल्लीसओ", देशी नाम माला के 'हल्लीसो रासक'[3] 'मण्डलेन स्त्रीणां नृत्तम्' तथा 'कुद्दृणा रासकः'[4] 'पाइअ-सद्द-महण्णवो' के रास-रासग[5] और रिपुदारण रास।[6]

१८ : ४। रास मूलतः लौकिक और शृंगारिक गीत रहे हैं जिनके आधार पर जैन कवियों ने धार्मिक रास लिखे। धीरे-धीरे इन रास गीतों ने परिवर्द्धित होते हुए प्रबन्ध काव्य-शैली का रूप धारण कर लिया।

(२) चउपई —

१९ : ४। "चउपइ" अर्थात् चौपाई छन्दों में रचित होने से इन रचनाओं को 'चउपइ' संज्ञा से अभिहित किया गया।

(३) सन्धि —

२० : ४। अनेक महाकाव्यों में सर्ग से तात्पर्य सन्धि लिया गया है। हेमचन्द्राचार्य ने महाकाव्य के लक्षण बताते हुए लिखा है—

"पद्यं प्रायः संस्कृतप्राकृतापभ्रंशग्राम्यभाषानिबद्धभिन्नवृत्तसर्गाश्वाससन्ध्यवस्कन्धकबन्धसत्संधिशब्दार्थवैचित्र्योपेतं महाकाव्यम्'

कुछ सन्धि विषयक काव्य निम्न हैं—

(१) आनन्द संधि-विनयचन्द, (२) गौतम संधि १४ वीं शताब्दी, ह० प्रति अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर : तथा जै० गु० का० भाग १, ३, (३) मृगापुत्र संधि

---

१ – पृष्ठ ६५६।

२ – धनपाल कृत, ८७।

३ – हेमचन्द्र कृत, ८। ६१।

४ – वही, २। ३८।

५ – पं० हरगोविन्ददास सीखमचन्द सेठ, कलकत्ता, सं० १९८५।

६ – मरु भारती, वर्ष ४. अंक २, जुलाई, ११५६, डा० दशरथ शर्मा का

(१५५०)–कल्याण तिलक : (४) नन्द मणिमहार संधि (१५८७)–चारुचन्द्र (५) उदाह राजर्षि संधि (१५९०) तथा गजसुकुमाल सन्धि (१५९०)–संयम मूर्ति (६) जिनपालित जिन रक्षित सन्धि (१६२१)– कुशललाभ, (७) गजसुकुमाल सन्धि (१५५३) मूलप्रभ, (८) सुबाहु सन्धि (१६०४)– पुण्यसागर, (९) हरिकेशी सन्धि (१६४४) कनक सोम, (१०) चउसरण प्रकीर्णक सन्धि (१६३१) चरित्रसिंह (११) भावना सन्धि (१६४६)- जयसोम : (१२) अनाथी सन्धि (१६४७)–विमल विनय : (१३) कयवन्ना सन्धि (१६५१)–गुणविनय, आदि ।

(४) चर्चरी —

२१ : ४। संगीतबद्ध रचना राग-रागिनियों में बांध कर नृत्य के साथ गाई जाती हैं वह चर्चरी कहलाती हैं। जिनदत्त सूरि की रचना जिनवल्लभ सूरि की स्तुति अपभ्रंश काव्यत्रयी में है।[1] हिन्दी और प्राकृतपैंगलम् में इसको छन्द बताया गया है।[2] ये रचनाएं चौदहवीं शताब्दी से मिलना आरम्भ हुई हैं।[3]

(५) प्रबन्ध, चरित्र, आख्यानक और कथा —

२२ : ४। जैन कवियों ने अनेक रचनाएं प्रबन्ध, चरित्र, आख्यानक और कथा-काव्यों के अन्तर्गत लिखी हैं। सम्बन्धित चरित् अथवा मुख्य घटना का उल्लेख इन नामों से पहले करने की परम्परा रही है।

(आ) ऋतुकाव्य

२३ : ४। ऋतु काव्यों के अन्तर्गत (१) फागु, (२) धमाल, और (३) बारह-मासा परक रचनाओं का समावेश होता है ।

(१) फागु काव्य —

२४ : ४। वसन्त ऋतु में गेय रहे है। होली के अवसर पर फाग के साथ इन रच-नाओं का सम्बन्ध होने से इन्हे फागु कहा गया। फागु शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में अनेक मत हैं—

१. डा० भोगीलाल सांडेसरा संस्कृत-फल्गु-प्रा० फग्गु-फागु
२. शृंगारिक विषयों के आधार पर के० का० शास्त्री ने इसे फागुकाल कहा है।[4]

---

१ – गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज में प्रकाशित ।
२ – हिन्दी छन्द-प्रकाश, पृ० १३१ तथा हिन्दी काव्यशास्त्र, पृ० २०४ ।
३ – जैनसत्यप्रकाश, वर्ष १२, अंक ६, में श्री हीरालाल कापड़िया का 'चर्चरी' नामक लेख ।
४ – आपणा कवीओ, पृ० २३३ ।

३. श्री कांतिलाल बलदेवराम व्यास के मतानुसार सं० फाल्गुन-अ० फग्गु पु० प० रा० फागु। फागुन में वसन्त अपने पूर्ण यौवन पर होती है। इस समय के मादकता से भरे हुए गान को फागु कहते हैं।[1]

४. जिस प्रकार संस्कृत में यमकबद्ध अनुप्रासमय काव्य होते हैं, वैसी रचना को भाषा में फागबन्ध कहा जा सकता है।[2]

५. श्री लाल चन्द्र गांधी के मतानुसार फागु शैली विषय के आधार पर विविध तत्वों से युक्त है।[3]

६. अक्षय चन्द्र शर्मा के अनुसार यह मधुमहोत्सव रूपी गेय-रूपक है।[4]

७. फागु मूल में लोक साहित्य का गीत-स्वरूप है —डा० मं० र० मजुमदार।[5]

८. देशीनाम माला में वसन्तोत्सव कहा गया है फग्गु—महुच्छव।[6] संस्कृत फल्गु से भी इसकी उत्पत्ति इसी आधार पर दिखाई गई है।[7] सं० फल्गु प्रा० फग्गु (अथवा देश्य फग्गु)-जू०गु० फागु-फाग।

९. डिंगलकोष में भी फालगुण, और फागण, फाल्गुण के पर्याय दर्शाए गये हैं।[8]

फागु काव्य गेय होने के साथ ही नृत्य के साथ अभिनेय भी होते थे। थूलिभद्द फागु (१४ वीं शताब्दी) में लिखा है—

खरतर गच्छि जिण पदम सूरि किय फागु रमेवउ।
खेला नाचइं चैत्र मासि रंगहि गावेवउ ॥[9]

जैन कवियों द्वारा लिखित फागु काव्यों मे श्रृंगार का अभाव मिलता है। श्रृंगार रस परक फागु काव्य जनता में लोकप्रिय थे। 'वसन्त-विलास' नामक फागु काव्य श्रृंगार रस का उत्तम उदाहरण है।[10] जैन कवियों ने लोक-प्रचलित श्रृंगार रस परक फागु काव्य-परम्परा का अनुसरण करते हुए शांत रस परक काव्यों की रचनाएं की।[11]

---

१ – वसन्तविलास। भूमिका पृ० ३८।
२ – जैन सत्यप्रकाश, वर्ष १२, अंक ५-६, पृ० १६५।
३ – वही, वर्ष ११, अंक ७, पृ० ११२।
४ – नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५६, अंक १, संवत् २०११, पृ० २५।
५ – गुजराती साहित्य नां स्वरूपो, पृ० २०१।
६ – षष्ट वर्ग ॥८२॥ पृ० २४३ (कलकत्ता),
७ – गुजराती साहित्य ना स्वरूपो, पृ०, १६६, टिप्पणी।
८ – परम्परा, डिंगलकोष-कविराज मुरारीदान, पद १७२, पृ० १८४।
९ – श्री सी० डी० दलाल, प्राचीन गुर्जर काव्य-संग्रह, पृ० ४१।
१० – प्रकाशित, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।
११ – राजस्थानी फागु काव्य की परम्परा और विशिष्टता, सम्मेलन पत्रिका में श्री अगर-चन्द नाहटा का निबन्ध।

(२) धमाल :—

२५ : ४। राजस्थान में होली के अवसर पर गेय गीतों को धमाल कहा जाता है। होली के अवसर पर गाई जाने वाली एक राग का नाम भी धमाल है। जैन कवियों ने धमाल-परम्परा में अनेक आध्यात्मिक धमालें लिखी है। यथा—आषाढ़ भूति धमाल, आर्द्र कुमार धमाल (कनक सोम), नेमिनाथ धमाल (मालदेव) आदि।

(३) बारहमासा :—

२६ : ४। बारहमासा काव्यों में मुख्यतः विप्रलंभ शृंगार का समावेश होता है। कवि वर्ष के प्रत्येक मास की परिस्थितियों का चित्रण करते हुए नायिका का विरह-वर्णन करते हैं। बारहमासा का वर्णन प्रायः आषाढ़ से प्रारम्भ होता है। जैन कवियों ने बारहमासा-परम्परा के अन्तगत अनेक कृतियां लिखी है। जैसे—नेमिनाथ बारमास चतुष्पदिका (१३५३), विनयचन्द्र सूरि।[1] नेमिनाथ राजिमति बारमास, चारित्रकलश,[2] नेमिनाथ बारमास वेल प्रबन्ध (१६५०)—गुणसौभाग्य,[3] श्री अगरचन्द जी नाहटा ने अपने एक निबंध में "बारहमासा की प्राचीन परम्परा" पर विस्तृत प्रकाश डाला है।[4]

(इ) उत्सव-काव्य

२७ : ४। उत्सव-काव्यों के अन्तर्गत विवाह, दीक्षा आदि उत्सवों का वर्णन रहता है। जिस काव्य में विवाह का वर्णन रहता है उसको विवाहलउ, विवाहलो, विवाहला आदि तथा विवाह के अन्तर्गत गाए जाने वाले गीतों को धवल और मंगल कहा गया है। विवाहला परक रचनाओं में जिनेश्वर सूरि कृत "संयम श्री विवाह वर्णन रास" और "जिनोदय सूरि विवाहला "अब तक प्राप्त हुई रचनाओं में प्राचीनतम हैं। तेरहवीं सदी में रचित जिनपति सूरि 'धवल गीत' धवल परक रचनाओं में प्राचीनतम मानी गई है।[5] विवाहोत्सव सम्बन्धी कतिपय रचनाएं इस प्रकार हैं—

(क) आर्द्र कुमार विवाहलउ (१४९३)
(ख) महावीर विवाहलउ (१५ वीं शताब्दी)—कीर्तिरत्न सूरि
(ग) नेमि विवाहलउ (१५०५)—जयसागर
(घ) शान्ति विवाहलउ (१६ वीं शताब्दी)
(ङ) शालिभद्र विवाहलउ (१५६८)-लक्ष्मण
(च) जम्बू अन्तरंग रास विवाहलो (१५७२)-सहजसुन्दर
(छ) पार्श्वनाथ विवाहलु (१५८१ से पहले)-पेथो

---

१ – प्राचीन गु० का० सं०।
२ – गुजराती साहित्यना स्वरूपो, पृ० २७९।
३ – वही, पृ० २८२-२८३।
४ – हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ६, अंक ४, सं० २०१०।
५ – जैन सत्यप्रकाश, वर्ष ११, अंक १०-११।

(ज) शांतिनाथ विवाहलो धवल प्रबन्ध (१५६१)–आणन्द प्रमोद
(झ) सुपार्श्वजिन विवाहलो (१६३२)–ब्रह्मविनयदेव ।

(ई) नीति-काव्य

२८ : ४। जैन कवियों ने प्रायः प्रत्येक कृति में उपदेश, ज्ञान एवं नीति का किसी न किसी रूप में समावेश किया है। जैन कवियों का मुख्य दृष्टिकोण धार्मिक प्रचार करना रहा है। नीति काव्य के अन्तर्गत अनेक संवाद, कक्का, मात्रिका, बावनी, खुलक और हियाली परक रचनाओं का समावेश होता है। सम्वादपरक रचनाओं में दो विरोधी पक्षों के सम्वाद लिख कर जैन कवियो ने अपने पक्ष की अन्त में विजय बताई है। सम्वादपरक रचनाओं के द्वारा जैन कवियों ने अपने सिद्धान्तों को प्रचार को दृष्टि से सरल रूप में प्रस्तुत किया है। सम्वाद-सम्बन्धी कतिपय रचनाएं इस प्रकार हैं—

(क) सहजसुन्दर, आंख–कान सम्वाद, यौवन-जरा-संवाद,
(ख) लावण्यसमय, कर–संवाद (१५७५), रावण–मन्दोदरी संवाद, गोरी–सांवली गीत।
(ग) हीरकलश, जीभ–दांत–संवाद, (१६४३), मोती–कपासिया संवाद (१६२६)
(घ) नरपतिः जिव्हा–दांत संवाद, सुखड़–पंचक संवाद (१६ वीं शताब्दी)
(ङ) श्रीधर, रावण–मंदोदरी–संवाद (१५६५)।

(उ) कक्का

२६ : ४। कक्का उन रचनाओं को कहते हैं जिनमें वर्णमाला के बावन वर्ण में । प्रत्येक वर्ण से रचना का प्रारम्भ किया जाता है। कक्का-बारहखड़ी परक रचनायें तेरहवी ।दी से उपलब्ध होती हैं।[1]

(ऊ) स्तवन

३० : ३। स्तुतिपरक काव्यों को स्तवन कहा जाता है। ऐसे काव्यों को स्तुति, स्तोत्र, सज्झाय, वीनती और नमस्कार भी कहते हैं। इनका सम्बन्ध तीर्थंकरों, महापुरुषों, तीर्थों, साधुओं और महासतियों आदि से होता है।[2]

(ए) टब्बा और बालावबोध

३१ : ४। मूल रचना के स्पष्टीकरण हेतु ग्रन्थ के किनारों पर टिप्पणियां लिखी जाती हैं उन्हें टब्बा कहते हैं और विस्तृत स्पष्टीकरण को बालावबोध कहा जाता है।

१ – प्राचीन गुर्जर काव्य–संग्रह।
२ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, डा० माहेश्वरी, पृ० २४५।

(ऐ) ज्योतिष, वास्तुशास्त्र, आयुर्वेदादि शास्त्रीय विषयों पर आधारित काव्य

३२ : ४। जैन कवियों ने धार्मिक विषयों के साथ ही ज्योतिष, वास्तुशास्त्र, आयुर्वेद आदि शास्त्रीय विषयों पर भी काव्य रचना की है। हीरकलश कृत जोइस हीर[1] शकुन सोलही[2] आदि अनेक ग्रन्थ शास्त्रीय विषयों पर लिखित उपलब्ध होते हैं।

१. "डिंगल" का नामकरण—

३३ : ४। डिंगल राजस्थानी काव्य की एक विशेष शैली है। डिंगल का विकास प्राचीन मरु-भाषा के आधार पर हुआ और कालान्तर में इस शैली को राजस्थान के प्रायः समस्त भागों के कवियों ने अपनाया। डिंगल शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मत हैं—

१. डा० हरप्रसाद शास्त्री ने डिंगल शब्द का सम्बन्ध 'डगल' से जोड़ा है और डगल का अर्थ मिट्टी का ढेला माना है। अपने मत की पुष्टि में उन्होंने निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की हैं—

दीसे जंगल डगल, जेथ जल बगल चाढे।
अनहुता गल दिये, गला हुंता गल काढे॥

शास्त्री जी ने इन पंक्तियों का लेखक चौदहवीं शताब्दी का आल्हा चारण लिखा है।[3] वास्तव में यह छन्द १७ वीं सदी में हुए कवि अल्लू जी का है और उनके छप्पय का एक अंश ही है। पूरा छप्पय शुद्ध रूप में इस प्रकार है—

दीसे जंगळ-डगळ, जेथ जळ बगळां चाढै।
अणहूंता गळ दिये, गळा हूंता गळ काढ़ै॥
मच्छगळागळ मांहि, ग्वाळ ह्वै गळी दिखाळे॥
गळी डाळ फळ गजे, गजी डाळां फळ गाळे॥
नगळै असुर सुर नाग नर, आपण चे कुळ ऊधरे।
अनन्त रे हाथ मंगळ-अमंगळ, कई मगळ विद्या करे॥

इस छप्पय का अर्थ निम्नलिखित है।

---

१ – भास्कर किरण, दो भाग, ४।
२ – अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।
३ – प्रिलिमिनेरी रिपोर्ट आन दी आपरेशन इन सर्च आफ मेन्युस्क्रिप्ट्स आफ बार्डिक क्रोनिकल्स, १९१३, पृ० १५।

जहां जंगल और मिट्टी के ढेले दिखाई देते हैं वहां ईश्वर बगलों तक पानी चढ़ा देता है। वह भूखों को भोजन देता है और किसी के गले में भोजन निकाल लेता है। कठिनाई के समय ईश्वर ग्वालरूप धारण कर मार्ग-दर्शन करता है। वह गली (सूखी) डालियों पर फल लगाता है और फलयुक्त डालियों को सुखा देता है। वह सुर, असुर नाग और नर को निगल जाता है तथा अपने भक्तों का उद्धार कर लेता है। मंगल-अमंगल सब ईश्वर के हाथ में हैं, वह अनेक इन्द्रजाल की क्रियाएं करता है अथवा इन्द्रजाल को क्रियाएं करने से कोई लाभ नहीं है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि ने ईश्वर की शक्तिमत्ता का ही इस छन्द में चित्रण किया है। इसमें कहीं भाषा का नाम अथवा प्रसंग नहीं है। इस छन्द में शास्त्री जी के यह लिखने का कोई आधार ही नहीं है--"इससे स्पष्ट है कि जंगल देश अर्थात् मरु-देश अथवा मारवाड़ जो कि प्राचीन कुरु जंगल है की भाषा डगल कही गई।"

(२) डा० श्यामसुन्दर दास ने लिखा है कि जो लोग ब्रज भाषा में कविता करते थे उनकी भाषा पिंगल कहलाती थी और इससे भेद करने के लिए मारवाड़ी भाषा का उसी ध्वनि से घड़ा हुआ डिंगल नाम पड़ा।[1] वास्तव में डिंगल का साहित्य ब्रजभाषा साहित्य से अधिक प्राचीन है इसलिए केवल अनुमान से पिंगल के आधार पर डिंगल शब्द का प्रचलन मानना युक्तिसंगत नहीं है।

३. डा० तेसीतोरी ने लिखा है कि डिंगल एक विशेषण मात्र है जिसका अर्थ "अनियमित" होता है। पिंगल अर्थात् ब्रज भाषा परिष्कृत भाषा मानी गई और इसके सामने डिंगल अपरिष्कृत अथवा गँवारू भाषा रही।[2]

डा० तेसीतोरी ने अपने मत के आगे स्वयं ही "संभवतः" लिखा है जिससे ज्ञात होता है कि यह मत उनका अनुमान मात्र है। डिंगल वास्तव में शिक्षित चारणों द्वारा अपनाई गई शैली है। चारणों का सम्मान राजदरबारों में भी रहा है। ब्रज भाषा की भांति डिंगल में भी अलंकार, छन्द और रसादि के नियमों का पालन होता रहा है। डिंगल का व्यवहार शिष्ट समाज में होता रहा है। इस प्रकार डा० तेसीतोरी का अनुमान आधारहीन है।

४. श्री गजराज ओझा के मतानुसार "ड" वर्ण को प्रधानता होने से इसका नाम डिंगल हुआ।[3]

---

१ – हिन्दी शब्द-सागर, काशी, नागरी प्रचारिणी सभा, भूमिका पृ०, २८।

२ – जर्नल एण्ड प्रोसीडिंग्स आफ एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, वोल्यूम १०, पृ० ३६७।

३ – डिंगल भाषा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग १४; वैशाख संवत् १९९०, पृ० १२२-१४२।

किसी वर्ण की प्रधानता होने के आधार पर भाषा का नामकरण नहीं होता। साथ ही यह मान लेना भी अनुचित है कि डिंगल में 'ड' वर्ण की प्रधानता है। उदाहरणस्वरूप-महाराज पृथ्वीराज के सुप्रसिद्ध डिंगल काव्य 'वेलो' की निम्न पंक्तियां देखी जा सकती हैं—

संकुड़ित समसमा सन्धा समये,
रति वांछिति रुखमणि रमणि।
पथिक बधू द्रिठि पंख पंखियां,
कमल पत्र सूरिज किरणि॥ [1]

वास्तव में श्री गजराज ओझा का मत उनकी कल्पना मात्र है।

५. श्री जुगलसिंह खीची ने डिंगल को 'ट'कार बहुला मानते हुए डिंगल की व्युत्पत्ति कल्पित की है।[2] श्री ओझा के मत के विषय में प्रकट की गई उक्त समीक्षा के अनुसार श्री खीची का मत भी मान्य नहीं हो सकता।

६. श्री पुरुषोत्तमदास स्वामी के अनुसार डिंगल शब्द डिम+गल से बना है। 'डिम' का अर्थ डमरू की ध्वनि और 'गल' का गले से तात्पर्य है। डमरू की ध्वनि रणचंडी का आह्वान करती है तथा वीरों को उत्साहित करने वाली है। डमरू वीर रस के देवता महादेव का बाजा है। गले से जो कविता निकल कर डिम्-डिम् की तरह वीरों के हृदय को उत्साह से भर दे उसी को डिंगल कहते हैं। डिंगल भाषा में इस तरह की कविता की प्रधानता है। इसलिए वह डिंगल नाम से प्रसिद्ध हुई।"[3]

वीर रस के देवता महादेव न होकर इन्द्र माने गये हैं। श्री मोतीलाल जी के मतानुसार-"महादेव रौद्र रस के अधिष्ठाता हैं। फिर डमरू की ध्वनि की भांति उत्साहवर्द्धक और गले से निकली हुई कविता का गठबन्धन तो बिल्कुल युक्तिशून्य और हास्यास्पद है।"[4]

७. श्री जगदीश सिंह गहलोत के मतानुसार "यह डिंगल शब्द डिंग और गल शब्द से मिलकर बना है। इसका अर्थ ऊँची बोली है। क्योंकि इस भाषा के कवि उच्च स्वर से अपनी कविता का पाठ करते हैं। व्रज भाषा की कविता में ध्वनि उच्च नहीं होती।"[5]

सम्पूर्ण डिंगल काव्य ऊँचे स्वर में नहीं पढ़ा जाता, साथ ही उच्च स्वर और निम्न स्वर के आधार पर किसी भाषा-शैली का नामकरण करना खींचतान करना है।

---

१ – छन्द सं० १६०, सं० डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित, विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, पृ० ३४।
२ – राजस्थानी भाषा और साहित्य की अर्चा, साहित्य-सन्देश, जुलाई १९५४।
३ – ना० प्र० प०, भाग १४, पृ० २५५।
४ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, पृ० २५।
५ – राजपूताने का इतिहास, भाग १, पृ० १११–११२।

८. मुंशी देवीप्रसाद ने भी डिगी अथवा डिगा का अर्थ ऊँचा मानते हुए इन्हीं शब्दों के आधार पर डिंगल की व्युत्पत्ति निश्चित करने का प्रयत्न किया है।[1] श्री गहलोत के उक्त मत की भांति मुंशी जी का मत भी निरी कल्पना पर आधारित है।

९. श्री मोतीलाल जी के मतानुसार "डिंगल शब्द डींगल का परिवर्तित रूप है...... इसकी उत्पत्ति डींग शब्द के साथ 'ल' प्रत्यय जोड़ने से हुई है। और इसका अर्थ है डींग से युक्त अर्थात् अतिरंजनापूर्ण।"[2]

डिंगल शब्द में 'ल' प्रत्यय नहीं किन्तु 'इल' प्रत्यय है। अतिरंजना से किसी भी प्रकार का साहित्य अछूता नहीं होता। इसलिए यह मत भी कल्पना पर आधारित प्रतीत होता है।

१०. किशोरसिंह बार्हस्पत्य के अनुसार डिंगल शब्द की व्युत्पत्ति "डीङ विहायसा गतौ" से हुई है। यह "डी" धातु से बना है जिसका अर्थ है 'उड़ने वाली'। बदरीदान जी कविया और सत्यदेव जी श्राढ़ा भी इस मत के प्रतिपादक हैं। यह कविता उड़ने वाली कहलाती है क्योंकि यह ऊँचे स्वर से पढ़ी जाती है।

(११) उक्त मत का समर्थन करते हुए उदयराज उज्जवल कहते हैं, "पिंगल भाषा गंगा-यमुना के निकटतम प्रदेशों की भाषा है जो साहित्य-शास्त्र के नियमों की शृंखला में जकड़ी हुई है। अतः डिंगल के कवि पिंगल को "पांगली (पंगु) भाषा" कहते हैं और ठीक इसके विरुद्ध में डिंगल भाषा को उड़नेवाली भाषा कहते हैं। डिंगल में साहित्य-शास्त्र के बन्धन प्रायः नहीं हैं और छन्दों का अधिक विस्तार न होने से कवि की इच्छानुसार शब्दों का प्रयोग होता है। इस कारण उनकी घटत-बढ़त सरलता से हो सकती है। 'डगल' शब्द इन विशेषताओं का सूचक है। इसी से डिंगल बना है।[3] श्री उदयराज जी ने 'डगल' के निम्नलिखित अर्थ बताये हैं—

(अ) डग = पांखें। ल = लिए हुए। पांखें लिए हुए = पांखों वाली = उड़नेवाली = स्वतंत्रता से चलने वाली।

(आ) डग = लम्बा कदम = तेज चाल। ल = लिए हुए = तेज चाल वाली।

(इ) डगल = ढीला, जिसके अंग या जोड़ दृढ़ता से गठे हुए नहीं होते, ढीले होते हैं, उसको भी डगल या डगलो या डगला कहते हैं। डिंगल भाषा भी पिंगल के समान नियमों से सुगठित नहीं है।

---

१ – चांद, मारवाड़ी अंक, भाट और चारणों का हिन्दी भाषा संबंधी काम, पृ० २०५

२ – रा० भा० और सा०, पृ० २७, २८।

३ – राजस्थान भारती, भाग २, मार्च १९४९, पृ० ४५-४८।

(ई) डगल = रुई से भरा हुआ शीतकाल में पहनने का वस्त्र विशेष। यह ढीला होने से डगल, डगलो, या डगला कहलाता है जो शरीर की चलने-फिरने व मुड़ने की स्वतन्त्रता को नहीं रोकता, इसी प्रकार डिंगल भाषा में कवि की गति स्वतन्त्र रहती है।

इस मत को न मानने के कई कारण हैं। डिंगल में काव्य-शास्त्रीय नियम पिंगल की अपेक्षा सरल नहीं होते। डगल का डिंगल अर्थ यथार्थ न होकर कल्पना ही माना जा सकता है।

१२. डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने इस विषय में लिखा है, "मध्ययुग की मारवाड़ी के आधार पर पिंगल की प्रतिस्पर्धीय साहित्यिक भाषा डिंगल भी प्रकट हुई।[१] ... राजपूताने के भाट और चारणों ने पिंगल की अनुकारी एक नई कवि भाषा मारवाड़ी के आधार पर बनाई जो डींगल या डिंगल नाम से अब परिचित है।[२]

डिंगल कविता पिंगल की अपेक्षा अधिक प्राचीन है और डिंगल तथा पिंगल दोनों ही नाम एक साथ प्रचलित हुए हैं। ऐसी अवस्था में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि डिंगल और पिंगल में से कौन शब्द किसके आधार पर बना है।

१३. श्री गणपतिचन्द्र ने लिखा है, "राजस्थान में बहुत पहले कोई डगल नाम का अत्यन्त छोटा सा प्रदेश था जो अब शायद इतिहास के गर्त के कारण लुप्त हो गया है। इसी डगल के रहने वालों की भाषा डिंगल कहलाई।" डा० हरप्रसाद शास्त्री द्वारा उद्धृत दोहे के विषय में श्री गणपतिचन्द्र ने लिखा है, "दोहे के अर्थ से स्पष्ट है कि लेखक का अर्थ सिवा किसी प्रदेश विशेष के नाम से और कोई अर्थ नहीं निकाला जा सकता है।"[३]

श्री हरप्रसाद शास्त्री की भाँति श्री गणपतिचन्द्र ने भी सम्बन्धित पूरे छन्द को देखने और उसके तात्पर्य को समझने का प्रयत्न नहीं किया है। राजस्थान में किसी डगल प्रदेश का होना और उसकी भाषा डिंगल के नाम से प्रसिद्ध होना प्रमाण-शून्य है।

१४. श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने लिखा है, "डिंगल केवल अनुकरण शब्द है। "काफिया न मिलेगा तो बोझों तो मरेगा" की कहावत के अनुसार पिंगल से भेद दिखलाने के लिए बना दिया गया है। —डिंगल एक यदृच्छात्मक शब्द है, डित्थ आदि की तरह इसका कोई अर्थ नहीं है।

श्री गुलेरी जी का मत सर्वथा अनुमानाश्रित है।

१५. श्री नरोत्तमदास जी स्वामी ने डिंगल के विषय में लिखा है, "पिंगलानुमोदित

---

१ – राजस्थानी भाषा, राजस्थान विद्यापीठ, साहित्य-संस्थान, उदयपुर पृ० ५८।
२ – वही, पृ० ६५।
३ – साहित्य-संदेश, आगरा, मार्च १९५१।

छन्दों में लिखी गई कविता की भाषा पिंगल नाम से प्रसिद्ध हुई। उसी के वजन पर पिंगल के छन्दों से भिन्न गीतों में लिखी कविता की भाषा का डिंगल नाम पड़ा। इस प्रकार डिंगल शब्द जैसा कि गुलेरी जी कहते हैं—निरर्थक है और पिंगल के वजन पर बन गया है।"[1]

उक्त मत के विपरीत श्री स्वामी जी ने यह भी लिखा है—"कुशललाभ रचित पिंगल शिरोमणी ग्रन्थ में उडिंगल नागराज का एक छन्द-शास्त्रकार के रूप में उल्लेख हुआ है। —जब डिंगल गीतों का आविष्कार हुआ तो उनका सम्बन्ध भी किसी प्राचीन महापुरुष से जोड़ना आवश्यक जान पड़ा और पिंगल नागराज के समान उडिंगल नागराज की कल्पना की गई। यह उडिंगल शब्द ही डिंगल का मूल है।"[2]

पिंगल के वजन पर डिंगल शब्द प्रचलित होने के विषय में पहले लिखा जा चुका है कि कोई संभावना नहीं है, क्योंकि डिंगल शास्त्रानुमोदित पिंगल से भी प्राचीन काव्य-शैली है। पिंगल नागराज के अनुसार उडिंगल नागराज की स्थापना करना और उसी उडिंगल के आधार पर डिंगल की कल्पना का भी कोई ठोस कारण नहीं ज्ञात होता। साथ ही "अथ उडिंगल नाम-माला लिख्यते" के स्थान पर "अथ उडिंगल नाम-माला" पाठ भी ग्रहण किया जा सकता है।[3]

३४ : ४। किसी ठोस और अकाट्य प्रमाण के अभाव में "डिंगल" नाम के विषय में प्रकट किये गये उक्त मत स्पष्टतः कल्पना पर आधारित प्रतीत होते हैं और "वाग्विलास" के उदाहरण मात्र हैं। "डिंगल" शब्द के विषय में अन्य अनेक कल्पनाएं प्रस्तुत की जा सकती हैं जैसे—हमारा प्राचीन वैदिक साहित्य षडंग-युक्त अर्थात् शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष समन्वित माना गया है—

सिक्षा कल्पहि जानिये, औ व्याकरण निरुक्ति।
छन्द नाम वर्णत सुकवि, पुनि जोतिष संजुक्ति॥
वेद पठन की विधि सबै, सिक्षा देत लखाय।
सब करमन की रीति जो, कल्पहि ते दरसाय॥
शब्द शुद्धाशुद्धि को, ज्ञान व्याकरण जानि।
कठिन पदन के अर्थ को, कहै निरुक्ति बखानि॥
अक्षर मात्रा वृत्ति को, ज्ञान छन्द सो होय।
जोतिष काल ज्ञान इमि, वेद षडंग जोय॥[4]

---

१ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, डा० हीरालाल जी माहेश्वरी, पृ० १६।
२ – राजस्थानी साहित्य, एक परिचय, पृ० १२-१३।
३ – पिंगल सिरोमणी, श्री नारायणसिंह भाटी, परम्परा प्रकाशन, राजस्थानी शोध-संस्थान, जोधपुर, पृ० १४५।
४ – तुलसी शब्दार्थ प्रकाश, श्री कृष्णानंद व्यास, पृ० ४३।

३५ : ४। पडंगों से युक्त साहित्य प्रारम्भ में पड्गल कहा गया और कालान्तर में भाषा-विज्ञान के परिवर्तन सम्बन्धी नियमानुसार आदि व्यंजन "प" का लोप हो कर डिंगल रूप प्रचलित हुआ। सम्भव है, यह कल्पना कालान्तर में प्राप्य किसी प्रमाण के आधार पर साकार रूप धारण कर ले। "डिंगल" शब्द के मूल में "डिंगो" और "डींगी" अर्थात् बड़ा और बड़ी, मोटा और मोटी शब्दों की कल्पना भी हो सकती है, जिससे इसका महत्व प्रतिपादित होता है।

२. डिंगल काव्यों का वर्गीकरण

(१) चरितनायकों के आधार पर—

(अ) रासो—रायमल रासो, रतन रासो, राणा रासो, सगतसिंह रासो, महाराजा सुजानसिंह रासो, इत्यादि।

(आ) प्रकाश—राज प्रकास, सूरज प्रकास, भीम प्रकास, रतन जस प्रकास, कीरत प्रकास, इत्यादि।

(इ) विलास—राजविलास, जगविलास, रतन विलास, विजै विलास, जस विलास, भीम विलास इत्यादि।

(ई) रूपक—रघुनाथ रूपक, राज रूपक, रतन रूपक, महाराज गजसिंहजी रो रूपक, गोगादे रूपक, राव रिणमल रो रूपक, इत्यादि।

(उ) वचनिका—अचलदास खींची री वचनिका, राठौड़ रतनसिंह महेसदासोत री वचनिका, इत्यादि।

(२) छन्दों के आधार पर रखे गये ग्रन्थों के नाम—

(अ) नीसाणी—गोगाजी चहुवाण री नीसाणी, राठौड़ प्रतापसिंघ संग्रामसिंघोत री नीसाणी, आंबेर रा महाराजा प्रतापसिंह जी री नीसाणी, राव खंगार जी री नीसाणी, नीसाणी वीरभाण री, इत्यादि।

(आ) झूलणा—सोढा रा गुण झूलणा राजा रायसिंघ रा झूलणा, अमरसिंह जी रा झूलणा, राव सुरताण देवड़े रा झूलणा, इत्यादि।

(इ) झमाल—बीदावत करमसेण हिमतसिंघोत री झमाल, झमाल जोरावर अमरावत री, झमाल आउवा री, इत्यादि।

(ई) गीत—सीधलां रा गीत, पंवारा रा गीत, जाड़ेचा रा गीत, राठौड़ रायसिंघ जी रा गीत, राजा रायसिंघ जी रा गीत, इत्यादि।

(उ) कुंडलिया—हाला झाला रा कुंडलिया, संग्रामदास रा कुंडलिया, आदि

(ऊ) कवित — महाराजा अभैसिंह जी रा कवित्त, पंवार भलैराज रा कवित्त, राठ रतनसी रा कवित्त, महाराजा गजसिंह जी रा निरवाण रा कवित्त, चहुवा सांवलदास जी करमसिंघजी रा कवित्त, इत्यादि।

(ए) दूहा— पाबूजी रा दूहा, राव अमरसिंह जी रा दूहा, लाखेफूलाणी रा दूह सांगे राणे रा दूहा, हमीर राणे रा दूहा, समरसी चहुवाण रा दूहा, इत्यादि

(ऐ) वेल— राजकुमार अनोपसिंह जी री वेल, राजा रायसिंघ जी री वेल, रा उदेसिंघ जी री वेल, राठौड़ देईदास जेतावत री वेल, राजा सूरजसिंघ जी वेल, रूपादे री वेल, आदि।

(ग) प्रकीर्ण और शास्त्रीय—

(अ) देश-भक्ति, देशों का नैसर्गिक वर्णन,
(आ) अश्व-प्रशंसा,
(इ) उष्ट्र-प्रशंसा,
(ई) शस्त्र-प्रशंसा,
(उ) शृंगार रस की प्रकीर्ण कविताएं
(ऊ) सिलोका,
(क) धर्मशास्त्र,
(ख) ज्योतिष,-शास्त्र,
(ग) शकुन शास्त्र,
(घ) शालिहोत्र,
(ङ) वृष्टि-विज्ञान,
(च) तत्व ज्ञान,
(छ) नीतिशास्त्र,
(ज) आयुर्वेद शास्त्र, और
(झ) कोक शास्त्र, आदि।[1]

) पिंगल

३७ : ४। पिंगल नाम के एक आचार्य हुए जिन्होंने "छन्द-सूत्र" ग्रन्थ की रच की। कालान्तर में छन्द शास्त्र को आदि आचार्य के नाम से पिंगल कहा गया।[2] इसी शास्त्र को कतिपय विद्वानों ने ब्रजभाषा का द्योतक मान लिया—"राजस्थान में ब्रजभा

१ – क. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पं० मोतीलालजी मेनारिया, पृ० ५०-५१।
ख. राजस्थानी शब्द कोष, संपादकीय प्रस्तावना, सं० श्री सीताराम जी लाल पृ० (११८-११६)।
२ – हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, पृ० ४५०-५१।

४० : ४। इस प्रकार स्पष्ट है कि मुख्यतः चारण कवियों द्वारा ही भाषा शैली रूप में पिंगल शब्द का प्रयोग किया गया है। अन्य कवियों ने व्रज भाषा को भाखा (भाषा अथवा व्रज भाषा कहना ही उचित समझा है—

१—ताही ते यह कथा यथा मति भाखा कीनी।[1]
२—सुरभाषा ते अधिक है, व्रजभाषा सों हेत।
व्रजभूषन जाकी सदा, मुख-भूषन करि लेत॥[2]

"केशवदास कह छ (कहै छे) जे माहरी मति संस्कृत वाणी नै विषे बुद्ध विशेष छै तो पिण हुँ भाषा-रस ने विषै लोलपी छु ते कहनी परे जिम देवता ने देवलोक माहे अमृत थकां पिण देवांगना ना अधर ना रस नी बांछा अर अधर रस नी घणी इच्छा तिम जंपिण संस्कृत भाषा जाणु हु तो पिण व्रजभाषा नी वांछा घणी है मुझने॥"[3]

४१ : ४। पिंगल का पर्याय "नाग" भी है। प्रसिद्ध है कि शेषनाग अपनी रक्षा के लिये गरुड जी को छन्दशास्त्र सुनाते हैं और अन्त में "भुजंग प्रयात" सुनाते हुए जल-मग्न हो जाते हैं। इस प्रकार छन्द शास्त्र के आदि आचार्य शेषनाग अथवा नागराज भी कहे जाते हैं। पिंगल की भांति नागबानी के उल्लेख भी मिलते हैं।[4] भिखारीदास ने व्रजभाषा लिख के साथ ही नागभाषा लिखा है[5] जिससे ज्ञात होता है कि नागभाषा व्रज से भिन्न है।

४२ : ४। उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि मुख्यतः राजस्थान के चारण कवियों ने भाटों की राजस्थानी काव्य-शैली को पिंगल कहा क्योंकि पिंगल में डिंगल-गीत जैसे छन्दों के स्थान पर प्राचीन परम्परागत छन्दों की ही अधिकता रही। पिंगल साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

(क) चरित्र काव्य—(१) रासो काव्य, (२) अन्य काव्य।
(ख) पौराणिक काव्य और महाभारत सम्बन्धी काव्य।
(ग) भक्ति काव्य—(१) कृष्ण भक्ति काव्य, (२) राम भक्ति काव्य, (३) निर्गुण और अन्य काव्य।

---

१ – नन्ददास, रासपंचाध्यायी।
२ – रसिक प्रिया की समरथ कृत टीका (सं० १७५५), दानसागर ग्रन्थ-भण्डार, बीकानेर, पद्य सं० १७।
३ – केशव कृत शिखनख की टीका (सं० १७६२ से पूर्व) अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर की प्रति।
४ – (क) मिर्जाखान कृत व्रजभाषा व्याकरण "तुहफतुल्हिन्द।"
(ख) हिन्दी साहित्य कोष भाग १, पृ० ४५१।
५ – हिन्दी साहित्य कोष, भाग १, पृ० ४५१।

(घ) रीति काव्य—(१) रस (२) अलंकार (३) छंद (४) नायिकाभेद, षट्-ऋतु वर्णन, नखशिख वर्णन आदि ।

(ङ) नीति काव्य,

(च) फुटकर ।[1]

(घ) भक्ति एवं सन्त काव्य

४३ : ४। भक्त कवियों ने प्रवन्ध और मुक्तक दोनों ही प्रकार की रचनाएं प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत कीं। राजस्थानी भक्त कवियों में चारणों और राजपूतों का आधिक्य रहा, तदनुसार इन कवियों ने विविध प्रकार की छन्द-शैलियां प्रयुक्त कीं। वीर-रस के लिये प्रयुक्त अधिकांश छन्द-शैलियों को भक्त कवियों ने अपनी भक्ति-भावना प्रकट करने हेतु सफलता पूर्वक प्रयुक्त किया। उदाहरण स्वरूप वीर-रस के लिये प्रयुक्त दूहा, गीत, छप्पय, और नीसाणी आदि छन्द-शैलियां राजस्थानी भक्त कवियों द्वारा भी अपनाई गई क्योंकि इनकी काव्य शास्त्रीय शिक्षा राजस्थानी परम्परानुसार ही सम्पन्न हुई थी।

४४ : ४। राजस्थानी सन्त कवियों ने अपनी रचनाएं मुख्यतः निम्नलिखित रूपों में प्रस्तुत की—

(अ) साखी, (आ) सबद, (इ) परिचयी, (ई) भक्तमाल, (उ) मंगल-विवाहलो,
(ऊ) ककहरा-बारहखड़ी, (ए) शलोको, आदि।

(अ) साखी—साखी का मूल रूप साक्षी है। साक्षी का अर्थ आंखों देखी बात का वर्णन करना अर्थात् गवाही देना होता है। साखी परक रचनाओं में सन्त कवियों ने अपने अनुभूत ज्ञान का वर्णन किया है। साखी परक रचनाएं, अधिकांश में दूहा छन्द में वर्णित हैं। राजस्थानी में सोरठा दूहे का ही एक भेद है इसलिये साखियों में सोरठा छन्द का भी व्यवहार हुआ है। साखियों में चौपाई, चौपई, छप्पय आदि का भी प्रयोग हुआ है, किन्तु बहुत कम।

साखियों का विषयवार वर्गीकरण भी किया गया है। जैसे कबीर की साखियां-गुरुदेव को अंग, रस को अंग, बेलि को अंग, सुन्दरी को अंग, आदि ५९ अंगों में विभक्त हैं। साखियां सन्त साहित्य में महत्वपूर्ण मानी गई हैं, जिसके विषय में कहा गया है—

साखी आंखी ज्ञान की, समुझ देख मन मांहि।
बिन साखी संसार में, झगरा छूटत नांहि॥

सन्त कवियों ने शास्त्रीय नियमों का कठोरता पूर्वक पालन नहीं किया, परिणाम स्वरूप साखियों में मात्रायें अनियमित रूप में मिलती हैं—

---

१ – राजस्थान का पिंगल साहित्य, पं० मोतीलाल जी मेनारिया, पृ० २४।

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा।
तेरा तुझको सौंपता, क्या लागे मेरा ॥[1]

उक्त दोहे में प्रथम पंक्ति में एक मात्रा अधिक है और द्वितीय पंक्ति में एक मात्रा कम है।

साखी के विषय में कबीर के उक्त साखी विषयक दोहे की टीका लिखते हुए महात्मा पूरण ने लिखा है - 'साखी कहिये साक्षी, सो साक्षी बिना ज्ञान अन्धा है, याके वास्ते ज्ञान की आंखों साक्षी से गुरु कहते हैं कि अपने मन में विचार करके देखता नहीं कि बिना साखी के संसार का झगरा टूटता नहीं।'

(आ) सबद—सन्त काव्य में 'सबद' से तात्पर्य गेय पदों से है। 'सबद' में प्रथम पंक्ति 'टेक' अथवा स्थायी होती है, जिसको गाने में बारबार दोहराया जाता है। राजस्थान में विभिन्न सन्त-सम्प्रदायों के अनुयायी "रातीजगा" आयोजित करते हैं जिनमें रात भर जागते हुए ढोलक, मंजीरा और तन्दूरा आदि वाद्यों के साथ सामूहिक रूप में 'सबद' गाते हैं। 'सबद' का शुद्ध रूप शब्द होता है किन्तु सन्त-काव्य में और भजन-मण्डलियों में यह गेय पदों के रूप में रूढ़ हो गया है। प्रायः सभी सन्त-कवियों ने शब्दों की रचनाएं की हैं जिन्हें विभिन्न लौकिक और शास्त्रीय रागों में गाया जाता है।

(इ) परिचयी—परिचयी से मूल तात्पर्य परिचय है। अनेक सन्तों के विषय में सम्बन्धित शिष्यों-प्रशिष्यों ने पद्यात्मक रचनायें की, जिन्हें परिचयी कहा जाता है। परिचयी परक काव्यों में सन्तों के जीवन और कार्यों के विषय में अनेक लौकिक और अलौकिक घटनाओं का समावेश होता है। परिचयी-काव्यों में अनन्तदास कृत "भक्त रैदास की परिचयी", "मीरां परिचयी" और स्वामी रामस्वरूप कृत "चरणदास की परिचयी" (वि० सं० १८४०-४१) आदि मुख्य हैं।

(ई) भक्तमाल—अनेक सन्त-सम्प्रदायों की भक्तमालें उपलब्ध होती हैं। नाभादास जी ने अपनी भक्तमाल में सगुणोपासक भक्तों का वर्णन किया है। नाभादास कृत भक्तमाल की भांति राघवदास और ब्रह्मदास की भक्त-मालों में दादू सम्प्रदाय के भक्तों का वर्णन है। निरंजनी और रामस्नेही आदि अन्य अनेक सन्त-सम्प्रदाय की भक्तमालें भी उपलब्ध होती हैं।

(उ) मंगल-विवाहलो—सन्त कवियों ने अनेक मंगल परक काव्यों की रचनायें की। कबीरदास जी ने भी मंगल शब्द लिखे। सन्त सम्प्रदायों में विवाह-सम्बन्धी मंगल रचनायें आध्यात्मिक अर्थ में लिखी गई और इनमें आत्मा-परमात्मा के विवाहों का वर्णन है।

---

१ – कबीर की साखियां, निहकर्मी पतिव्रता को अंग।

(ए) ककहरा बारहखड़ी—ककहरा बारहखड़ी में वर्णमाला के क्रम से उपदेशात्मक रचनाएं लिखी गई हैं। कवि जायसी ने भी इस प्रकार की रचना 'प्रखरावट' के नाम से लिखी।

(७) शलोको—शलोको शब्द का शुद्ध रूप श्लोक है। सन्त कवियों ने स्फुट उपदेशात्मक छन्द लिखे जिन्हें शलोको कहा गया जैसे 'दादू जी रो श्लोको'।

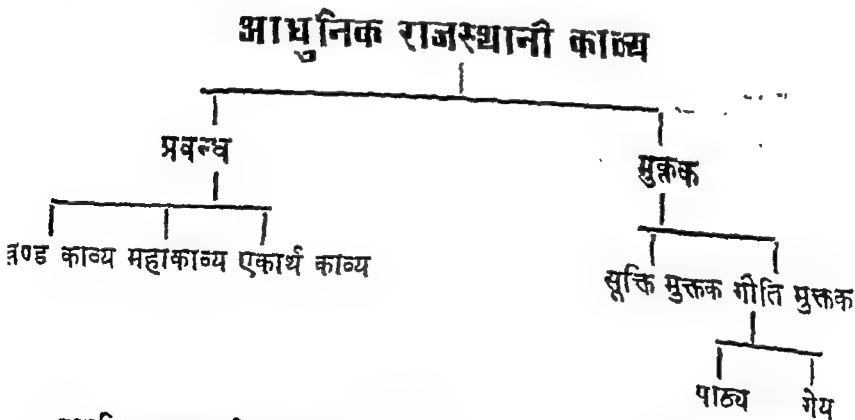
४५ । ४। सन्त कवियों की रचनाओं के संग्रह को 'वाणी' नाम दिया गया है। यथा-कबीरदास की वाणी, दादू वाणी, रज्जब वाणी आदि। इन वाणियों में साखी, पद आदि अनेक प्रकार की रचनाओं के संग्रह हैं।

(ङ) लोक काव्य

लोक काव्यों में प्रबन्ध के अन्तर्गत महाकाव्य और खण्डकाव्य तथा मुक्तक के अन्तर्गत सूक्ति-मुक्तक और गीति-मुक्तक का समावेश करना समीचीन होगा।

(च) आधुनिक काव्य

४६ : ४। आधुनिक राजस्थानी काव्य में प्राचीन परम्परागत और नवीन पश्चिमी शैली से प्रभावित दोनों प्रकार की रचनायें हो रही हैं। आधुनिक राजस्थानी काव्य का वर्गीकरण निम्न प्रकारेण किया जा सकता है—



आधुनिक राजस्थानी काव्य उक्त सभी रूपों में थोड़े बहुत परिमाण के साथ लिखा जा रहा है।

पंचम अध्याय

उपसंहार

१. राजस्थान में साहित्यिक अनुसंधान-कार्यों की प्राचीन परम्परा

२. राजस्थानी साहित्यिक अनुसंधान की आधुनिक प्रवृत्तियां

३. आधुनिक राजस्थानी साहित्य सम्बन्धी प्रवृत्तियां

क. आधुनिक राजस्थानी कविता

ख. आधुनिक राजस्थानी कथा साहित्य

ग. आधुनिक राजस्थानी नाट्य

घ. आधुनिक राजस्थानी निबन्ध

ङ. पत्र पत्रिकाएं

च. अनुवाद सम्बन्धी कार्य

पंचम अध्याय

उपसंहार

१ : ५ । ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में शोध अथवा अनुसंधान का मूल उद्देश्य सत्यान्वेषण होता है। सत्यान्वेषण के लिये निश्चित योग्यता, दृष्टिकोण और साधना की आवश्यकता होती है। प्राचीन काल में हमारे देश की अधिकांश साहित्यिक रचनाएं सत्यान्वेषी व्यक्तियों द्वारा ही संग्रहीत और सम्पादित की गई। "विद्या कण्ठे" नामक उक्ति के अनुसार साहित्यिक रचनाएं विद्या-प्रेमियों में कण्ठभूषण रूप में प्रचलित रहीं और कालान्तर में अनुसंधित्सुओं द्वारा इन्हें लिपिबद्ध रूप में सुरक्षित किया गया। यहाँ टीका-टिप्पणी, भाष्य, व्याख्या, सूत्र, संहिता आदि के रूप में अनेक रचनाओं के विषय में विशेष अन्वेषण और अध्ययन-कार्य भी निरन्तर होते रहे। वर्तमान में उपलब्ध ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, श्रुति, स्मृति और काव्यादि के रूप में सुरक्षित अपार साहित्य-सम्पदा हमारे अनुसन्धित्सुओं के सत्प्रयत्नों की ही देन है। पुरातात्त्विक अनुसंधानों से सिद्ध हो चुका है कि राजस्थान में रंगमहल (बीकानेर), माध्यमिका, चित्रकूट, आघाटपुर, वैराट, भिन्नमाल, चन्द्रावती, अर्बुदाचल आदि क्षेत्रों में सुप्रतिष्ठित विद्या-केन्द्र थे। कालान्तर में प्रतिहार, गुहिलोत, परमार, चालुक्य, चाहमान, कूर्म और राष्ट्रकूटादि विभिन्न राजवंशों ने ज्ञान-विज्ञान की उन्नति में विशिष्ट योग दिया। राजस्थान में अनेक शासक, पण्डित, चारण, जननेता, धर्माचार्य आदि कवि-कोविद-वर्ग राजस्थानी साहित्य-संबंधी संग्रह, सम्पादन और टीका-टिप्पणी विषयक कार्य निरन्तर करते रहे हैं। राजस्थान में अनेक वर्गों का वंश-परंपरागत कार्य ही राजस्थानी भाषा में साहित्य-रचना रहा है। फलतः देश-विदेश के सैंकड़ों ग्रन्थ-भण्डारों में राजस्थानी-भाषा-निबद्ध अनेक विषयों के ग्रन्थ प्रचुर परिमाण में प्राप्त होते हैं।

१. राजस्थान में साहित्यिक अनुसंधान कार्यों की प्राचीन परम्परा

२ : ५ । राजस्थान के अनुसंधान-कर्त्ताओं और अध्येताओं में मेवाड़ के महाराणा कुम्भा (राज्यकाल वि० सं. १४९०-१५२५) का नाम मुख्य है। सुप्रसिद्ध ग्रन्थ संगीतराज, चण्डी-शतक-संस्कृत-टीका, गीत-गोविन्द की राजस्थानी भाषा में मेदपाटीय टीका, संगीत-मीमांसा, सूड़-प्रबन्ध आदि ग्रन्थ इनकी बहुमुखी अन्वेषण-सम्बन्धी प्रतिभा के परिचायक हैं। चित्तौड़ के कीर्तिस्तम्भ-लेख से सिद्ध होता है कि महाराणा कुम्भा ने चार

अपना कार्य प्रारम्भ कर चार वर्ष के कार्य काल में ही अनेक हस्तलिखित राजस्थानी ग्रन्थों के विवरण "ए डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग ऑव बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मेन्यूस्क्रिप्ट्स" के रूप में प्रकाशित किये। साथ ही "छन्द राउ जेतसी रउ", "वचनिका राठोड़ रतनसिहजी महेसदासोत री" तथा "वेलि क्रिसन रुकमणी री" नामक तीन महत्त्वपूर्ण राजस्थानी काव्य कृतियों का संपादन किया। डॉ० तेस्सीतोरी ने राजस्थानी भाषा-साहित्य विषयक अनेक महत्त्वपूर्ण निबंध भी लिखे। डॉ० तेस्सीतोरी ने बीकानेर पुरातत्व संग्रहालय के लिये महत्व पूर्ण सामग्री एकत्रित की, जिसमें पल्लू से प्राप्त सुप्रसिद्ध सरस्वती प्रतिमा भी है। राजस्थान में कार्यरत रहते हुए दुख है कि अल्पायु में ही डा० तेस्सीतोरी का देहान्त हो गया। डॉ० तेस्सीतोरी ने इटालियन होते हुए भी राजस्थानी साहित्य-संबंधी अन्वेषण-कार्य हेतु राजस्थान को अपना निवास-स्थान बनाया और मृत्युपर्यन्त कार्यरत रहते हुए भावी अन्वेषण-कर्ताओं के समक्ष कार्य-रूप में उच्च आदर्श प्रस्तुत किये। मुंशी देवी प्रसाद (१८४... १९२३ ई०) की कवि-रत्नमाला, महिला मृदु-वाणी, राजरसनामृत और राजस्थान ... हस्तलिखित पुस्तकों की खोज; ठाकुर भूरसिंह शेखावत (१८६२-१९३२ ई०) के विवि... संग्रह और महाराणा यश प्रकाश, पं० रामकरणजी आसोपा का मारवाड़ी व्याकरण डॉ० गोरीशंकर हीराचन्द ओझा (१८६३-१९४६ ई०) की प्राचीन लिपि-माला आदि कार्य विशेष उल्लेखनीय है। श्री हरिनारायण पुरोहित के शिखर-वंशोत्पत्ति, सुन्दर-ग्रन्थावली आदि ग्रन्थ और पं० सूर्य करण पारीक के "वेलि क्रिसन रुकिमणी री, राजस्थानी लोकगी... ...दि कार्य महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। डॉ० मोतीलालजी मेनारिया के "डिंगल में वीर रस" ...स्थानी भाषा और साहित्य" नामक ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय हैं। श्री झावरमलजी ...रापुर (खेतड़ी), राजा प्रतापसिंह, खण्डेला, कुंवर देवीसिंह जी, मण्डावा, राव... सहजी, जोबनेर, रावराजा माधोसिंहजी, सीकर, ठा० उदयसिंहजी, खूड़, राजा फतह सिंहजी, आसोप, ठा० माधोसिंहजी, संखवास, ठा० गोपालसिंहजी, बदनोर, राजाधिराज नाहरसिंहजी, शाहपुरा, ठा० किशोरसिंहजी बारहठ, शाहपुरा, ठा० तनसिंहजी महेचा, बाड़मेर कुं० आयुवानसिंहजी, हुढील, रामसिंहजी सोलंकी, भीलवाड़ा (उदयपुर), ओंकारसिंहजी हनुमन्तसिंह देवड़ा, राणीवाड़ा, सवाईसिंह, धमोरा, सुमनेश जोशी, ठा० कल्याणसिंह गांगियासर, कु० उदयभानुसिंह चनारया, कुं० अचलसिंह भाटी, जीवन कविया, भंवरसिं... सामोद, अमरसिंह देपावत, गणपतलाल डांगी, रूपनारायण शास्त्री, रेवतसिंह भाटी डूंगरपुर, शंभूसिंह मनोहर, नारायणसिंह यादव, करौली, प्रो० मदनसिंह, अजमेर, सुमेरसिं... सरवड़ी, श्रीमती राज लक्ष्मी साधना, राजकुमारी कमला राठोड़, नानानाथ योगी भंवरलाल जोशी, गोपाल व्यास, इच्छाशंकर व्यास आदि की सेवाएं राजस्थानी भाषा साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय हैं।

६ : ५। डॉ० जार्ज ग्रियर्सन ने "लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया" के अन्तर्गत ९ और १० वें भाग में राजस्थानी भाषा का विस्तृत निरूपण किया है। इस पुस्तक में विभिन्न वोलियों के उदाहरण विशेष उपयोगी हैं।

आदि के सहयोग में संग्रह, सम्पादन और प्रकाशन-सम्बन्धी महत्वपूर्ण कार्य हुआ। डॉ० सहल के सम्पादन में नियमित रूप से प्रकाशित होने वाली "मरुभारती" त्रैमासिक पत्रिका में राजस्थानी साहित्य की उत्कृष्ट और महत्वपूर्ण रचनाओं का प्रकाशन हो रहा है।

१३ : ५। राजस्थान सरकार की ओर से पद्मश्री मुनि जिनविजयजी, पुरातत्वाचार्य के सम्मान्य संचालन में स्थापित राजस्थान प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर द्वारा राजस्थानी भाषा-साहित्य सम्बन्धी संग्रह, सम्पादन, अध्ययन और प्रकाशन का महत्वपूर्ण कार्य हो रहा है। लगभग एक लाख विभिन्न विषयों के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों के संकलन और संरक्षण का कार्य हो चुका है, जिनके अध्ययन से देश-विदेश के विद्वज्जन लाभान्वित होते रहते हैं। साथ ही अनेक उपयोगी रचनाओं का प्रकाशन भी हुआ है। यथा— (१) कान्हड़दे प्रबन्ध, सं० के० बी० व्यास (२) क्याम खां रासा, सं० डा० दशरथ शर्मा और अगरचन्द भँवरलाल नाहटा, (३) लावा रासा, सं० श्री महतावचन्द खारेड़, (४ वांकीदास री ख्यात, सं० नरोत्तमदास स्वामी, (५) राजस्थानी साहित्य-संग्रह भाग १, सं० पं० नरोत्तमदास स्वामी, (६) राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग २, सं० डा० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, (७) राजस्थानी साहित्य- संग्रह, भाग ३, सं० लक्ष्मीनारायण गोस्वामी, (८) कवींद्र कल्पलता, सं० रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत, (९) जुगलविलास, सं० रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत, (१०) भगतमाळ, सं० श्री उदयराज उज्जवल, (११) राजस्थान पुरातत्व मन्दिर के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, सं० मुनि जिनविजय, (१२) राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, भाग २, सं० श्री गोपालनारायण बहुरा (१३) राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची, भाग १, सं० मुनि जिनविजय, (१४) राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ- सूची, भाग २, सं० डा० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, (१५) स्व० पुरोहित हरिनारायणजी विद्याभूषण, ग्रन्थसंग्रहसूची, सं० श्री गोपालनारायण बहुरा और श्री लक्ष्मीनारायण गोस्वामी, (१६) मुंहता नैणसी री ख्यात, ३ भाग, सं० श्री बदरीप्रसाद सांकरिया, (१७) सूरज प्रकाश, ३ भाग, सं० श्री सीताराम लालस, (१८) नेहतरंग सं० डा० रामप्रसाद दाधीच, (१९) मत्स्य प्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन, सं० डा० मोतीलाल गुप्त, (२०) वीरमायण, सं० रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत, (२१) वसन्त विलास फागु, सं० एम० सी० मोदी, (२२) रुक्मिणी हरण, सं० डा० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया (२३) बुद्धि विलास, सं० श्री पद्मधर पाठक, (२४) रघुवर जस प्रकाश, सं० श्री सीताराम लालस, (२५) संत कवि रज्जब, ले० डा० व्रजलाल वर्मा, (२६) प्रताप रासो, सं० मोतीलाल गुप्त, (२७) भक्तमाल, राघोदास कृत, सं० अगरचन्द नाहटा, (२८) पश्चिमी भारत की यात्रा, टॉड कृत, अनु०, गोपालनारायणजी बहुरा, (२९) सोढायण, सं० दान कविया और (३०) विन्है रासो, सं० सौभाग्यसिंह शेखावत, आदि।

१४ : ५। सुप्रसिद्ध कलाकार श्री देवीलाल सामर के नेतृत्व में भारतीय लोक-कला मण्डल, उदयपुर ने राजस्थानी लोक-साहित्य के क्षेत्र में बहुत उपयोगी कार्य किया है। कला-मंडल ने लोक-नाट्यों और लोक-गीतों का रेकार्डिंग करते हुए इनके प्रकाशन का आयोजन भी किया है। कला-मण्डल की "भारतीय लोक-कला-ग्रन्थावली" में लोक-संगीत, लोक-गीत, लोक-नृत्य, लोक-नाट्य, और लोकोत्सवों सम्बन्धी अनेक प्रकाशन हुए हैं। कला-मण्डल की ओर से "लोक-कला" नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन भी चालू हुआ है जिसमें अधिकारी विद्वानों द्वारा महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की गई हैं। श्री गोविन्द कारिणक के निर्देशन में बुखारेस्ट (रोमानिया) में आयोजित राजस्थानी लोक-नाट्य कठपुतली-प्रदर्शन को विश्व-प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है।

१५ : ५। चौपासनी शिक्षा समिति, जोधपुर के अन्तर्गत राजस्थानी शोध-संस्थान में डा० नारायणसिंह भाटी के संचालन में बहुत महत्त्व का कार्य हो रहा है। शोध-संस्थान में लगभग दस हजार प्राचीन राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थो और अनेक प्राचीन राजस्थानी शैली के चित्रों का संकलन हो चुका है। शोध-संस्थान को ओर से "परम्परा" नामक त्रैमासिक पत्रिका के अन्तर्गत राजस्थानी साहित्य की अनेक महत्त्वपूर्ण रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं। शोध-संस्थान की ओर से राजस्थानी शब्द-कोष का प्रकाशन-सम्बन्धी कार्य भी हो रहा है। श्री सीताराम लालस के सम्पादन में कोष का प्रथम भाग प्रकाशित भी हो चुका है। कोष का दूसरा भाग भी शीघ्र प्रकाशित होने वाला है। राजस्थानी साहित्य और इतिहास आदि विषय के अन्वेषकों को भी संस्थान से विशेष सहायता मिलती है।

१६ : ५। डा० मनोहर शर्मा, तुलाराम शर्मा और श्रीलाल मिश्र आदि के द्वारा बिसाऊ (जयपुर) में राजस्थानी साहित्य-समिति की स्थापना की गई है। समिति की ओर से "वरदा" नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन नियमित रूप में होता है। इस पत्रिका में राजस्थानी साहित्य सम्बन्धी बहुत उपयोगी सामग्री का प्रकाशन होता है। समिति की ओर से कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं।

१७ : ५। रूपायन संस्थान, बोरूंदा (जोधपुर) सर्वश्री विजयदान देथा, कोमल कोठारी और सत्यप्रकाश जोशी आदि की साहित्य-साधनाओं का केन्द्र बना हुआ है जहां से अब तक राजस्थानी कथाओं के सात संग्रह "वातां री फुलवाड़ी" के नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। टीडो राव (राजस्थानी उपन्यास) और राधा, दीवा कांपे क्यूं आदि राजस्थानी काव्य प्रकाशित होने के साथ "वाणी" नामक राजस्थानी मासिक पत्रिका का प्रकाशन ५ वें वर्ष में चालू है। प्रतिनिधि संस्कृत नाटकों के राजस्थानी अनुवाद और गणेशलाल व्यास की रचनायें शीघ्र ही प्रकाशित करने की योजना है।

१८ : ५। राजस्थानी संस्कृति परिषद, जयपुर द्वारा श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत की अध्यक्षता में बहुत उपयोगी कार्य हुआ है। परिषद की ओर से राजस्थानी साहित्य सम्बन्धी अनेक महत्त्व के प्रकाशन हुए हैं। साथ ही राजस्थानी भाषा

उन्नति के लिये अनेक सफल प्रयत्न किये गये हैं। जयपुर में कुंवर चन्द्रसिंह और सारस्वत द्वारा "राजस्थान भाषा प्रचार सभा" की स्थापना हुई है। सभा द्वारा राज. भाषा में "मरुवाणी" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन किया जाता है। सभा की ओर कतिपय ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए हैं। साथ ही राजस्थानी भाषा-साहित्य विषयक परी. का संचालन भी होता है जिसमें सैकड़ों परिक्षार्थी सम्मिलित होते हैं। सभा की ओर राजस्थानी भाषा सम्बन्धी अनेक उपयोगी योजनाएं चालू हो रही हैं।

१९ : ५। मूमल शोध-प्रतिष्ठान, जैसलमेर और वागड़ साहित्य-परिषद्, डूंगर का कार्य प्रारम्भिक अवस्था में है किन्तु इन संस्थाओं का भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है। भारतेन्दु साहित्य समिति, कोटा की ओर से हाड़ोती साहित्य-परिषद् का शुभ आयोजन ही मे हुआ है। आशा है कि इसका कार्य शीघ्र ही ठोस आधारों पर होने लगेगा।

२० : ५। वर्तमान में राजस्थान के अनेक गांवों में भी राजस्थानी भाषा साहि सम्बन्धी संग्रह, सम्पादन, निर्माण और प्रकाशन आदि कार्य हो रहे हैं। भंवरलाल ''प्रमाद'', और अश्विनीकुमार चित्तोड़ा के नेतृत्व में ऊपरमाल विद्या पीठ, बिजोलि शक्तिदान कविया के नेतृत्व में थलवट साहित्य-संस्थान, बिराई, पं० रतनलाल मेना कथावाचक, प० केशुराम मेनारिया, श्रीमती कृष्णा मेनारिया और खूमानचन्द्र शर्मा आदि प्रयत्नों से राजस्थान विद्या-निकेतन, गवाड़ी (उदयपुर) आदि का साहित्य-संलकन कार्य इस विषय में उल्लेखनीय है।

२१ : ५। राजस्थान सरकार की ओर से साहित्यिक-सांस्कृतिक प्रवृत्ति संचालन हेतु साहित्य एकेडेमी, संगीत नाटक एकेडेमी और ललित कला-एकेडेमी स्थापनायें की गई हैं। राजस्थान साहित्य-एकेडेमी, उदयपुर की स्थापना श्री जनार्दन की अध्यक्षता में और श्री मोतीलाल मेनारिया के निर्देशन में हुई। इस एकेडेमी ने स्थानी भाषा में मौलिक और अनुदित कतिपय महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। एकेडमी की ओर से "मधुमती" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन भी श्री शान्तिलाल भा के सम्पादन में हो रहा है। वर्तमान में साहित्य-एकेडेमी के अध्यक्ष श्री हरिभाऊ उपा और मंत्री श्री मंगल सक्सेना एकेडेमी की ओर से राजस्थानी भाषा-साहित्य के उन्नय अनेक योजनायें कार्यान्वित कर रहे हैं।

२२ : ५। राजस्थान संगीत नाटक एकेडेमी का प्रधान कार्यालय जोधपुर में इस एकेडेमी में सर्व श्री ब्रजसुन्दर शर्मा (अध्यक्ष), कोमल कोठारी, सुश्री सुधा राजहंस राजेन्द्रसिंह बारहठ आदि के सहयोग से राजस्थानी लोक-गीतों का रेकार्डिंग किया है। एकेडेमी ने श्री विजयदान देथा द्वारा संपादित राजस्थानी लोक-गीत विषयक कुछ पुस्त प्रकाशित की हैं और श्रीमती कमला सोमाणी द्वारा प्रस्तुत राजस्थानी लोक गीतों की लिपियां "गीतायन" के नाम से प्रकाशित की गयी है। इस एकेडेमी के वर्तमान अध्य सर्वदानन्द वर्मा हैं।

२३ : ५। राजस्थान ललित-कला एकेडेमी जयपुर ने राजस्थानी 'मेंहदी माडणा'' । पुस्तिका प्रकाशित की है। इस एकेडेमी की ओर से वार्षिक प्रतियोगितायें और यां आयोजित होती हैं। इसके अध्यक्ष श्री रामनिवास मिर्धा और मन्त्री श्री सुन्दर स्वरूप भटनागर है।

२४ : ५। बीकानेर में सुप्रसिद्ध साहित्यान्वेषक श्री अगरचन्द नाहटा और भँवरलाल द्वारा "अभय जैन ग्रन्थालय" के अन्तर्गत हस्तलिखित ग्रन्थों की संकलन-संख्या ३५००० हो चुकी है। इस ग्रन्थालय में प्रकाशित सन्दर्भ पुस्तकें भी अच्छे परिमाण में हैं। नो साहित्य-संबंधी अध्ययन और अनुसंधान करने वालों को इस ग्रन्थालय से समुचित मिलता है। ग्रन्थालय की ओर से अनेक उत्तम प्रकाशन भी हुए हैं।

भारतीय विद्यामन्दिर शोध-प्रतिष्ठान, बीकानेर की स्थापना हाल ही में हुई है। थोड़े य में इस संस्था ने राजस्थानी भाषा-साहित्य विषयक अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित ।

२५ : ५। मारवाड़ी सम्मेलन, बम्बई की ओर से राजस्थानी साहित्य को प्रोत्साहित प्रचारित करने की दृष्टि से कतिपय प्रवृत्तियों का संचालन होता है जिनमें पुरस्कार-प्रमुख है। बम्बई, कलकत्ता, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर आदि क्षेत्रों में ानी नाटकों का अभिनय भी समय-समय पर होता रहता है। बम्बई में राजस्थानी भाषा नेक फिल्में भी समय-समय पर बनती रही हैं और इन फिल्मों का देश-व्यापी प्रचार रहा है।

२६ : ५। प्राचीन राजस्थानी साहित्य-सम्बन्धी अनुसंधान, सम्पादन और प्रकाशनादि गुजरात में भी समुचित रूप में किया जा रहा है। बड़ोदा के सयाजी राव विश्वविद्यालय भोगीलाल जेठालाल सांडेसरा के निर्देशन और सम्पादन में प्राचीन राजस्थानी साहित्य के प्रकाशन किये हैं। इस विश्वविद्यालय की सुप्रसिद्ध ग्रन्थ माला "गायकवाड़ ओरियन्टल ।" में भी राजस्थानी साहित्य की अनेक रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं।

२७ : ५। मध्य प्रदेश मालवा में अनेक संस्थायें, विद्वान् और साहित्यकार मालवी य-संबंधी कार्यों में अनेक वर्षों से संलग्न हैं। इन संस्थाओं में मध्य भारत साहित्य-। इन्दौर, मालव साहित्य परिषद्, उज्जैन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। मालवी साहित्य-की प्रवृत्तियों को अग्रसर करने वालों में पं. सूर्यनारायण व्यास, डॉ श्याम परमार, रघुवीरसिंह, महाराज कुमार सीतामऊ, डॉ चिन्तामणि उपाध्याय, रामनारायण उपाध्याय नारायण विष्णु जोशी श्री निवास जोशी, पन्नालाल नायक, गिरिवरसिंह भँवर, युगल र द्विवेदी, महाराज गुप्ता नन्द जी, केशवा नन्द जी, नागेश मेहता, परदेशी, वै नारायण वागोरा आदि अनेक सुयोग्य व्यक्ति हैं।

२८: ५। राजस्थान के साहित्यकारों को संगठित करने के अनेक प्रयत्न हुए हैं। इनमें से प्रथम महत्वपूर्ण प्रयत्न १६४० ई०में रा. हि.साहित्य-सम्मेलन के उदयपुर-अधिवेशन के रूप में हुआ। तदुपरान्त राजस्थानी साहित्य सम्मेलन, दीनाजपुर, राजस्थानी साहित्यकार सम्मेलन, जयपुर राजस्थानी साहित्य सम्मेलन, रतनगढ़, राजस्थानी साहित्य-सभा, जोधपुर आदि उल्लेखनीय हैं। सारे भारतवर्ष में बिखरे हुए राजस्थानी साहित्य-प्रेमियों और साहित्यकारों को संगठित करने और साहित्यिक विकास के लिये कुशल नेतृत्व मे 'अखिल भारतीय राजस्थानी साहित्य-सम्मेलन, के रूप में एक संस्था की स्थापना बहुत उपयोगी कार्य होगा। राजस्थानी साहित्य में रुचि रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने क्षेत्र में साहित्य-संग्रह, सम्पादन, निर्माण और प्रकाशनादि सम्बन्धी कार्य स्वयं करे और दूसरो से करावे।

२६:५। राजस्थानी भाषा-साहित्य सम्बधी सामग्री विदेशों में भी उपलब्ध है जिसके आधार पर अनुसन्धान और अध्ययन कार्य अनेक वर्षों से रुचि-पूर्वक किया जाता रहा है। वर्तमान में अनेक विद्वानो और इनके शिष्य-मण्डलो द्वारा विदेशो में राजस्थानी साहित्य सम्बन्धी कार्य विशेष योग्यता एवं रुचि से हो रहा है जिनमें से कतिपय नाम इस प्रकार हैं:—

(१) डा० डबल्यू० एस० एलन, स्कूल आफ ओरिएन्टल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज, युनिवर्सिटी आफ लन्दन, लन्दन।

(२) प्रो० सरदुतचेंको, इंस्टीट्यूट आफ एशिया, एकेडेमी आफ साइन्सेज, मास्को।

(३) सुश्री सेमेनोवा, इंस्टीट्यूट आफ एशिया, एकेडेमी आफ साइन्सेज, मास्को।

(४) श्री वेरेत्सेटाइन, इंस्टीट्यूट आफ एशिया, एकेडेमी आफ साइन्सेज, मास्को।

(५) डा० डबल्यू० नार्मन ब्राऊन, अमेकिन ओरिएन्टल सोसाइटी, न्यू हेवेन, युनिवर्सिटी पेन्सलेवेनिया।

(६) प्रो० ओडेन स्मेकल, प्राग युनिवर्सिटी, प्राग, युगोस्लाविया।

(७) प्रो० आर० एस० मेग्रेगर, लन्दन विश्वविद्यालय, लन्दन।

(८) लूइस रेनो, डायरेक्टर, इंडियन इंस्टीट्यूट, पेरिस (फ्रान्स)।

(९) प्रो० जे० टुची, अध्यक्ष, ओरिएन्टल इंस्टीट्यूट, विला मेरूलाना, २४८, रोम

(१०) प्रो० ई० फाउवापनेर, इंस्टीट्यूट आफ इंडोलोजी, युनिवर्सिटी आफ वियना वियना।

(११) प्रो० टी० बर्रो, इन्डियन इन्स्टीट्यूट, युनिवर्सिटी ऑफ ऑक्सफोर्ड, ऑक्सफोर्ड

(१२) प्रो० ई० एस० वेन्डेर, युनिवर्सिटी ऑफ पेन्सलेवेनिया, पेन्सलेवेनिया।

(१३) डा० मेरीला फाक, सेन्टर फार इन्टरनेशनल इन्डोलोजीकल रिसर्च, विल सावित्री, चेमोनिक्स, मोन्ट ब्लेंक, फ्रान्स।

(१४) सी-एच० वाडडेविल्ले, पेरिस (फ्रान्स)।

३० : ५। राजस्थान में अभी तीन विश्व-विद्यालय हैं। इन विश्व-विद्यालयों द्वारा राजस्थानी साहित्य-सम्बन्धी अनुसंधानात्मक कार्य किया जाता रहा है। राजस्थान विश्व-विद्यालय, जयपुर के अन्तर्गत होने वाला राजस्थानी साहित्य विषयक निम्नलिखित कार्य उल्लेखनीय है—

कन्हैयालाल सहल—राजस्थानी कहावतों का वैज्ञानिक अध्ययन। (स्वीकृत)
फियाज़ अली खां—नागरीदास की कविता के विकास सम्बन्धी प्रभावों एवं प्रतिक्रियाओं का अध्ययन। ,,
मोतीलाल मेनारिया—राजस्थान का पिंगल साहित्य। ,,
शिवस्वरूप शर्मा "अचल"—राजस्थानी गद्य साहित्य का विकास। ,,
राजकुमारी शिवपुरी—राजस्थान के राजघरानों द्वारा साहित्य की सेवायें। ,,
मोतीलाल गुप्त—मत्स्य प्रदेश की देन। ,,
मोहनलाल जिज्ञासु—राजस्थान का चारण साहित्य। ,,
कृष्णवल्लभ शर्मा—राजस्थानी पवाड़ा साहित्य। ,,
नरेन्द्र भाणावत—राजस्थानी वेलि साहित्य। ,,
आलमशाह खान—वंश-भास्कर।
ब्रजमोहन जावलिया—राजस्थानी ग्रामोद्योग शब्दावली, उदयपुर-मंडल।
डॉ० हरीश—राजस्थान का राजदरबारी भक्ति-साहित्य (डी० लिट० के लिये)
ओमानन्द सारस्वत—राजस्थानी दूहा साहित्य।
नाथूलाल पाठक—हाड़ोती कहावतें। (स्वीकृत)
कन्हैयालाल शर्मा—हाड़ोती बोली और साहित्य। ,,
कृष्णचन्द्र श्रोत्रिय—खुमाण-रासो। ,,
मनोहर शर्मा—राजस्थानी वार्ता साहित्य। ,,
नारायणसिंह भाटी—राजस्थानी चारण गीत। ,,
राधेश्याम त्रिपाठी—राजस्थानी ख्यात-साहित्य।
कृष्णा उपाध्याय—डिंगल काव्य में समाज-चित्रण (१५५० ई० से १८५० ई०)
लक्ष्मी शर्मा—राजस्थानी और ब्रज व्रत-कथाओं का तुलनात्मक अध्ययन।
गोवर्द्धन शर्मा—प्राकृत और अपभ्रंश का डिंगल साहित्य पर प्रभाव। स्वी०
श्री प्रवासी—मेवाड़ी लोक साहित्य
श्रीमती त्रिवेणी देवी खण्डेलवाल—दादू सम्प्रदाय।
स्वर्णलता अग्रवाल—राजस्थानी लोकगीत। स्वी०
उषा देसाई—माधवानल कामकन्दला-साहित्य और गणपति कृत माधवानल कामकन्दला

बसन्तकुमार शर्मा—१८ वीं सदी विक्रमी का राजस्थानी जैन साहित्य।
कुसुम माथुर—राजस्थानी साहित्य में गीत।
नेमिचन्द श्रीमाल—पश्चिमी राजस्थानी भाषा का अर्थ-विचार।
रिछपालसिंह शेखावत—राजस्थानी साहित्य में लोक-देवता।
रामगोपाल गोयल—राजस्थानी प्रेमाख्यानक काव्य।
भगवतीलाल शर्मा—ढोला मारू रा दूहा।
राज सक्सेना—विश्नोई सम्प्रदाय और साहित्य।

३१ : ५। जोधपुर विश्वविद्यालय के लिये होने वाला राजस्थानी साहित्य-सम्बन्धी कार्य इस प्रकार है—

पी-एच० डी० के लिये—
आशाचन्द भण्डारी—मध्यकालीन राजस्थानी सगुण भक्ति-साहित्य। (स्वीकृत)
पुरुषोत्तमलाल मेनारिया—राजस्थानी साहित्य के संदर्भ सहित श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी राजस्थानी काव्य। (स्वीकृत)
रामप्रसाद दाधीच—महाराजा मानसिंह (जोधपुर) व्यक्तित्व और कृतित्व। (स्वीकृत)
ओमप्यारी गेहलोत—राजस्थानी कथा-साहित्य।
तारा सापट—राजस्थानी का छंद-विधान।
मदनराज मेहता—बाड़मेरी बोली।
कमला रामावत—राजस्थानी लोकगीतों में विरह-भावना।
राजकृष्ण दूगड़—कविया करणीदान और इनका सूरज-प्रकाश।
रजनी गुप्त—राजस्थानी कवियों का प्रकृति चित्रण।
कुसुमलता जैन—राजस्थानी साहित्य में नारी-भावना।
लक्ष्मीकान्त जोशी—मारवाड़ का साहित्य।
मदनलाल जोशी—मध्यकालीन राजस्थानी सन्त काव्य तथा कबीर।
नरपतसिंह—राजस्थानी साहित्य में संयोग शृंगार।
विश्वम्भरदयाल गर्ग—जसवन्तसिंह प्रथम और उनका साहित्य।
गुलाबकुंवर भण्डारी—राजस्थानी साहित्य में राम-भक्ति काव्य, सं० १६०० से १६०० वि०
नारायण शर्मा—राजस्थानी संत-सम्प्रदाय और उनका साहित्य।
जानकीलाल त्रिवेदी—राजस्थानी रीति काव्य की आलोचनात्मक विवेचना।
श्री गणपतिचंद भण्डारी—जोधपुर जिले की बोली का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन।
नृसिंह राजपुरोहित—भारतीय स्वाधीनता-संग्राम में राजस्थानी कवियों का योगदान।

०मोतीलाल गुप्त—खुमाण रासो का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन । (डी० लिट० हेतु स्वीकृत)
ॉ० मोहनलाल जिज्ञासु—राजस्थान का चारण भक्ति-काव्य (डी० लिट० हेतु) ।
ॉ० नारायणदत्त श्रीमाली— राजस्थानी प्रबन्ध काव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन (डी० लिट् हेतु) ।
ॉ० नारायण सिंह भाटी— राजस्थानी शृंगार-काव्य का काव्य शास्त्रीय अध्ययन (डि० लिट० हेतु) ।
ॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया—राजस्थानी साहित्य के विविध रूप और इनकी रचना-परम्परा (डी० लिट० हेतु) ।

३२ : ५ । जोधपुर-विश्वविद्यालय में राजस्थानी भाषा और साहित्य-सम्बन्धी प्रवृत्तियों को सुचारु रूप में संचालित करने हेतु डा० चन्द्रप्रकाशसिंह, अधिष्ठाता, कला-संकाय की अध्यक्षता और डॉ० मोहनलाल जिज्ञासु के संयोजन में "राजस्थानी साहित्य-परिषद्" की स्थापना की गई है । डॉ० चन्द्रप्रकाश की अध्यक्षता में राजस्थानी साहित्य का बृहद् इतिहास भी अनेक भागों में जोधपुर-विश्वविद्यालय की ओर से प्रकाशित करने की योजना है । ऐसे सत्प्रयत्न अन्य विश्वविद्यालयों के लिये भी सर्वथा अनुकरणीय हैं ।

३३ : ५ । उदयपुर विश्वविद्यालय में होने वाला यह कार्य उल्लेनीय है —

१. महेन्द्र भाणावत, निर्देशक डॉ० रामगोपाल दिनेश—राजस्थानी लोक नाटक गौरी
२. मथुराप्रसाद अग्रवाल—राजस्थानी प्रेमाख्यान ।
३. नरेन्द्रकुमार व्यास—मेवाड़ी का वैज्ञानिक अध्ययन ।

अन्य विश्वविद्यालयों की तुलना में उदयपुर विश्व-विद्यालय की प्रगति मन्द है । आशा है कि अब इस विश्वविद्यालय के अन्तर्गत राजस्थानी भाषा और साहित्य सम्बंधी योजनाएं शीघ्र ही क्रियान्वित की जायेंगी ।

३४ : ५ । राजस्थान के बाहर के अनेक विश्वविद्यालयों में भी राजस्थानी भाषा-साहित्य-सम्बन्धी अनुसन्धान-कार्य होते रहे हैं जिनमें से कुछ कार्य इस प्रकार हैं—

दिल्ली विश्वविद्यालय

दिल्ली-विश्वविद्यालय के अन्तर्गत डॉ० परमात्माशरण के निर्देशन में श्री पद्मधर पाठक और श्री सुरेशचन्द गोयल के सहयोग से इतिहास-सम्बन्धी राजस्थानी साहित्य का सर्वेक्षण किया गया है । इस सर्वेक्षण का विवरण एशिया पब्लि०, हाऊस, बम्बई द्वारा प्रकाशित हो चुका है ।

बम्बई विश्वविद्यालय

आत्माराम जाजोदिया—प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी भाषा का वि (१५ वीं. शताब्दी)
श्रीमती सविता जाजोदिया—राजस्थानी और मराठी लोकगीतों का तुलना अध्ययन।
श्रीमती रिषभ भण्डारी— आधुनिक राजस्थानी गद्य साहित्य

प्रयाग विश्वविद्यालय

जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव — डिंगल पद्य साहित्य का अध्ययन।

काशी विश्वविद्यालय

नामवरसिंह — पृथ्वीराज रासो की भाषा।

आगरा विश्वविद्यालय

महेशचन्द सिंघल —सन्त सुन्दरदास।
बद्री प्रसाद परमार — मालव-लोक साहित्य।
हरदयाल यदु — कविराजा बांकीदास, जीवन और साहित्य।

नागपुर विश्वविद्यालय

चिन्तामणि उपाध्याय — मालवी लोक गीत।
कृष्णलाल हंस — निमाड़ी और उसका लोक साहित्य।
देवी प्रसाद शर्मा — पृथ्वीराज रासो के लघुत्तम रूप का अध्ययन और उसका आलोचनात्मक संपादन।

कलकत्ता विश्वविद्यालय

विपिन बिहारी त्रिवेदी — चन्दवरदाई और उनका काव्य।
तारकनाथ अग्रवाल — बीसलदेव रास का सम्पादन।
हीरालाल माहेश्वरी — राजस्थानी भाषा और साहित्य, सं० १५००-१६००

मद्रास विश्वविद्यालय

जनार्दन चेलेर — कवि वृन्द।

३५:५। राजस्थानी भाषा में अपार साहित्य-सम्पदा बिखरी पड़ी है और प्रकाश में आ

लिये अनुसन्धित्सुओं की प्रतीक्षा में है। अभी राजस्थानी भाषा तथा राजस्थानी साहित्य अनेक रचना-रूपों, विभिन्न साहित्यकारों, राजस्थानी साहित्य में निरूपित विभिन्न विषयों और धार्मिक सम्प्रदायगत रचनाओं के विषय में अन्वेषण-सम्बन्धी पर्याप्त कार्य होना शेष है।

३६:५। अनेक व्यवसायी प्रकाशकों ने भी राजस्थानी भाषा - साहित्य का प्रकाशन र इसकी उन्नति में योग दिया है—

राजस्थान में व्यवसायी प्रकाशकों में से संस्थाओं की तुलना का प्रकाशन कार्य 'मंगल प्रकाशन, जयपुर" ने किया है। अपने सीमित साधनों में बिना किसी आर्थिक सहायता के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन करना आज के युग में एक आदर्श स्थापित करना है। ऐसे कई प्रकाशन इन के द्वारा किए जा चुके है और कई छप रहे हैं। जयपुर में इनके अतिरिक्त निम्न प्रकाशकों का विशेष योगदान है—

१. स्टुडैन्ट बुक कम्पनी, जयपुर
२. आत्माराम एण्ड सन्स, जयपुर (शाखा)
३. आशा पब्लिशिङ्ग हाऊस, जयपुर
४. कल्याणमल एण्ड सन्स, जयपुर
५. राजस्थान पुस्तक मन्दिर, जयपुर
६. रोशनलाल जैन एण्ड सन्स, जयपुर
७. राजस्थान प्रकाशन, जयपुर

कुछ अन्य प्रकाशकों ने भी प्रारम्भ में राजस्थानी-सम्बन्धी कार्य किया है।

अजमेर के निम्न प्रकाशकों का योगदान उल्लेखनीय है:—

१. दत्त बन्धु (प्रा०) लि०, अजमेर
२. चित्रगुप्त प्रकाशन, अजमेर
३. कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर

जोधपुर के लक्ष्मी पुस्तक भण्डार, किताब घर, प्रताप प्रेस आदि ने राजस्थानी में प्रकाशन-कार्य किया है।

उदयपुर में हितैषी पुस्तक-भण्डार तथा बीकानेर में नवयुग ग्रन्थ कुटीर ने राजस्थानी साहित्य-प्रकाशन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

कुछ लेखकों ने भी अपनी कृतियों का प्रकाशन स्वयं किया है।

३. आधुनिक राजस्थानी साहित्य-सम्बन्धी प्रवृत्तियां

३७:५। भारतीय स्वाधीनता और राजस्थान के एकीकरण के साथ ही राजस्थान में विकासोन्मुखी विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों का आरम्भ हुआ है। आधुनिक काल में अनेक साहित्यिक क्षेत्रों में विविध कार्य बड़े ही उत्साह के साथ सम्पादित हो रहे हैं।

क. आधुनिक राजस्थानी कविता

३८:५ । राजस्थानी पद्य के क्षेत्र में अनेक कवि विभिन्न शैलियों में नवीन भावनाओं की अभिव्यक्ति कर रहे हैं । राजस्थानी भाषा में आज प्रबन्ध-काव्य बहुत कम लिखे जाते हैं । प्राचीन राजस्थानी साहित्य में बहुत उत्कृष्ट प्रबन्ध काव्य लिखे गये जिनकी तुलना में आज का प्रबन्ध-लेखन-कार्य बहुत शिथिल है ।

३९:५ । मेघराज मुकुल, गजानन वर्मा, भरत व्यास, कन्हैयालाल सेठिया, कल्याणसिंह, रेवतदान, श्रीमन्तकुमार, कान्ह महर्षि, विमलेश, बुद्धिप्रकाश, कमलाकर, करणीदान, रघुराजसिंह और सत्यप्रकाश आदि अनेक कवियों के राजस्थानी गीत जनता में प्रिय रहे हैं । राजस्थानी काव्य के विकास के लिये यह शुभ लक्षण है । अनेक राजस्थानी गीतों में भावों की गहराई और मौलिकता है, जिससे इनको स्थायी महत्व प्राप्त हो सकेगा ।

ख. आधुनिक राजस्थानी कथा-साहित्य

४०:५ । आधुनिक राजस्थानी गद्य की अनेक विधाएं अभी अविकसित अवस्था में हैं राजस्थानी गद्य-लेखन की ओर अभी हमारे साहित्यकारों का ध्यान सम्पूर्ण रूप में आकर्षित नही हुआ है । उपन्यास के क्षेत्र में श्रीलाल नथमल जोशी और विजयदान देथा ने प्रशंसनीय कार्य किया है । अब इस क्षेत्र मे हमारे साहित्यकारो की पूर्ण रूचि लेकर आगे बढ़ने की आवश्यकत्ता है ।

४१:५ । राजस्थानी कहानियों के लेखन में हमारे अनेक लेखकों ने रुचि ली । जिनमें नृसिंघराज पुरोहित, मुरलीधर व्यास, भंवरलाल नाहटा, विजयदान देथा, रानी लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत, गुलाब कुमारी शेखावत, नारायण दत्त श्रीमाली, श्रीलाल नथमल जोशी नानूराम संस्कर्ता, बैजनाथ पंवार, किशोर कल्पनाकांत, जगदीश माथुर, सूर्यशंकर पारीक, मूलचन्द प्राणेश, मालसिंह 'मिनख', दीपसिंह बडगुजर, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पुरुषोत्तमलाल मेनारिया आदि अनेक नाम उल्लेखनीय हैं । राजस्थानी कहानी-लेखन के क्षेत्र में विजयदान देथा और रानी लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत आदि ने परम्परागत शैली को अपनाया है तो नृसिंघराज पुरोहित और नारायणदत्त श्रीमाली आदि ने नवीन शैली में अपनी कहानियां प्रस्तुत की है । आशा है कि इस क्षेत्र में लेखन-कार्य तीव्र गति से अग्रसर होगा ।

ग. आधुनिक राजस्थानी नाट्य

४२:५ । आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों, और स्कूलों-कालेजों के उत्सवों आदि में समय-समय पर राजस्थानी नाटकों का आयोजन होता रहता है । पत्र-पत्रिकाओं में स्वतंत्र रूप से भी राजस्थानी नाटकों का प्रकाशन होता रहता है । ख्याल शैली के राजस्थानी नाटकों का अभिनय तो अनेक मण्डलियों द्वारा गांव-गांव में होता है । परम्परागत राजस्थानी

ली के ख्याल-नाटकों को युग के अनुकूल विकसित करने का महत्वपूर्ण कार्य अभी शेष है। परम्परागत राजस्थानी नाट्यों मे राजस्थानी कठपुतली प्रदर्शन को रूमानिया की राजधानी बुखारेस्ट में आयोजित विश्व-प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त हो चुका है जिससे समस्त विश्व के नाट्य-प्रेमियों का ध्यान राजस्थानी नाट्य-सौन्दर्य की ओर आकर्षित हुआ है। इस का श्रेय भारतीय लोक कला-मण्डल उदयपुर के श्री देवीलाल सामर, स्व० गोविन्द-नारायण और इनके अनेक सहयोगियों को है। इन्होने अनेक प्रदर्शन भारत और यूरोप के प्रमुख स्थानों मे दिये हैं जिनसे राजस्थानी लोक नाट्यों का अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में विस्तृत प्रचार हुआ है।

घ. आधुनिक राजस्थानी निबन्ध

४३:५। राजस्थानी भाषा के निबन्ध-लेखकों में नारायणसिंह भाटी, गोवर्द्धन शर्मा, चन्द्रदान चारण, दीनदयाल ओझा, बद्री प्रसाद साकरिया, श्रीनाथ जोशी, मुरलीधर व्यास, सूर्यशंकर पारीक, कन्हैयालाल सेठिया, श्रीगोपाल गोस्वामी, भगवानदत्त गोस्वामी, किशोर-कल्पनाकान्त, रावत सारस्वत, मूलचन्द प्राणेश, सौभाग्यसिंह शेखावत, मोहनलाल पुरोहित, अगरचन्द नाहटा, नरोत्तमदास स्वामी, विद्याधर शास्त्री, कोमल कोठारी, विजयदान देथा, पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, चन्द्रसिंह आदि अनेक व्यक्तियों के नाम उल्लेखनीय हैं। राजस्थानी भाषा में निबन्ध-लेखन अभी प्रारम्भिक अवस्था में है जिसको विकसित कर शीघ्र ही उच्च स्तर पर रखना है।

ङ. पत्र-पत्रिकाएं

४४:५। राजस्थानी भाषा में समय-समय पर मासिक और दैनिक पत्र प्रकाशित करने के आयोजन भी होते रहे हैं। ऐसे पत्रों में मारवाड़ी हितकारक, पंचराज, मारवाड़, मारवाड़ी, कुरजां हैं जयनारायण व्यास द्वारा सम्पादित 'आगीवाण" ब्यावर, रंगा,-बन्धुओं द्वारा सम्पादित दैनिक "जागती जोत" जयपुर, रावत सारस्वत द्वारा सम्पादित "मरुवाणी" जयपुर और किशोर कल्पनाकांत द्वारा सम्पादित "ओळमो" रतनगढ़, विजयदान-देथा द्वारा सम्पादित "वाणी" बोरून्दा आदि विशेष उल्लेखनीय है। राजस्थान से सम्बन्धित अनेक पत्र समय-समय पर राजस्थानी रचनाओं को स्थान देते रहे हैं। ऐसे पत्रों में अमर भारत(सं० सत्यदेव विद्यालंकार,) हिन्दुस्तान दैनिक, राष्ट्रदूत (सं० दिनेश खरे,) लोकवाणी, (सं०सुधाकर शास्त्री,) नवयुग (सं० ऋषि कुमार मिश्र), नवभारत टाइम्स, प्रजासेवक (सं० अचलेश्वर प्रसाद शर्मा), अमर ज्योति (सं० नारायण चतुर्वेदी), नवजीवन (सं० कनक-मधुकर), ज्वाला (सं० वंशीधर शर्मा), सेनानी (सं० शम्भूदयाल सक्सेना), विशाल राज-स्थान (सं० ओंकारलाल बोहरा) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। यदि ऐसे पत्र राजस्थानी रचनाओं के प्रकाशन हेतु निश्चित स्थान निर्धारित कर दें तो बहुत उपयोगी कार्य होगा।

च. अनुवाद-सम्बन्धी कार्य

४५ : ५। राजस्थानी भाषा में विभिन्न भाषाओं से अनुवाद करने की परम्परा १४ वीं सदी वि० से मिलती है। अनुवाद-कार्य भाषा की समृद्धि के लिये तो आवश्यक है ही, जनता को ज्ञान-वृद्धि के लिये भी उपयोगी होता है। राजस्थानी में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी, अरबी, उर्दू, बंगला और अंग्रेजी आदि भाषाओं की अनेक रचनाओं के अनुवाद मिलते हैं। आधुनिक काल में राजस्थानी भाषा में अनुवाद कार्य करने वालों में गुलाबचंद नागोरी, महाराजा चतुरसिंह, पं० गिरिधारीलाल शास्त्री, रामकरण आसोपा, गोविन्द अग्रवाल, मनोहर शर्मा, राजवैद्य जीवनराम, दरार केसरी ब्रजलाल वियाणी, हीरालाल शास्त्री, मांगीलाल चतुर्वेदी, भीम पांडिया, ठाकुर सुमेरसिंह भाटी, मनोहर प्रभाकर, चन्द्रसिंह, किशोर कल्पनाकान्त, अमर देपावत, रामनाथ व्यास, नारायणदत्त श्रीमाली, ओमदत्त दवे, श्रीलाल जोशी, गोविन्द माथुर, गोवर्द्धन शर्मा, चंडीदान सांदू, मोहनलाल बडजात्या आदि मुख्य हैं। बाइबिल के अनुवाद भी मेवाड़ी, ढूंढाड़ी और मारवाड़ी में हुए हैं। गोविन्द माथुर ने 'शेक्सपीयर री काणियाँ' तथा डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली ने 'गोदान' और 'कामायन' के राजस्थानी अनुवाद किये हैं तो रोडला ठाकुर कर्नल श्यामसिंहजी ने तुलसी कृत रामचरित मानस का राजस्थानी अनुवाद किया है। विभिन्न भाषाओं की प्रतिनिधि और जनोपयोगी रचनाओं के राजस्थानी अनुवाद प्रकाशित करने का योजनाबद्ध कार्य हमारी साहित्यिक संस्थाओं को शीघ्र ही पूरा करना चाहिये।

४६ : ५। इस पुस्तक के संक्षिप्त विवेचन में राजस्थानी साहित्य की एक झलक मात्र ही प्रस्तुत करने का यथासंभव प्रयास किया गया है, जिससे स्पष्ट है कि राजस्थानी साहित्य जीवन में सदैव आस्था रखते हुए श्रेय के लिये सतत संघर्ष करने वाले वीर-वीराङ्गनाओं का और जीवन को रस-सिक्त बनाने वाले पीयूष-वर्षी सन्तों का साहित्य है। राजस्थानी साहित्य वीरता, भक्ति, प्रेम, स्वाधीनता, त्याग, कष्टसहिष्णुता, सत्य और कर्तव्यपरायणता आदि की उच्च भावनाओं से ओतप्रोत है, तथा जन-जीवन के लिये प्रेरणा का अखण्ड स्रोत है। स्वाधीनता की सुरक्षा के साथ ही देश के नवनिर्माण और विभिन्न क्षेत्रों में विकास के लिये राजस्थानी भाषा-साहित्य का महान् सहयोग रहा है। राजस्थानी भाषा के सशक्त साहित्यकारों के सहयोग से राजस्थानी साहित्य का अतीत गौरवमय रहा है, तथा वर्तमान आशाप्रद और भविष्य उज्ज्वल है। सम्प्रति इसी विश्वास के साथ प्रस्तुत प्रसङ्ग को पूर्ण किया जा रहा है।

इति शुभम्

परिशिष्ट

[१]

नामानुक्रमणिका

अ

इ

उ

ख

घ

च

झ

द

प

भ

म

य

र

ल

श

स

४. राजस्थानी वातां, (तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं) प्रथम संस्करण १९५४ ई०, प्रकाशक— स्टुडेन्ट्स बुक कं० जयपुर।

लोक कथा सम्बन्धी उक्त दोनों पुस्तकें राजस्थान सरकार द्वारा पुरस्कृत हैं।

५. राजस्थानी लोक कथाएं, प्रथम संस्करण १९५४ ई०। [अप्राप्य]

६. राजस्थानी लोक गीत, प्रथम संस्करण १९५४ ई०।

७. राजस्थान-सम्बन्धी प्रकाशित साहित्य, भाग १, सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय, जयपुर, १९५४ ई०।

८. राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग २, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर १९६० ई०। उपाधि परीक्षा के पाठ्य-क्रम में स्वीकृत।

९. राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची, भाग २, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, १९६१ ई०।

१०. रुक्मिणी हरण, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, १९६४ ई०।

११. साहित्य सरिता, जय सम्पे प्रकाशन, जयपुर। प्रथम संस्करण १९५१ ई०, तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके है।

१२. पथतरंगिणी, सरस्वती पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९५६ ई०।

१३. नवीन गीत, जन सम्पर्क कार्यालय, राजस्थान सरकार, जयपुर, १९५७ ई०।

१४. लोक-कला निबन्धावली, भाग १ (१९५४ ई०), भाग २ (१९५६ ई०), भाग ३ (१९५७ ई०) भाग १,२ का प्रथम संस्करण अप्राप्य।

१५. राजस्थानी पुस्तक माला, प्रकाशित पुस्तकें ३।

१६. भारतीय लोक कला ग्रन्थावली, प्रकाशित ग्रन्थ ८।

१७. त्रैमासिक शोध-पत्रिका, प्रथम और द्वितीय भाग, १९६९-७० ई०।

१८. लोक-कला त्रैमासिक शोध पत्रिका।

१९. पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित साहित्यिक निबन्ध, लगभग १२५ (सवा सौ)।

६. मुद्रणान्तर्गत साहित्य —

१. श्री कृष्ण-रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी काव्य (शोध प्रबन्ध) मंगल प्रकाशन, जयपुर

२. [illegible] री लोक कथाएँ, [illegible], दिल्ली।

३. राजस्थानी लोकगीत, [illegible] प्रकाशन, [illegible]

४. [illegible] राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान,

६. पर्यवेक्षक और अधिवक्ता, २६ वां अन्तर्राष्ट्रीय प्राच्य विद्या सम्मेलन, १९६४ ई० ।

७. विभागीय सचिव, अखिल भारतीय संस्कृत शिक्षा सेमिनार १९६४ ई० ।

८. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की राजस्थान समिति के सदस्य ।

९. सदस्य महासमिति, राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन १९६६ ई० ।

१०. अनेक शिक्षण संस्थाओं की कार्य समिति के सदस्य ।

११. सहायक संचालक, शोध सहायक और वर्तमान में उपनिदेशक, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, राजस्थान सरकार, जोधपुर । प्रतिष्ठान में अनुसंधान और प्रशासन सम्बन्धी कार्य का क्रियात्मक अनुभव १७ वर्ष, १९५१ से ।

४. विशेष —

१. रेडियो से हिन्दी तथा राजस्थानी भाषा साहित्य एवं संस्कृति पर प्रसारित वार्ताएं लगभग सवा सो (१९४८ से) ।

२. राजस्थान के आन्तरिक भागों में और पूना, बम्बई, कलकत्ता आदि की यात्राएं कर हस्तलिखित ग्रन्थ और साहित्य सम्बन्धी विस्तृत खोज, संग्रह, अध्ययन और प्रकाशन कार्य ।

३. राजस्थान में हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज का निदेशन १९४१ से १९५० ई० प्रकाशित भाग–३ ।

४. गुजराती और मराठी आदि में अनेक रचनाएं अनुदित और प्रकाशित ।

५. देश विदेश के अनेक प्रमुख विद्वानों द्वारा साहित्यिक कार्यों और प्रकाशनों का प्रशंसात्मक उल्लेख ।

६. व्यक्तिगत साहित्य संकलन— राजस्थानी लोक-गीत दस हजार, राजस्थानी लोक-कथाएं एक हजार आदि ।

७. राजस्थान सरकार द्वारा साहित्यिक कार्यों के लिए दो बार पुरस्कृत ।

८. हिन्दी, राजस्थानी, अंग्रेजी, संस्कृत, गुजराती आदि अनेक भाषाओं का ज्ञान ।

५. प्रकाशित साहित्य —

१. राजस्थान की रस धारा, राजस्थान संस्कृति परिषद्, जयपुर, १९५४ ई० ।

२. राजस्थानी भाषा की रूपरेखा, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १९५३ ई० ।

३. राजस्थान की लोक कथाएं, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली । पुस्तक के तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं । प्रथम संस्करण १९५४ ई० ।

४. राजस्थानी वातां, (तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके है) प्रथम संस्करण १९५४ ई०, प्रकाशक— स्टुडेन्ट्स बुक कं० जयपुर।

लोक कथा सम्बन्धी उक्त दोनों पुस्तकें राजस्थान सरकार द्वारा पुरस्कृत हैं।

५. राजस्थानी लोक कथाएं, प्रथम संस्करण १९५४ ई० । [अप्राप्य]

६. राजस्थानी लोक गीत, प्रथम संस्करण १९५४ ई० ।

७. राजस्थान-सम्बन्धी प्रकाशित साहित्य, भाग १, सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय, जयपुर, १९५४ ई० ।

८. राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग २, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर १९६० ई० । उपाधि परीक्षा के पाठ्यक्रम में स्वीकृत ।

९. राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची, भाग २, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, १९६१ ई० ।

१०. रुक्मिणी हरण, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, १९६४ ई० ।

११. साहित्य सरिता, जय ग्रन्थ प्रकाशन, जयपुर । प्रथम संस्करण १९५१ ई०, तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

१२. पनतरंगिणी, सरस्वती पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९५६ ई० ।

१३. नवीन गीत, जन सम्पर्क कार्यालय, राजस्थान सरकार, जयपुर, १९५७ ई० ।

१४. लोक-कला निबन्धावली, भाग १ (१९५४ ई०), भाग २ (१९५६ ई०), भाग ३ (१९५७ ई०) भाग १,२ का प्रथम संस्करण अप्राप्य ।

१५. राजस्थानी पुस्तक माला, प्रकाशित पुस्तकें ३ ।

१६. भारतीय लोक कला ग्रन्थावली, प्रकाशित ग्रन्थ ८ ।

१७. त्रैमासिक शोध-पत्रिका, प्रथम और द्वितीय भाग, १९४६-४७ ई० ।

१८. लोक-कला त्रैमासिक शोध पत्रिका ।

१९. पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित साहित्यक निबन्ध, लगभग १२५ (सवा सौ) ।

६. मुद्रणान्तर्गत साहित्य —

१. श्री कृष्ण-रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी काव्य (शोध प्रबन्ध) मंगल प्रकाशन, जयपुर

२. मीणों की लोक कथाएं, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली ।

३. राजस्थानी लोकगीत, एक अध्ययन, दी स्टूडेन्ट्स बुक कं०, जयपुर ।

४. [illegible] राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर । आदि